उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जुलाई-सितम्बर, 2013

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
ओरिएंटल इंश्योरेन्स कंपनी **बनाम** सरिशता कुमारी और अन्य	73
जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य **बनाम** सफ़िया बेगम	58
जीव राज **बनाम** ओम प्रकाश	78
न्यायालय स्वप्रेरणा से **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य	133
नीरा जस्सल (श्रीमती) **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	1
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती सुपयार देवी और अन्य	100
प्रबंध समित श्री राम जानकी इंटर कालेज, सरोखन-पुर, बदलापुर, जिला जौनपुर और एक अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	6
प्रभु देवी (श्रीमती) और अन्य **बनाम** विजयलक्ष्मी (श्रीमती) और अन्य	146
भूमि अर्जन कलक्टर-II और एक अन्य **बनाम** विमल गांधी और एक अन्य	142
महावीर **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रभागीय वन अधिकारी, मिर्जापुर और अन्य	32
मेहर सिंह **बनाम** प्रकाश देवी और अन्य	114
योगेश कुमार सैनी **बनाम** प्रहलाद **उर्फ** बोदू मीणा और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 106)	
राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन **बनाम** रामास्वामी व अन्य	111
रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती नजमा खातून और अन्य	37
लेख राम **बनाम** सुन्दर राम और अन्य	118

पृष्ठ संख्या

श्योराज **बनाम** मैसर्स एकार्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रा. लि. और अन्य 18

शिवराज सैनी **बनाम** प्रहलाद **उर्फ** बोदू मीणा और अन्य 106

संसद् के अधिनियम

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (27)

जुलाई-सितम्बर, 2013 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली ख़ां

महत्वपूर्ण निर्णय

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 – द्वितीय अपील – अपील के लंबन के दौरान पक्षकार की मृत्यु – विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार न बनाया जाना – प्रभाव – ऐसी अपील उपशमित किए जाने योग्य होगी ।

मेहर सिंह बनाम **प्रकाश देवी और अन्य** 114

संसद् के अधिनियम

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (27)

पृष्ठ संख्या 1 – 180 **(2013) 2 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – जुलाई-सितम्बर, 2013 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 1 – 180)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1971 (1971 का अधिनियम सं. 24)

– धारा 16क(5) – प्रशासनिक स्कीम – प्रबंध समिति का कार्यकाल बढ़ाने के लिए स्कीम में संशोधन या परिवर्तन – पूर्व अनुमोदन की अपेक्षा – जहां ऐसा संशोधन विधि के अनुसार न किया गया हो वहां ऐसे संशोधन को क्रियान्वित करके उसका फायदा नहीं दिया जा सकता ।

प्रबंध समिति श्री राम जानकी इंटर कालेज, सरोखनपुर, बदलापुर, जिला जौनपुर और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 6

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के अधीन विरचित नियमों और विनियमों के अध्याय-2 का विनियम 5

– प्राध्यापक का पद – प्रोन्नति – रिक्त पद – प्रोन्नति द्वारा 50 प्रतिशत पद भरे जाने का उपबंध – इनकार – जहां प्रोन्नति कोटे में पद उपलब्ध हो वहां किसी अन्य कोटे में परिवर्तित करके प्रोन्नति से इनकार नहीं किया जा सकता ।

नीरा जस्सल (श्रीमती) बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 1

जम्मू-कश्मीर (अनुकम्पा नियुक्ति) नियम, 1994

– नियम 2 – तदर्थ सरकारी कर्मचारी – सेवा के दौरान मृत्यु – मृतक के आश्रित अर्थात् पत्नी द्वारा अनुकम्पा आधार पर नियुक्ति के लिए दावा – राज्य द्वारा इनकार – अनुकम्पा नियुक्ति नियमों का उद्देश्य सरकारी कर्मचारी की मृत्यु पर उसके आश्रितों को जीविका

पृष्ठ संख्या

उपलब्ध कराना है – अतः इस आधार पर कि कर्मचारी तदर्थ आधार पर नियुक्त था, नियुक्ति देने से इनकार करना उचित नहीं है ।

जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य बनाम **सफ़िया बेगम** 58

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1)

– धारा 4 और 18 – भूमि अर्जन – अधिसूचना – निर्देश न्यायालय द्वारा अधिसूचित भूमि से अधिक के लिए इस आधार पर अधिक प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाना कि विभाग द्वारा अधिसूचित भूमि से अधिक का उपयोग किया गया है – भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंध केवल उसी भूमि को लागू होते हैं जिसके बारे में अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी की गई है – जहां विभाग द्वारा अधिसूचित भूमि के सिवाय कोई अर्जन किया गया हो वहां पक्षकार सिविल न्यायालय में उपचार प्राप्त कर सकता है ।

भूमि अर्जन कलक्टर-II और एक अन्य बनाम **विमल गांधी और एक अन्य** 142

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 140 – मोटर दुर्घटना दावा – अंतरिम प्रतिकर – इंश्योरेंस कंपनी द्वारा सुसंगत समय पर चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न होने का अभिवाक् करना – अधिकरण को अंतरिम प्रतिकर की मंजूरी के आवेदन पर विचार करते समय दावा याचिका में उल्लिखित अन्तर्वस्तु, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, शव परीक्षण रिपोर्ट, पुलिस रिपोर्ट, मृत्यु प्रमाणपत्र/निःशक्तता प्रमाणपत्र पर ही विचार करना चाहिए न कि बीमाकर्ता को उपलब्ध अन्य प्रतिरक्षाओं पर ।

ओरिएंटल इंश्योरेन्स कम्पनी बनाम **सरिशता कुमारी और अन्य** 73

पृष्ठ संख्या

– धारा 147, 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – दावा – बीमा कंपनी द्वारा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के उल्लंघन की दलील – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमाकृत द्वारा बीमा पालिसी के निबंधनों या शर्तों के उल्लंघन में यान चलाया जा रहा हो वहां ऐसी स्थिति में भी बीमा कंपनी का दायित्व समाप्त नहीं हो जाता – तथापि, बीमा कंपनी बीमाकृत से संदाय किए गए प्रतिकर की वसूली के लिए कार्रवाई कर सकती है ।

रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती नजमा खातून और अन्य** 37

– धारा 163-क – मोटर दुर्घटना दावा – वाहन स्वामी के पुत्र की वाहन चलाते समय दुर्घटना में मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – मृतक की आय 3,000/- रुपए मासिक निर्धारित किया जाना – आक्षेप – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अधिनिर्णीत प्रतिकर अनुचित नहीं कहा जा सकता ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती सुपयार देवी और अन्य** 100

– धारा 163-क, 166 और 173 – दुर्घटना – मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील – जहां निचले न्यायालय ने अपना निर्णय पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के सही मूल्यांकन के आधार पर पारित किया हो वहां आक्षेपाधीन निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन बनाम **रामास्वामी व अन्य** 111

– धारा 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – दावा

पृष्ठ संख्या

– दावेदारों को मामूली क्षतियां पहुंचना – क्षतियों को दृष्टिगत करते हुए 37,700/- रुपए के प्रतिकर के लिए अधिनिर्णय – दावेदारों द्वारा चुनौती – जहां अधिकरण ने तथ्यों और साक्ष्य पर विचार करते हुए विधिसम्मत निर्णय दिया हो वहां अपील में अपील न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने से विरत रहना चाहिए ।

शिवराज सैनी बनाम **प्रहलाद** उर्फ **बोदू मीणा और अन्य** 106

वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980

– धारा 4, 6 और 9 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 90] – वन विभाग द्वारा अधिनियम की धारा 4 के अधीन वन क्षेत्र घोषित करने के लिए अधिसूचना जारी करना – याचियों द्वारा अभिकथित रूप से जमींदार द्वारा जारी रसीद के आधार पर अपनी भूमि बताते हुए आक्षेप करना – याचियों द्वारा अभिकथित रसीद के आधार पर न तो भूमि पर नामांतरण करना और न ही रसीदों को किसी साक्ष्य द्वारा साबित करना – केवल उपधारणा के आधार पर याचियों को कोई फायदा नहीं दिया जा सकता ।

महावीर बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रभागीय वन अधिकारी, मिर्जापुर और अन्य** 32

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 और 16 – सरकार द्वारा पूर्व में गलत आधार पर नियमों का फायदा प्रदान करना – ऐसा फायदा नजीर के रूप में प्रस्तुत करके दावा किया जाना – यदि किसी गलती से किसी व्यक्ति को कोई फायदा दे दिया गया है तो उसे आधार बनाकर ऐसे फायदे की

पृष्ठ संख्या

ईप्सा नहीं की जा सकती ।

जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य बनाम **सफ़िया बेगम** 58

– अनुच्छेद 17, 25 और 26 – धार्मिक स्थल – अनुसूचित जातियों, जनजातियों आदि को मंदिरों में जाने और पूजा करने का अधिकार – कथित बाबा द्वारा चलाए जा रहे बोर्ड द्वारा प्रतिषेध – चूंकि संविधान ने सभी व्यक्तियों को धर्म को मानने, पूजा आदि करने का समान रूप से अधिकार प्रदत्त किया है अतः ऐसे किसी बोर्ड द्वारा प्रतिषेध विधिविरुद्ध है – किसी व्यक्ति को उसके संवैधानिक अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता ।

न्यायालय स्वप्रेरणा से बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 133

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 39 नियम 1 – संयुक्त संपत्ति – तीन में से दो भाइयों द्वारा भूमि का विक्रय – क्रेता द्वारा भूमि अकृषीय घोषित कराकर क्रय किए गए भाग पर निर्माण – भागीदार द्वारा अंतरिम व्यादेश के लिए आवेदन – खारिजी – अपील – प्रत्येक सह-भागीदार को संपत्ति का प्रयोग करने और विकसित करने का अधिकार है – तथापि, सह-भागीदार द्वारा संपत्ति का इस प्रकार प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे कि अन्य भागीदारों के लिए संपत्ति का उपयोग अथवा विभाजन असंभव न बन जाए ।

श्योराज बनाम **मैसर्स एकार्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रा. लि. और अन्य** 18

– धारा 100 और आदेश 41, नियम 32 [सपठित राजस्थान परिसर (किराया एवं बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13] – द्वितीय अपील – दुकान से बेदखली – युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता

पृष्ठ संख्या

– मकान मालिक अपने हित का सर्वोत्तम निर्णायक – यदि बेदखली के वाद में मकान मालिक अभिलेख पर यह साबित कर देता है कि विवादित दुकान की उसे युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता है तो उसका वाद डिक्री कर दिया जाएगा बावजूद इसके कि किराएदार ने मकान मालिक को अन्य वैकल्पिक आवास का सुझाव दिया है क्योंकि मकान मालिक ही अपने हित का सर्वोत्तम निर्णायक होता है ।

जीव राज बनाम **ओम प्रकाश** 78

– धारा 100 – द्वितीय अपील – अपील के लंबन के दौरान पक्षकार की मृत्यु – विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार न बनाया जाना – प्रभाव – ऐसी अपील उपशमित किए जाने योग्य होगी ।

मेहर सिंह बनाम **प्रकाश देवी और अन्य** 114

– धारा 100 [सपठित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(1)(2)] – द्वितीय अपील – विवादित सम्पत्ति में उत्तराधिकार द्वारा पूर्ण स्वामित्व प्राप्त करना – समझौते द्वारा उस स्वामित्व से वंचित करना – बिना स्वामित्व के विवादित सम्पत्ति का दान-विलेख निष्पादित करना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि तत्समय प्रवृत्त संबंधित अधिनियम के अधीन वादी ने विवादित सम्पत्ति में स्वामित्व अर्जित कर लिया है तो पक्षकारों के बीच समझौते द्वारा उसे उस स्वामित्व से वंचित नहीं किया जा सकता है और बिना स्वामित्व के अन्य व्यक्ति द्वारा उस सम्पत्ति के बारे में दान-विलेख निष्पादित करना आमुख पर ही शून्य और अविधिमान्य होगा ।

लेख राम बनाम **सुन्दर राम और अन्य** 118

पृष्ठ संख्या

– धारा 100 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 54, 107, 123 तथा भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 और 49 एवं भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 58, 91 और 92] – अविभाजित सम्पत्ति का दान-विलेख द्वारा अन्तरण – अन्तरण, हिस्से से अधिक सम्पत्ति का होना – दान-विलेख की वैधता को चुनौती देना – चुनौती खारिज होना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि प्रश्नगत दान-विलेख युक्तियुक्त और वैध है तो ऐसे दान-विलेख के माध्यम से सम्पत्ति का अन्तरण विधिमान्य होगा बावजूद इसके कि दान-विलेख हिस्से की सम्पत्ति से ज्यादा भाग का किया गया था क्योंकि विधिमान्य हिस्से तक दान-विलेख के माध्यम से अन्तरण वैध होता है ।

प्रभु देवी (श्रीमती) और अन्य बनाम **विजयलक्ष्मी (श्रीमती) और अन्य** 146

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्री एन. एल. मीना,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्री आर. डी. मीना, संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली ख़ां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2013 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

नीरा जस्सल (श्रीमती)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 14 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति ए. पी. साही

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम, 1982 के अधीन विरचित नियमों और विनियमों के अध्याय-2 का विनियम 5 – प्राध्यापक का पद – प्रोन्नति – रिक्त पद – प्रोन्नति द्वारा 50 प्रतिशत पद भरे जाने का उपबंध – इनकार – जहां प्रोन्नति कोटे में पद उपलब्ध हो वहां किसी अन्य कोटे में परिवर्तित करके प्रोन्नति से इनकार नहीं किया जा सकता ।

इस याचिका में तारीख 22 फरवरी, 2006 के उस आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा दुर्गा बाड़ी ए. बी. बालिका इंटर कालेज, मेरठ में गृह-विज्ञान में प्राध्यापक के रूप में प्रोन्नत किए जाने के याची के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि याची द्वारा दावा किए गए पद को अनुसूचित जाति की आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी से भरा जाना है, और इसलिए याची को प्रोन्नत नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह सामान्य श्रेणी से संबंधित है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि प्रोन्नति का यह कानूनी नियम है कि 50 प्रतिशत पद प्रोन्नति द्वारा भरे जाएंगे । इन नियमों से विचलन नहीं किया जा सकता है यदि उपलब्ध पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए कोई अभ्यर्थी उपलब्ध है । ऊपर उपदर्शित संगणना के अनुसार और प्रति-शपथपत्र के पैरा सं. 6 में यथा स्वीकृति अनुसार प्राध्यापक (गृह-विज्ञान) का पद प्रोन्नति कोटा के अन्तर्गत आता है । यह अविवादित है कि याची सम्यक् रूप से अर्हित और पात्र है तथा उसके पास प्राध्यापक (गृह-विज्ञान) के पद पर प्रोन्नति किए जाने की अर्हता है । रिट याचिका के पैरा सं. 16 में स्पष्ट रूप से यह अभिकथन किया गया है कि आक्षेपित आदेश याची को कोई सूचना या अवसर दिए बिना पारित किया गया है । प्रत्यर्थी ने प्रति-शपथपत्र में पूर्वोक्त प्रकथन से इनकार नहीं किया है और मात्र यह अभिकथन किया है कि

मामले का लागू नियमों के निबंधनों में विनिश्चय किया गया है । यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रोन्नति के दावे पर आगे विचार किया जाएगा यदि प्रोन्नति पद उपलब्ध होता है । जैसाकि ऊपर उल्लिखित किया गया है, अनुपूरक शपथपत्र से यह उपदर्शित होता है कि न तो पद भरा गया है और न ही बोर्ड द्वारा आज तक किसी अभ्यर्थी का चयन किया गया है । पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए तथ्यों और विधि के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आक्षेपित आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं है । तद्नुसार, तारीख 22 फरवरी, 2006 का आदेश और तारीख 4 मार्च, 2006 का पारिणामिक आदेश अभिखंडित किया जाता है । याची के दावे पर सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से 6 सप्ताह के भीतर समक्ष प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाएगा । (पैरा 7, 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	2010 (6) ए. डी. जे. 1 : **हीरा लाल** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ;**	9
[2006]	2006 सिविल अपील सं. 5679, तारीख 8 दिसम्बर, 2006 को विनिश्चित : **रचना रानी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ;**	10
[2005]	2005 ए. एल. जे. 3828 : **श्रीमती सुनीता भगत** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य ;**	10
[1997]	(1997) 11 एस. सी. सी. 630 : **हीरा मन** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ।	8

अपीली (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2007 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 11527.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री आर. एन. यादव, आर. जी. दुबे और अनुभव द्विवेदी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री आर. के. शुक्ला

न्यायमूर्ति ए. पी. साही – याची के विद्वान् काउंसेल श्री आर. एन. यादव, प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 की ओर से विद्वान् स्थायी काउंसेल और प्रबंध-समिति-प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से विद्वान् काउंसेल को सुना ।

2. इस याचिका में तारीख 22 फरवरी, 2006 के उस आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा दुर्गा बाड़ी ए. बी. बालिका इंटर कालेज, मेरठ में गृह-विज्ञान में प्राध्यापक के रूप में प्रोन्नत किए जाने के याची के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि याची द्वारा दावा किए गए पद को अनुसूचित जाति की आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी से भरा जाना है, और इसलिए याची को प्रोन्नत नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह सामान्य श्रेणी से संबंधित है ।

3. याची ने यह पक्षकथन किया है कि संस्था में प्राध्यापक के 12 पद हैं और उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड अधिनियम के अधीन विरचित नियम और विनियमों के साथ पठित उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट विनियमन अधिनियम के अध्याय-II, विनियम 5 के निबंधनों में 50 प्रतिशत पद प्रोन्नति द्वारा भरे जाने हैं । यह दलील दी गई है कि उक्त 12 पदों में से केवल प्राध्यापक (गृह-विज्ञान) का एक पद रिक्त था और 7 पदों पर वे अभ्यर्थी कार्य कर रहे थे, जिनकी सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति की गई थी तथा 4 प्राध्यापक प्रोन्नति के आधार पर कार्य कर रहे हैं । इसलिए याची द्वारा दावा किए गए पद को प्रोन्नति द्वारा भरा जाना है क्योंकि यह प्रोन्नति कोटे के 50 प्रतिशत के अन्तर्गत आता है । इसलिए, यह दलील दी गई है कि आक्षेपित आदेश द्वारा दिया गया निदेश जिसके द्वारा पद को अनुसूचित जाति के अभ्यर्थी द्वारा सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने के लिए आदेश जारी किया गया है, विधितः त्रुटिपूर्ण है ।

4. दूसरी ओर विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चूंकि अनुसूचित जाति कोटा पूरा नहीं हुआ है इसलिए यह आदेश आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी को फायदा देने के उद्देश्य से पारित किया गया है और तद्नुसार इस पद को सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने का निदेश दिया गया है । उन्होंने यह दलील दी कि यदि यह पद प्रोन्नति कोटे के अन्तर्गत आता है तो भी आरक्षण विधि कार्यान्वित करने के उद्देश्य से और 1993 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 4 के अनुसार विहित नियमों में याची का दावा स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

5. याची द्वारा तारीख 15 अप्रैल, 2010 को दिए गए निदेश के

अनुसरण में एक अनुपूरक शपथपत्र फाइल किया गया है । उक्त अनुपूरक शपथपत्र के साथ फाइल जिला विद्यालय निरीक्षक का पत्र जो अभिलेख पर है, यह उपदर्शित करता है कि इस रिट याचिका में पारित तारीख 2 मार्च, 2007 के अंतरिम आदेश को ध्यान में रखते हुए, न तो यह पद भरा गया है और न ही किसी अभ्यर्थी का आज तक बोर्ड द्वारा चयन किया गया है ।

6. यह प्रति-शपथपत्र याची के अनुरोध का विरोध करते हुए राज्य की ओर से फाइल किया गया है जबकि प्रबंध समिति ने याची के पक्षकथन का समर्थन किया है ।

7. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि प्रोन्नति का यह कानूनी नियम है कि 50 प्रतिशत पद प्रोन्नति द्वारा भरे जाएंगे । इन नियमों से विचलन नहीं किया जा सकता है यदि उपलब्ध पद पर प्रोन्नत किए जाने के लिए कोई अभ्यर्थी उपलब्ध है । ऊपर उपदर्शित संगणना के अनुसार और प्रति-शपथपत्र के पैरा सं. 6 में यथा स्वीकृति अनुसार प्राध्यापक (गृह-विज्ञान) का पद प्रोन्नति कोटा के अन्तर्गत आता है । यह अविवादित है कि याची सम्यक् रूप से अर्हित और पात्र है तथा उसके पास प्राध्यापक (गृह-विज्ञान) के पद पर प्रोन्नत किए जाने की अर्हता है ।

8. इसे ध्यान में रखते हुए, याची प्रोन्नति के लिए उपलब्ध अभ्यर्थी होने के कारण प्रोन्नत किए जाने की हकदार है । उच्चतम न्यायालय ने **हीरा मन** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रोन्नति द्वारा भरे जाने वाले किसी पद को संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन विरचित अनुकम्पा नियुक्ति नियमों के अधीन सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने की प्रस्थापना नहीं की जा सकती ।

9. इस न्यायालय द्वारा **हीरा लाल** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए आरक्षण के दावे पर केवल कानून के अधीन यथा उपबंधित निबंधनों में उपलब्ध पद के अनुसार विचार किया जाना चाहिए ।

10. तथापि, यह उल्लेखनीय है कि ऐसे ही मामलों में, न्यायालय के

---

[1] (1997) 11 एस. सी. सी. 630.

[2] 2010 (6) ए. डी. जे. 1.

समक्ष **श्रीमती सुनीता भगत** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में ऐसा ही विवाद्यक उठा था और खंड न्यायपीठ ने यह निष्कर्ष निकाला था कि पद को सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने के लिए परिवर्तित नहीं किया जा सकता । तथापि, उक्त मामले में स्थिति भिन्न प्रतीत होती है और संविवाद को लागू अन्य उपबंधों की अवेक्षा किए बिना उच्चतम न्यायालय के समक्ष **रचना रानी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में स्थिति उपदर्शित की जानी प्रतीत नहीं होती ।

11. रिट याचिका के पैरा सं. 16 में स्पष्ट रूप से यह अभिकथन किया गया है कि आक्षेपित आदेश याची को कोई सूचना या अवसर दिए बिना पारित किया गया है । प्रत्यर्थी ने प्रति-शपथपत्र में पूर्वोक्त प्रकथन से इनकार नहीं किया है और मात्र यह अभिकथन किया है कि मामले को लागू नियमों के निबंधनों में विनिश्चय किया गया है । यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रोन्नति के दावे पर आगे विचार किया जाएगा यदि प्रोन्नति पद उपलब्ध होता है । जैसाकि ऊपर उल्लिखित किया गया है, अनुपूरक शपथपत्र से यह उपदर्शित होता है कि न तो पद भरा गया है और न ही बोर्ड द्वारा आज तक किसी अभ्यर्थी का चयन किया गया है ।

12. पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए तथ्यों और विधि के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आक्षेपित आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं है । तद्नुसार, तारीख 22 फरवरी, 2006 का आदेश और तारीख 4 मार्च, 2006 का पारिणामिक आदेश अभिखंडित किया जाता है । याची के दावे पर सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से 6 सप्ताह के भीतर समक्ष प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाएगा ।

13. तद्नुसार यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । खर्चों का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मही./मह.

---

[1] 2005 ए. एल. जे. 3828.

[2] 2006 की सिविल अपील सं. 5679, तारीख 8 दिसम्बर, 2006 को विनिश्चित ।

प्रबंध समिति श्री राम जानकी इंटर कालेज, सरोखनपुर, बदलापुर, जिला जौनपुर और एक अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 23 सितम्बर, 2010

न्यायमूर्ति शिशिर कुमार

उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1971 (1971 का अधिनियम सं. 24) – धारा 16क(5) – प्रशासनिक स्कीम – प्रबंध समिति का कार्यकाल बढ़ाने के लिए स्कीम में संशोधन या परिवर्तन – पूर्व अनुमोदन की अपेक्षा – जहां ऐसा संशोधन विधि के अनुसार न किया गया हो वहां ऐसे संशोधन को क्रियान्वित करके उसका फायदा नहीं दिया जा सकता ।

यह रिट याचिका संयुक्त शिक्षा निदेशक, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी द्वारा तारीख 30 अगस्त, 2010 को पारित आदेश (रिट याचिका का उपाबंध 12) को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई है । याचिका में याची द्वारा श्री राम जानकी इंटर कालेज, सरोखनपुर, बदलापुर, जिला जौनपुर की प्रबंध समिति के कार्यकरण में प्रत्यर्थियों द्वारा हस्तक्षेप न करने के लिए परमादेश प्रकृति की रिट याचिका जारी करने का अनुरोध किया गया है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने संबंधित अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि कार्यकाल को तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष किए जाने का प्रस्ताव और संशोधन, संशोधन से पूर्व कभी भी अनुमोदित नहीं किया गया था । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के समक्ष यह भी दलील दी कि तारीख 20 जुलाई, 2002 का आदेश, प्रशासनिक स्कीम में तीन वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष की अवधि के संशोधन के लिए अनुमोदन करने वाला जिला विद्यालय निरीक्षक का पत्र है । यह पूर्णतः अधिनियम के अनुकूल संशोधन को अनुमोदित करने वाला आदेश नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में, क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने यह अभिनिर्धारित किया कि संशोधन अधिनियम के अनुकूल नहीं है, इसलिए यह समझा जाएगा कि प्रबंध समिति का कार्यकाल तीन वर्ष ही है और इसलिए याची इस बात के हकदार नहीं थे या उन्हें यह प्राधिकार नहीं था

कि वे 2009 में निर्वाचन कराते जब प्रबंध समिति का कार्यकाल समाप्त हो चुका था । यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि प्रशासनिक स्कीम में कोई संशोधन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित नहीं कर दिया जाता जो कि आवश्यक अपेक्षा है, इसलिए प्रत्यर्थी सं. 2 ने यह अभिनिर्धारित किया कि संशोधन पूर्णतः विधि के अनुरूप नहीं किया गया है और इसलिए यदि कार्यकाल समाप्त हो जाता है तो प्रशासनिक स्कीम के अनुसार प्रबंध समिति उपरोक्त अवधि के अवसान के पश्चात् अपने पर्यवेक्षण में कोई निर्वाचन नहीं करा सकती । प्रशासनिक स्कीम के उपबंधों का परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि अगर कोई संशोधन प्रस्तावित किया जाता है तो वह इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के उपबंधों से पूर्णतः अनुरूप होगा और साथ ही सक्षम प्राधिकारी अर्थात् संयुक्त शिक्षा निदेशक के पूर्व अनुमोदन से किया जाएगा । तारीख 20 जुलाई, 2002 के आदेश से यह प्रतीत होता है कि याची की प्रबंध समिति, प्रबंध समिति के कार्यकाल को बढ़ाने के संबंध में खंड 4 में संशोधन करना चाहती थी और इसका प्रस्ताव जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजा गया था । जिला विद्यालय निरीक्षक ने इसे तारीख 18 जुलाई, 2002 को संयुक्त शिक्षा निदेशक को भेजा था । संयुक्त शिक्षा निदेशक ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था और अधिनियम की धारा 16क(5) के उपबंधों के अनुरूप कार्यकाल तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष करने के संशोधन की अपनी मंजूरी प्रदत्त कर दी थी । धारा 16क(5) यह उपबंध करती है कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन किए जाने से पूर्व सक्षम प्राधिकारी का पूर्व अनुमोदन आवश्यक है । यदि पूर्व अनुमोदन प्राप्त नहीं किया गया है तो संशोधन स्वतः ही अविधिमान्य और अवैध समझा जाएगा । क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा पारित आदेश से यह प्रतीत नहीं होता है कि याची ने तारीख 20 जुलाई, 2002 के अनुमोदन या प्रस्ताव के पश्चात् ऐसा कोई दस्तावेज प्रस्तुत किया था । मंजूरी के पश्चात् यह आवश्यक है कि प्रस्ताव तैयार किया जाए और उसे सदन के समक्ष रखा जाए और उसे मतदान द्वारा पारित किया जाना चाहिए और उसके पश्चात् प्रशासनिक स्कीम में संशोधन की कार्यवाही को सभी संबद्ध दस्तावेजों के साथ अनुमोदनार्थ संयुक्त शिक्षा निदेशक को भेजा जाना चाहिए । अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि ऐसा कोई भी दस्तावेज सक्षम प्राधिकारी के समक्ष फाइल नहीं किया गया था । इसलिए यह नहीं समझा जा सकता कि तारीख 20 जुलाई, 2002 का आदेश प्रबंध समिति का कार्यकाल तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष किए जाने का आदेश है । इन परिस्थितियों में, क्षेत्रीय

स्तरीय समिति ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि 2004 में हुए निर्वाचन को ध्यान में रखते हुए प्रबंध समिति का कार्यकाल पहले ही 2007 में समाप्त हो चुका था, इसलिए याची की प्रबंध समिति अपने पर्यवेक्षण में निर्वाचन नहीं करा सकती और इसलिए दोनों पक्षों के दावे उचित रूप से खारिज किए गए हैं तथा विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपने पर्यवेक्षण के अधीन निर्वाचन कराने का निदेश दिया गया है । श्री खरे की दलील इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती कि तारीख 20 जुलाई, 2002 के आदेश के पश्चात् प्रारम्भ की गई किसी भी कार्यवाही से संबंधित कोई भी दस्तावेज न्यायालय की जानकारी में नहीं लाया गया है । इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि यदि याची के अनुसार कोई संशोधन तैयार किया गया था तो भी वह प्रशासनिक स्कीम में निगमित किया जाना चाहिए था, किन्तु यह स्वीकार किया गया है कि इसे प्रशासनिक स्कीम में संबद्ध स्थान पर निगमित नहीं किया गया है, जिसके द्वारा कार्यकाल को तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष कर दिया गया था । याची का पक्षकथन है कि इसे प्रशासनिक स्कीम के साथ उपाबद्ध कर दिया गया है, जबकि क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष के अनुसार यह प्रतीत नहीं होता कि निर्वाचन की कार्यवाही से संबंधित ऐसा कोई दस्तावेज याचियों द्वारा कभी भी फाइल किया गया था । उपरोक्त तथ्य को और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं पाता है कि चार मास की अवधि के भीतर प्राधिकृत नियंत्रक के पर्यवेक्षण के अधीन निर्वाचन कराए जाएंगे । तारीख 30 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा दिए गए निदेश से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यर्थी उपरोक्त आदेश के अनुपालन में प्रबंध समिति के निर्वाचन कराएंगे । (पैरा 8, 11, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (1) ई. एस. सी. 371 : **प्रबंध समिति, आर्य कन्या इंटर कालेज, बुलंदशहर और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ;**	5
[2005]	(2005) 1 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 85 : **प्रबंध समिति, पंडित जवाहरलाल नेहरू इंटर कालेज, बांसगांव, जिला गोरखपुर और एक अन्य** बनाम **उप शिक्षा निदेशक, गोरखपुर क्षेत्र, गोरखपुर और अन्य** ।	9

आरम्भिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2010 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 58636.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री अशोक खरे और सिद्धार्थ खरे

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री पी. के. शाही और शैलेन्द्र

न्यायमूर्ति शिशिर कुमार – यह रिट याचिका संयुक्त शिक्षा निदेशक, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी द्वारा तारीख 30 अगस्त, 2010 को पारित आदेश (रिट याचिका का उपाबंध 12) को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई है । याचिका में याची द्वारा श्री राम जानकी इंटर कालेज, सरोखनपुर, बदलापुर, जिला जौनपुर की प्रबंध समिति के कार्यकरण में प्रत्यर्थियों द्वारा हस्तक्षेप न करने के लिए परमादेश प्रकृति की रिट याचिका जारी करने का अनुरोध किया गया है ।

2. श्री राम जानकी इंटर कालेज, सरोखनपुर, बदलापुर, उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 और 1971 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 24 के उपबंधों के अधीन एक मान्यताप्राप्त और वित्त पोषित संस्था है । संस्था अधिनियम के अधीन विरचित अस्थायी अनुमोदित प्रशासनिक स्कीम के अधीन चलायी जाती है । इसका अनुमोदन तारीख 18 दिसम्बर, 1962 को उप शिक्षा निदेशक द्वारा किया गया है । तत्पश्चात् 1981 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 1 के प्रवृत्त होने के पश्चात् उप शिक्षा निदेशक, वाराणसी क्षेत्र, वाराणसी के तारीख 25 जनवरी, 1985 के आदेश के अधीन संशोधन किए गए थे । इसकी एक प्रति रिट याचिका के उपाबंध-2 के रूप में उपाबद्ध की गई है । प्रशासनिक स्कीम के अधीन संस्था का प्रबंध तीन वर्ष के लिए चयनित प्रबंध समिति द्वारा किया जाता है । वर्ष 2002 में प्रशासनिक स्कीम में संशोधन के लिए कार्यवाही आरम्भ की गई थी और प्रबंध समिति के कार्यकाल को तीन वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष कर दिया गया था । इस संशोधन से संबंधित सभी दस्तावेज जिला विद्यालय निरीक्षक को, संयुक्त शिक्षा निदेशक, वाराणसी को अनुमोदनार्थ अग्रेषित करने हेतु प्रस्तुत किए गए थे और इसे तारीख 30 जुलाई, 2002 के आदेश द्वारा अनुमोदित कर दिया गया था । परिणामस्वरूप यह उपधारित किया गया कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन किया जाना है और प्रबंध समिति का

कार्यकाल पांच वर्षों तक विस्तारित कर दिया गया है । प्रशासनिक स्कीम के अनुसार, तारीख 2 अक्तूबर, 2004 को निर्वाचन हुए थे, जिसमें श्री सुरेन्द्रमणि दुबे को अध्यक्ष के पद पर, ज्ञानानन्द शुक्ला, याची सं. 2 को प्रबंध समिति के प्रबंधक के रूप में निर्वाचित किया गया था । इसे क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने भी अपने तारीख 10 नवम्बर, 2004 के आदेश द्वारा अनुमोदित कर दिया था । चूंकि इस आदेश को आक्षेपित नहीं किया गया था, इसलिए, तारीख 2 अक्तूबर, 2004 के निर्वाचन के संबंध में कोई विवाद नहीं था । नया निर्वाचन वर्ष 2009 में होना था और इसलिए तारीख 2 अक्तूबर, 2009 को प्रबंध समिति की सभा बुलाई गई थी तथा नए निर्वाचन कराने का निर्णय लिया गया था । जिला विद्यालय निरीक्षक ने निर्वाचन कराए जाने की सूचना के प्रकाशन को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी थी तथा समाचार-पत्र में यह प्रकाशित किया गया था कि नियत तारीख अर्थात् तारीख 25 अक्तूबर, 2009 को निर्वाचन होगा तथा आवश्यक कार्रवाई हेतु दस्तावेज जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजे गए थे ।

3. याचियों के अनुसार कोई अन्य निर्वाचन नहीं कराया गया है परन्तु मिथ्या रूप से निर्वाचन कराकर शशिधर त्रिपाठी को प्रबंध समिति में अध्यक्ष तथा गिरजाशंकर पाठक को प्रबंधक निर्वाचित दिखाया गया है । इन परिस्थितियों में, क्षेत्रीय स्तरीय समिति को समुचित आदेश पारित करने के लिए दस्तावेज प्रेषित किए गए थे । क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने तारीख 30 अगस्त, 2010 को आदेश पारित करके दोनों ही निर्वाचनों को त्यक्त करते हुए यह निदेश दिया कि प्रबंध संचालक की नियुक्ति की जाए तथा नए सिरे से निर्वाचन कराए जाएं । याची ने इस आदेश को इस आधार पर आक्षेपित किया है कि संयुक्त शिक्षा निदेशक और जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आक्षेपित विनिश्चय क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा पारित आदेश नहीं है, क्योंकि वस्तुतः उप शिक्षा निदेशक ने कोई सुनवाई नहीं की क्योंकि आदेश पर उसके हस्ताक्षर हैं और इसलिए यह आसानी से समझा जा सकता है कि यह आदेश क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा जारी किए गए सरकारी आदेश के अनुसार किया गया विनिश्चय नहीं है । गिरजा शंकर पाठक द्वारा की गई संपूर्ण कार्यवाही पूर्णतया बनावटी कार्यवाही है और अन्यथा भी गिरजा शंकर पाठक को निर्वाचन की संपूर्ण कार्यवाही को विकृत करने का कोई प्राधिकार नहीं है । प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को यह अभिनिर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है कि वर्ष 2004 में निर्वाचित प्रबंध समिति नवम्बर, 2007 में काल-वर्जित हो गई थी ।

4. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री खरे ने यह दलील दी कि प्रशासनिक स्कीम संयुक्त शिक्षा निदेशक के तारीख 20 जुलाई, 2002 के आदेश द्वारा संशोधित की गई थी और 2004 में निर्वाचन कराया गया था तथा याचियों की प्रबंध समिति और उनके हस्ताक्षर सत्यापित किए गए थे, इसलिए, यह स्पष्ट है कि प्रबंध समिति का कार्यकाल पांच वर्ष का है और याचियों की प्रबंध समिति का दावा इस आधार पर नामंजूर नहीं किया जा सकता कि चूंकि प्रबंध समिति का कार्यकाल केवल तीन वर्ष का है, इसलिए, विधि के सुस्थापित सिद्धान्त को दृष्टिगत करते हुए याचियों की प्रबंध समिति के पर्यवेक्षण में पांच वर्ष की अवधि मानते हुए निर्वाचन नहीं कराया जा सकता । अधिनियम की धारा 16क(5) के अनुसार प्रशासनिक स्कीम में केवल सक्षम प्राधिकारी का अनुमोदन, यदि कोई हो, वांछनीय है और यदि यह अनुमोदित कर दी गई है तो यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता या यह बहस नहीं की जा सकती कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन जिसका अनुमोदन तारीख 20 जुलाई, 2002 को हो गया था, अधिनियम के अनुरूप नहीं है । इसके अतिरिक्त स्वीकृततः स्कीम संशोधित कर दी गई थी और संयुक्त शिक्षा निदेशक के तारीख 20 जुलाई, 2002 के आदेश द्वारा अनुमोदित कर दी गई थी और किसी ने भी उसका विरोध नहीं किया था और 2004 में निर्वाचन हुए थे और याचियों की प्रबंध समिति निर्वाचित की गई थी और सक्षम प्राधिकारी ने हस्ताक्षर सत्यापित किए थे और 2009 के निर्वाचन को प्रत्यर्थियों द्वारा इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि प्रशासनिक स्कीम में कार्यकाल तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष करने संबंधी संशोधन उचित रूप से नहीं किया गया था । इसलिए, अभिलिखित किया गया इस आशय का निष्कर्ष कि संशोधन के प्रयोजन के लिए कार्यवाही आरम्भ करने से संबंधित दस्तावेज उपलब्ध नहीं हैं, सही नहीं है । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थियों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए विधिसम्मत नहीं हैं कि यदि संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा अनुमोदित संशोधन प्रशासनिक स्कीम में उपाबद्ध किया जाता है और यह उस स्थान पर निगमित नहीं किया जाता है जहां इसे निगमित किया जाना चाहिए था तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि संशोधन विधि के अनुसार नहीं किया गया है ।

5. श्री खरे ने **प्रबंध समिति, आर्य कन्या इंटर कालेज, बुलंदशहर और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए

---

[1] 2009 (1) ई. एस. सी. 371.

निर्णय का अवलंब लेते हुए पैरा 3 और पैरा 9 को निर्दिष्ट किया है, जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "3. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश को आक्षेपित करते हुए यह दलील दी है कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन की शक्ति उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (जिसे इसमें इसके पश्चात् '1921 का अधिनियम' कहा गया है) की धारा 16क(5) के अधीन प्रदत्त की गई है । इन संशोधनों को शिक्षा निदेशक द्वारा अनुमोदित किया जाता है । याची की प्रबंध समिति ने जो कि 2005 में निर्वाचित की गई थी, प्रशासनिक स्कीम में संशोधन प्रस्तावित किए थे जिनके द्वारा प्रबंध समिति के तीन वर्ष के कार्यकाल के स्थान पर, तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष प्रतिस्थापित किया गया था । वस्तुतः, इस अवधि के दौरान संशोधनों को अनुमोदित कर दिया गया था । तथापि, क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक ने अनुमोदन के आदेश में पूर्णतः अवांछित ये शर्तें निगमित की थीं कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन (अवधि के विस्तार के संबंध में) केवल उसी प्रबंध समिति को ही लागू होंगे, जो कि संशोधनों के अनुमोदित होने के पश्चात् निर्वाचित हुई है । यह दलील दी गई कि शिक्षा निदेशक इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश का तारीख 4 अगस्त, 2003 का पत्र जो कि यह उपबंध करता है कि ये संशोधन केवल उस प्रबंध समिति को लागू होंगे जो कि, संशोधनों के अनुमोदन की तारीख के पश्चात् निर्वाचित हुई है, धारा 16क(5) के अधीन उसकी विधिक शक्तियों के आधिक्य में है । यह दलील दी गई है कि शिक्षा निदेशक को 1921 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन यह प्राधिकार नहीं है कि वह उस रीति पर भी नियंत्रण रखे, जिसके द्वारा संशोधन प्रभावी किए गए हैं ।
>
> 9. यह कहा गया है कि संस्था की प्रबंध समिति का अंतिम अविवादित निर्वाचन तारीख 7 सितम्बर, 2005 को हुआ था । उस निर्वाचन से संबद्ध दस्तावेज क्षेत्रीय स्तर की समिति को भेजे गए थे जो कि तारीख 19 दिसम्बर, 2000 के शासकीय आदेश के अधीन गठित की गई थी, जिसके अध्यक्ष क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक हैं । क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने तारीख 20 दिसम्बर, 2005 के अपने निर्णय द्वारा निर्वाचन को अनुमोदित किया था । इसके परिणामस्वरूप जिला विद्यालय निरीक्षक ने भी, प्रबंध समिति के विधिक प्रबंधक के रूप में

श्री सुनील कुमार के हस्ताक्षर सत्यापित किए थे । अनुमोदित प्रशासनिक स्कीम के खंड 8 के अधीन जैसा कि वर्ष 2005 में हुए निर्वाचन की तारीख को विद्यमान था, निर्वाचित पदाधिकारियों का कार्यकाल इस शर्त के साथ तीन वर्ष उपबंधित था कि अनुग्रह अवधि एक मास तक हो सकेगी, प्रबंध समिति के पदाधिकारी अपने पदों पर बने रहेंगे और यदि नव निर्वाचित प्रबंध समिति उपरोक्त तीन वर्ष और एक मास की अवधि तक कार्यभार ग्रहण नहीं करती है तो इसे कालवर्जित समझा जाएगा और ऐसी स्थिति में आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा छह मास के अंदर प्रबंध समिति के नए निर्वाचन कराने तक एक तदर्थ समिति की नियुक्ति की जाएगी ।"

6. दूसरी ओर प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल श्री शैलेन्द्र ने न्यायालय का ध्यान धारा 16-क(5) के उपबंधों की ओर आकृष्ठ किया है, जो नीचे उद्धृत है :–

"16-क(5) प्रत्येक संस्था की प्रशासनिक स्कीम निदेशक के अनुमोदनाधीन होगी और निदेशक की पूर्व मंजूरी के बिना किसी समय प्रशासनिक स्कीम में कोई संशोधन या परिवर्तन नहीं किया जाएगा :

परन्तु, यह कि जहां किसी संस्था का प्रबंधमंडल निदेशक द्वारा किसी प्रशासनिक स्कीम में किसी संशोधन या परिवर्तन का अनुमोदन करने से इनकार करने से व्यथित है तो प्रबंधमंडल द्वारा राज्य सरकार को अभ्यावेदन किए जाने पर राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन या परिवर्तन संस्था के हित में है तो वह निदेशक को उसे अनुमोदित करने के आदेश कर सकेगी और उस पर निदेशक तद्नुसार कार्रवाई करेगा ।"

7. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने उपरोक्त उपबंधों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि पूर्व अनुमोदन की वांछनीयता का यह अर्थ है कि यदि प्रशासनिक स्कीम संशोधित की जाती है तो इस आशय की प्रस्थापना सक्षम प्राधिकारी का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए भेजी जाएगी और यदि इसे अनुमोदित कर दिया जाता है तो समुचित संशोधन किया जाएगा और उस पर सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी प्राप्त की जाएगी । जब तक पूर्व अनुमोदन प्राप्त नहीं होता, धारा 16क(5) की अपेक्षा पूर्ण नहीं होगी और यदि प्रशासनिक स्कीम के अधीन कोई संशोधन किया गया है तो उसे

अधिनियम के अनुरूप किया गया नहीं समझा जाएगा ।

8. क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने संबंधित अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि कार्यकाल को तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष किए जाने का प्रस्ताव और संशोधन, संशोधन से पूर्व कभी भी अनुमोदित नहीं किया गया था । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के समक्ष यह भी दलील दी कि तारीख 20 जुलाई, 2002 का आदेश, प्रशासनिक स्कीम में तीन वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष की अवधि के संशोधन के लिए अनुमोदन करने वाला जिला विद्यालय निरीक्षक का पत्र है । यह पूर्णतः अधिनियम के अनुकूल संशोधन को अनुमोदित करने वाला आदेश नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में, क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने यह अभिनिर्धारित किया कि संशोधन अधिनियम के अनुकूल नहीं है, इसलिए यह समझा जाएगा कि प्रबंध समिति का कार्यकाल तीन वर्ष ही है और इसलिए याची इस बात के हकदार नहीं थे या उन्हें यह प्राधिकार नहीं था कि वे 2009 में निर्वाचन कराते जब प्रबंध समिति का कार्यकाल समाप्त हो चुका था । यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि प्रशासनिक स्कीम में कोई संशोधन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि उसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित नहीं कर दिया जाता जो कि आवश्यक अपेक्षा है, इसलिए प्रत्यर्थी सं. 2 ने यह अभिनिर्धारित किया कि संशोधन पूर्णतः विधि के अनुरूप नहीं किया गया है और इसलिए यदि कार्यकाल समाप्त हो जाता है तो प्रशासनिक स्कीम के अनुसार प्रबंध समिति उपरोक्त अवधि के अवसान के पश्चात् अपने पर्यवेक्षण में कोई निर्वाचन नहीं करा सकती ।

9. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **प्रबंध समिति, पंडित जवाहरलाल नेहरू इंटर कालेज, बांसगांव, जिला गोरखपुर और एक अन्य** बनाम **उप शिक्षा निदेशक, गोरखपुर क्षेत्र, गोरखपुर और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए निर्णय के पैरा 13 को निर्दिष्ट किया है जो इस प्रकार है :–

> "13. प्रबंध समिति, जनता इंटर कालेज, थेकमा, जिजाली, जिला आजमगढ़ **बनाम** उप शिक्षा निदेशक, VII क्षेत्र, गोरखपुर (1982 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 38) वाले मामले में खंडपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यह प्रश्न कि प्रबंधमंडल का नियंत्रक कौन था, यह बात विरोधी पक्षकारों द्वारा बताए गए निर्वाचन की वैधता के

---

[1] (2005) 1 यू. पी. एल. बी. ई. सी. 85.

बारे में विनिश्चय से संबद्ध है और इस प्रयोजन के लिए उप शिक्षा निदेशक को पक्षकारों के साक्ष्य की परीक्षा करनी चाहिए और उसके पश्चात् निष्कर्ष देना चाहिए । प्रबंध समिति, गांधी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय **बनाम** क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक और अन्य (1996 ए. सी. जी. 226) वाले मामले में एक अन्य खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि धारा 16क(7) में उल्लिखित उपबंधों में यह स्वतः विवक्षित है कि वास्तविक नियंत्रण का विनिश्चय करने के लिए क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक, प्रशासनिक स्कीम सहित विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखेगा । धारा 16क की उपधारा (5) के अधीन स्पष्टीकरण में यह स्पष्ट किया गया है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उसे संबद्ध परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए । यह विनिश्चय करते हुए कि किसका वास्तविक नियंत्रण है, क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक को ऐसे नियंत्रण की प्रकृति को सुनिश्चित करना चाहिए और उस पृष्ठभूमि पर विचार करना चाहिए जिस पर विपक्षी पक्षकारों ने ऐसे नियंत्रण का दावा किया है और यदि निर्वाचन की वैधता के बारे में अनन्य जांच में बल हो तो भी कराए गए निर्वाचन की प्रकृति पर विचार करना चाहिए और संविवाद को विनिश्चित करने के लिए उप निदेशक द्वारा पृष्ठभूमि पर ध्यान दिया जाना चाहिए और निस्संदेह प्रबंध समिति और संस्था की वैधता के बारे में अंतिम निर्णय सक्षम न्यायालय द्वारा लिया जाना चाहिए । न्यायालय ने पूर्ण खंडपीठ द्वारा बेधर सिंह **बनाम** नबी बख्श (ए. आई. आर. 1962 इलाहाबाद 43) वाले मामले के विनिश्चय का अवलंब लिया जिसमें उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 6 में प्रयुक्त 'प्राधिकारी' अभिव्यक्ति का निर्वचन किया गया है जिससे 'विधिक रूप से धारित' अभिप्रेत है और अतिचारी को अधिनियम की धारा 9 का लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं बनाता है । कोई अन्य निर्वचन ऐसे व्यक्तियों के दावे के लिए हकदार बना सकता है जो किसी भी प्रकार से हकदार नहीं हैं और जो नियंत्रण के आधार पर हकदार बन सकते हैं चाहे वह किसी भी प्रकृति का क्यों न हो ।"

10. उसके पश्चात् यह भी दलील दी गई है कि अब क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने यह निदेश दिया है कि वैध सदस्यों द्वारा चार मास की अवधि के भीतर नए निर्वाचन कराए जाएं और तब तक प्राधिकृत नियंत्रक संस्था के कार्यों का प्रबंध करेगा । इन परिस्थितियों में, अब नए निर्वाचन कराए

जाएंगे और उचित रूप में निर्वाचित प्रबंध समिति ही कार्यों का प्रबंध करेगी ।

11. मैंने पक्षकारों की दलीलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया । अभिलेख से यह स्पष्ट है कि अन्तिम निर्वाचन 2003 में कराए गए थे, जिनमें याची की प्रबंध समिति निर्वाचित हुई थी और उनके हस्ताक्षर सत्यापित किए गए थे । प्रशासनिक स्कीम के उपबंधों का परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि अगर कोई संशोधन प्रस्तावित किया जाता है तो वह इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम के उपबंधों से पूर्णतः अनुरूप होगा और साथ ही सक्षम प्राधिकारी अर्थात् संयुक्त शिक्षा निदेशक के पूर्व अनुमोदन से किया जाएगा । तारीख 20 जुलाई, 2002 के आदेश से यह प्रतीत होता है कि याची की प्रबंध समिति, प्रबंध समिति के कार्यकाल को बढ़ाने के संबंध में खंड 4 में संशोधन करना चाहती थी और इसका प्रस्ताव जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजा गया था । जिला विद्यालय निरीक्षक ने इसे तारीख 18 जुलाई, 2002 को संयुक्त शिक्षा निदेशक को भेजा था । संयुक्त शिक्षा निदेशक ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था और अधिनियम की धारा 16क(5) के उपबंधों के अनुरूप कार्यकाल तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष करने के संशोधन की अपनी मंजूरी प्रदत्त कर दी थी । धारा 16क(5) यह उपबंध करती है कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन किए जाने से पूर्व सक्षम प्राधिकारी का पूर्व अनुमोदन आवश्यक है । यदि पूर्व अनुमोदन प्राप्त नहीं किया गया है तो संशोधन स्वतः ही अविधिमान्य और अवैध समझा जाएगा । क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा पारित आदेश से यह प्रतीत नहीं होता है कि याची ने तारीख 20 जुलाई, 2002 के अनुमोदन या प्रस्ताव के पश्चात् ऐसा कोई दस्तावेज प्रस्तुत किया था । मंजूरी के पश्चात् यह आवश्यक है कि प्रस्ताव तैयार किया जाए और उसे सदन के समक्ष रखा जाए और उसे मतदान द्वारा पारित किया जाना चाहिए और उसके पश्चात् प्रशासनिक स्कीम में संशोधन की कार्यवाही को सभी संबद्ध दस्तावेजों के साथ अनुमोदनार्थ संयुक्त शिक्षा निदेशक को भेजा जाना चाहिए । अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि ऐसा कोई भी दस्तावेज सक्षम प्राधिकारी के समक्ष फाइल नहीं किया गया था । इसलिए यह नहीं समझा जा सकता कि तारीख 20 जुलाई, 2002 का आदेश प्रबंध समिति का कार्यकाल तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष किए जाने का आदेश है । इन परिस्थितियों में, क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि 2004 में हुए निर्वाचन को ध्यान में रखते हुए प्रबंध समिति का कार्यकाल पहले ही 2007 में

समाप्त हो चुका था, इसलिए याची की प्रबंध समिति अपने पर्यवेक्षण में निर्वाचन नहीं करा सकती और इसलिए दोनों पक्षों के दावे उचित रूप से खारिज किए गए हैं तथा विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपने पर्यवेक्षण के अधीन निर्वाचन कराने का निदेश दिया गया है ।

12. श्री खरे की दलील इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती कि तारीख 20 जुलाई, 2002 के आदेश के पश्चात् प्रारम्भ की गई किसी भी कार्यवाही से संबंधित कोई भी दस्तावेज न्यायालय की जानकारी में नहीं लाया गया है । इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि यदि याची के अनुसार कोई संशोधन तैयार किया गया था तो भी वह प्रशासनिक स्कीम में निगमित किया जाना चाहिए था, किन्तु यह स्वीकार किया गया है कि इसे प्रशासनिक स्कीम में संबद्ध स्थान पर निगमित नहीं किया गया है, जिसके द्वारा कार्यकाल को तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष कर दिया गया था । याची का पक्षकथन है कि इसे प्रशासनिक स्कीम के साथ उपाबद्ध कर दिया गया है, जबकि क्षेत्रीय स्तरीय समिति द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष के अनुसार यह प्रतीत नहीं होता कि निर्वाचन की कार्यवाही से संबंधित ऐसा कोई दस्तावेज याचियों द्वारा कभी भी फाइल किया गया था ।

13. उपरोक्त तथ्य को और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए मैं हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं पाता हूं कि चार मास की अवधि के भीतर प्राधिकृत नियंत्रक के पर्यवेक्षण के अधीन निर्वाचन कराए जाएंगे । तारीख 30 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा दिए गए निदेश से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यर्थी उपरोक्त आदेश के अनुपालन में प्रबंध समिति के निर्वाचन कराएंगे ।

14. रिट याचिका में बल नहीं है और इसे खारिज किया जाता है ।

15. खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

भट./मह.

श्योराज

बनाम

मैसर्स एकार्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रा. लि. और अन्य

तारीख 11 फरवरी, 2011

न्यायमूर्ति सुनील अम्बवानी और न्यायमूर्ति (श्रीमती) जयश्री तिवारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1 – संयुक्त संपत्ति – तीन में से दो भाइयों द्वारा भूमि का विक्रय – क्रेता द्वारा भूमि अकृषीय घोषित कराकर क्रय किए गए भाग पर निर्माण – भागीदार द्वारा अंतरिम व्यादेश के लिए आवेदन – खारिजी – अपील – प्रत्येक सह-भागीदार को संपत्ति का प्रयोग करने और विकसित करने का अधिकार है – तथापि, सह-भागीदार द्वारा संपत्ति का इस प्रकार प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे कि अन्य भागीदारों के लिए संपत्ति का उपयोग अथवा विभाजन असंभव न बन जाए ।

यह प्रथम अपील सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), गाजियाबाद द्वारा 2010 के मूल वाद सं. 2343, श्योराज बनाम मैसर्स एकार्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड वाले मामले में तारीख 24 दिसंबर, 2010 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा सिविल न्यायाधीश ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् अंतरिम व्यादेश के लिए आवेदन खारिज कर दिया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में वादी के भाइयों द्वारा विक्रय-विलेख वर्ष 2004 में निष्पादित किए गए थे । इसके पश्चात् भूमि अकृषीय भूमि के रूप में घोषित की गई थी और तत्पश्चात् गाजियाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा भवन का नक्शा अनुमोदित किया गया था । यह उपदर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई अभिवाक् नहीं किया गया है या सामग्री उपलब्ध नहीं है कि वादी भौतिक रूप से भूमि पर काबिज था या उसने कोई फसल बोई थी । वादी ने ऐसे किसी तथ्य का अभिवाक् नहीं किया है या अपने स्वामित्व संबंधी अधिकारों के उपयोग को साबित करने के लिए दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किए हैं । वादी द्वारा भूमि पर कोई कृषि क्रिया करने का कोई अभिवाक् नहीं किया गया है या कोई सबूत नहीं दिया गया है । न्यायालय को विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में प्रथमदृष्ट्या कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती

है । वादी इस बात से अवगत था कि उसके भाइयों ने प्रतिवादियों के हक में दो तिहाई भाग का विक्रय कर दिया था । उसने भूमि का विभाजन कराना पसंद नहीं किया अथवा किसी मालिकाना अधिकार का प्रयोग नहीं किया । वह छह वर्ष तक प्रतीक्षा करता रहा जब तक कि प्रतिवादियों ने भवन का नक्शा स्वीकृत नहीं करा लिया और निर्माण आरंभ नहीं कर दिया । प्रत्येक सह-भागीदार को संपत्ति में अधिकार है और उसे विधि के अनुसार इस शर्त के अध्यधीन संपत्ति को विकसित करने का अधिकार है कि संपत्ति का ऐसा प्रयोग विभाजन को असंभव नहीं बनाएगा । वादी विभाजन और व्यादेश के लिए वाद फाइल कर सकता है अथवा न्यायालय की जानकारी में ऐसे तथ्य और परिस्थितियां ला सकता है कि प्रतिवादियों द्वारा किए गए क्रियाकलापों से विभाजन असंभव बन जाएगा । किसी भी दशा में वाद फाइल करने में विलंब वादी को व्यादेश के अनुतोष का अनुरोध करने के लिए हकदार नहीं बनाएगा । वर्तमान मामले में वादी ने यह कभी भी अभिवाक् नहीं किया है या यह उपदर्शित नहीं किया है कि उसने भूमि पर कृषि करके या अन्यथा कोई कार्य करके किसी स्वामित्वपूर्ण अधिकार का प्रयोग किया है । उसने वर्ष 2004 में विक्रय-विलेखों के निष्पादन के बावजूद आपस में अंशों का विभाजन करने का कोई प्रयास नहीं किया । वादी संपत्ति के प्रयोग के लिए प्रतिवादियों द्वारा वाद फाइल करने की प्रतीक्षा करता रहा । इस बीच में उसने भूमि को अकृषि भूमि घोषित करने के लिए अनुज्ञात किया और राजस्व न्यायालय की अधिकारिता के आधार पर विभाजन के लिए वाद खारिज होने दिया । उसने उन मापों और निरीक्षणों पर भी आपत्ति नहीं की जिनके आधार पर भवन के नक्शे स्वीकृत किए गए थे । उसने यह उपदर्शित करने के लिए भवन के नक्शों की प्रतियां प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया कि क्या विकसित करने के लिए संपूर्ण भूमि या उसका कोई भाग प्रस्तावित है । उसके द्वारा संपत्ति का विभाजन कराने के लिए विलंब और वाद में विभाजन के अनुतोष का दावा न करना वस्तुतः व्यादेश के अनुतोष को खारिज करने के लिए एक आधार के रूप में ठीक ही स्वीकार किया गया है । वादपत्र में किए गए अभिवचनों से यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि भवन निर्माण सामग्री भूखंड अर्थात् खसरा सं. 292 के एक भाग (पूर्वी) पर ही डाली गई है और कुछ श्रमिकों द्वारा सड़क डालना आरंभ किया गया है । प्रतिवादियों के क्रियाकलाप संपूर्ण भूमि को हड़पने के बराबर नहीं हैं जिससे कि वादियों के भाग पर उनके अधिकार विफल हो सकें । वादी ने वादपत्र में या व्यादेश के लिए आवेदन में प्रतिवादियों को भूमि पर पर-व्यक्ति अधिकार सृजित

करने से रोकने के लिए किसी अनुतोष का दावा नहीं किया है और न ही वादी-अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा ऐसी कोई दलील दी गई है । उपर्युक्त कारणों से न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने व्यादेश का आवेदन खारिज करने में तथ्यों और विधि की कोई त्रुटि नहीं की है । (पैरा 8, 9, 16, 17, 18, 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 2 एस. सी. सी. 77 : **नरेन्द्र कांते** बनाम **अनुराधा कांते और अन्य** ;	7,15
[2009]	(2009) 11 एस. सी. सी. 229 : **किशोर सिंह रतन सिंह जडेजा** बनाम **मारुति कारपोरेशन और अन्य** ;	15
[2008]	(2008) 11 एस. सी. सी. 1 : **मंदाली रंगन्ना और अन्य** बनाम **टी. रामचन्द्र और अन्य** ;	14,15
[1984]	ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1789 : **अय्यास्वामी गोंदर** बनाम **मुन्नूस्वामी गोंदर** ;	13
[1951]	ए. आई. आर. (38) 1951 इलाहाबाद 199 : **छेदीलाल** बनाम **छोटे लाल** ;	11
[1924]	ए. आई. आर. (11) 1924 प्रिवी कौंसिल 144 : **मिदनापुर जमींदारी कंसोलिडेशन आफिसर लि.** बनाम **नरेश नारायण राय** ;	11
[1890]	1890 आई. एल. आर. 12 इलाहाबाद 436 : **शादी** बनाम **अनूप सिंह** ;	10,11
[1887]	(1887) के. डब्ल्यू. एन. 253 : **परस राम** बनाम **शेरजीत** ;	11,12
	18 कलकत्ता 10 प्रिवी कौंसिल : **राबर्ट वाटसन कंसोलिडेशन आफिसर** बनाम **राम चंद दत्त** ;	11

13 डब्ल्यू. आर. 337 :
लाला विशम्बर लाल बनाम **राजाराम ;** 11

सेलेक्ट मामला सं. 270 :
त्रिलोक बनाम **रामाधीन** । 11

सिविल (अपीली) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 379.

2010 के मूल वाद सं. 2343 में सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 6-ग पर सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), गाजियाबाद द्वारा तारीख 24 दिसंबर, 2010 और तारीख 6 जनवरी, 2011 को पारित निर्णय और आदेशों के विरुद्ध प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एस. ओ. पी. अग्रवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अनूप त्रिवेदी और शशि नंदन

अपील में निर्णय न्यायमूर्ति सुनील अम्बवानी और न्यायमूर्ति (श्रीमती) जयश्री तिवारी ने दिया ।

निर्णय

हमने वादी-अपीलार्थी की ओर से श्री एस. ओ. पी. अग्रवाल और प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों की ओर से श्री शशि नंदन जिनकी सहायता श्री अनूप त्रिवेदी ने की, को सुना ।

2. यह प्रथम अपील सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), गाजियाबाद द्वारा 2010 के मूल वाद सं. 2343, श्योराज बनाम मैसर्स एकार्ड इन्फ्रा-स्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड वाले मामले में तारीख 24 दिसंबर, 2010 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा सिविल न्यायाधीश ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् अंतरिम व्यादेश के लिए आवेदन खारिज कर दिया है ।

3. वादी-अपीलार्थी ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों को ग्राम महरौली, परगना डासना, तहसील व जिला गाजियाबाद स्थित भूमि खसरा सं. 292 क्षेत्र 0.2780 हेक्टेयर और भूखंड सं. 274 क्षेत्र 0.2530 हेक्टेयर के उपयोग और संयुक्त कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने, प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों को सड़क और भवन निर्मित करने से रोकने तथा भूमि का अनन्य कब्जा लेने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश जारी करने के लिए 2010 का मूल वाद

सं. 2343 फाइल किया था ।

4. वादपत्र में यह अभिकथित किया गया है कि वादी अपने भाई भगवंत सिंह और सतवीर सिंह के साथ उक्त संपत्ति का संयुक्त स्वामी और काबिज है । उसके भाइयों ने अपना दो-तिहाई भाग प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 को विक्रीत कर दिया है । भाइयों के बीच कोई कुटुम्बीय विभाजन नहीं हुआ है और इसलिए संपत्ति वादी और प्रत्यर्थियों के सतत् संयुक्त कब्जे में है । प्रत्यर्थियों को संपूर्ण संपत्ति के किसी भाग का कब्जा लेने या निर्माण करने का कोई अधिकार नहीं है । प्रतिवादी-कंपनी ने अपना नाम समय-समय पर परिवर्तित किया है । यह एक सशक्त कंपनी है जिसके पास निर्माण करने के लिए पर्याप्त साधन हैं । तारीख 30 अक्तूबर, 2010 को प्रतिवादी कंपनी ने भूखंड सं. 292 के पूर्वी भाग पर निर्माण के लिए सामग्री लाकर डाली है और उनके श्रमिकों ने भूमि पर पक्की सड़क और भवन का निर्माण आरंभ कर दिया है । जब प्रतिवादी-कंपनी को निर्माण करने से रोका गया तो प्रतिवादियों ने वादी को धमकी दी । प्रतिवादी निर्माण करना चाहते हैं और सिंचाई के लिए नालियों के रास्ते को बंद करना चाहते हैं । वे भूमि के एक विनिर्दिष्ट भाग पर कब्जा करने और उस पर निर्माण करने की धमकी दे रहे हैं ।

5. प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों ने यह अभिकथित करते हुए आक्षेप फाइल किए कि वे प्रख्यात भवन निर्माता हैं और गाजियाबाद में और इसके आस-पास में आवासीय और वाणिज्यिक निर्माण करते हैं । उन्होंने भगवंत सिंह से तारीख 29 जुलाई, 2004 और तारीख 4 जून, 2004 के विक्रय-विलेखों द्वारा खाता सं. 335 खसरा सं. 292 में 0.2530 हेक्टेयर क्षेत्र के एक-तिहाई भाग को क्रय किया था और उन्होंने क्रय की गई भूमि का कब्जा भी ले लिया था । उनके नाम राजस्व अभिलेखों में नामांतरित कर दिए गए हैं और वे भूमि पर काबिज हैं । कंपनी ने गाजियाबाद विकास प्राधिकरण, गाजियाबाद से भवन का नक्शा स्वीकृत करा लिया है और यह नक्शा गाजियाबाद विकास प्राधिकरण ने राजस्व अभिलेखों के सत्यापन और स्थल पर प्रतिवादियों के कब्जे के सत्यापन के पश्चात् स्वीकृत किया है । नक्शे तारीख 1 अप्रैल, 2010 को स्वीकृत किए गए थे और इसके पश्चात् प्रतिवादियों ने विधि के अनुसार स्वयं द्वारा क्रय की गई भूमि के भाग पर निर्माण आरंभ किया है । यदि वादी यह अभिकथन करता है कि कोई विभाजन नहीं हुआ है तो उसके द्वारा फाइल किया गया वाद केवल व्यादेश के लिए है और उसने विभाजन का दावा नहीं किया है तो वाद विनिर्दिष्ट

अनुतोष अधिनियम की धारा 34, 38 और 41 के उपबंधों द्वारा विवर्जित है । यदि प्रतिवादियों को निर्माण करने से रोकने के लिए कोई व्यादेश जारी किया जाता है तो उन्हें अपूर्णीय नुकसान और क्षति होगी ।

6. विचारण न्यायालय ने अंतरिम व्यादेश के लिए आवेदन विनिश्चित करते हुए यह मत व्यक्त किया कि इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि भूमि तीनों भाइयों की संयुक्त संपत्ति थी और उनमें से दो भाइयों ने अपनी भूमि प्रतिवादियों को विक्रीत कर दी है । वादी ने विक्रय-विलेखों की तारीखें नहीं बताई हैं । आक्षेपों में यह कहा गया है कि विक्रय-विलेख वर्ष 2004 में निष्पादित किए गए थे । प्रतिवादी एक भवन निर्माता है और उसने निर्माण कराने के लिए भूमि क्रय की है । यह उपदर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं है कि वादी वर्ष 2004 से प्रतिवादियों के साथ संयुक्त रूप से काबिज है और उसने भूमि के ऊपर कोई बुआई और खेती की है । विचारण न्यायालय ने प्रथमदृष्ट्या यह पाया कि स्थल पर भाइयों ने भूमि का विभाजन कर लिया था । प्रतिवादियों ने भी विभाजन के लिए वाद फाइल किया था जो राजस्व न्यायालयों में लंबित है । खतौनी (हक-अभिलेख) से यह उपदर्शित होता है कि भूमि पर कोई खेती करना नहीं दर्शाई गई है और इसलिए वादी को कोई अपूर्णीय क्षति नहीं होगी । विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि वादी ने विभाजन के अनुतोष के लिए अनुरोध नहीं किया है और केवल स्थायी व्यादेश के लिए वाद फाइल किया है । भूमि को अकृषीय भूमि के रूप में घोषित किया गया है और गाजियाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा निर्माण के लिए नक्शा स्वीकृत किया गया है । इन परिस्थितियों में सुविधा का संतुलन प्रतिवादियों के हक में जाता है और यदि व्यादेश मंजूर किया जाता है तो निर्माण की स्कीम को नुकसान पहुंचेगा ।

7. याची के विद्वान् काउंसेल श्री एस. ओ. पी. अग्रवाल ने यह दलील दी है कि वादी के लिए विभाजन के लिए अनुतोष का दावा करना आवश्यक नहीं था । प्रतिवादियों द्वारा विभाजन के लिए फाइल किया गया वाद इस आधार पर खारिज किया गया था कि भूमि को अकृषीय भूमि घोषित करने के पश्चात् राजस्व न्यायालयों को वाद को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं है । उन्होंने यह दलील दी कि भूमि का अभी अब तक विभाजन नहीं किया गया है । यह भूमि वादी और प्रतिवादियों के संयुक्त कब्जे में है । प्रतिवादी स्वयं अपने फायदों के लिए भूमि पर अनधिकार कब्जा करने और निर्माण कार्य करने के लिए हकदार नहीं हैं । उन्होंने यह दलील दी कि जब तक कि आपस में विभाजन नहीं हो जाता है तब तक

किसी सह स्वामी को अपने फायदे के लिए भूमि का उपयोग करने का अधिकार नहीं है । निर्माण कार्य करने से अपूर्णीय नुकसान होगा क्योंकि पर व्यक्ति का अधिकार सृजित भी हो सकता है । उन्होंने अपने दलील के समर्थन में **नरेन्द्र कांते** बनाम **अनुराधा कांते और अन्य**[1] वाले मामले में अधिकथित अस्थायी व्यादेश मंजूर करने के संबंधित विधिक सिद्धांतों का अवलंब लिया है ।

8. वर्तमान मामले में वादी के भाइयों द्वारा विक्रय-विलेख वर्ष 2004 में निष्पादित किए गए थे । इसके पश्चात् भूमि अकृषीय भूमि के रूप में घोषित की गई थी और तत्पश्चात् गाजियाबाद विकास प्राधिकरण द्वारा भवन का नक्शा अनुमोदित किया गया था । यह उपदर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई अभिवाक् नहीं किया गया है या सामग्री उपलब्ध नहीं है कि वादी भौतिक रूप से भूमि पर काबिज था या उसने कोई फसल बोई थी । वादी ने ऐसे किसी तथ्य का अभिवाक् नहीं किया है या अपने स्वामित्व संबंधी अधिकारों के उपयोग को साबित करने के लिए दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किए हैं । वादी द्वारा भूमि पर कोई कृषि क्रिया करने का कोई अभिवाक् नहीं किया गया है या कोई सबूत नहीं दिया गया है ।

9. हमें विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में प्रथमदृष्ट्या कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है । वादी इस बात से अवगत था कि उसके भाइयों ने प्रतिवादियों के हक में दो तिहाई भाग का विक्रय कर दिया था । उसने भूमि का विभाजन कराना पसंद नहीं किया अथवा किसी मालिकाना अधिकार का प्रयोग नहीं किया । वह छह वर्ष तक प्रतीक्षा करता रहा जब तक कि प्रतिवादियों ने भवन का नक्शा स्वीकृत नहीं करा लिया और निर्माण आरंभ नहीं कर दिया ।

10. लगभग सौ वर्ष से भी अधिक पूर्व **शादी** बनाम **अनूप सिंह**[2] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया था कि न्यायालय अन्य सहभागियों में से किसी एक को भूमि का उपयोग रोकने के लिए चिर स्थायी व्यादेश वहां मंजूर करेगा जहां उसके प्रत्येक सहभागी का हित है और भवन बनाने से रोकेगा ; और यदि वह इसमें निर्माण करता है तो न्यायालय यह निदेश देते हुए आज्ञापक व्यादेश मंजूर करेगा कि भवन को गिराने की कार्यवाही की जाए । पश्चात्वर्ती विनिश्चय में मोटे तौर पर ऐसी कोई प्रतिपादना स्वीकार

---

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 77.

[2] 1890 आई. एल. आर. 12 इलाहाबाद 436.

नहीं की गई है ।

11. **छेदीलाल** बनाम **छोटे लाल**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति गुलाम हसन ने खंड न्यायपीठ की ओर से निर्णय देते हुए **रॉबर्ट वाटसन कंसोलिडेशन ऑफिसर** बनाम **राम चंद दत्त**[2] वाले मामले में सर बैरूज पिकॉक द्वारा अभिव्यक्त मत ; **मिदनापुर जमींदारी कंसोलिडेशन ऑफिसर लिमिटेड** बनाम **नरेश नारायण रॉय**[3] ; **त्रिलोक** बनाम **रामाधीन**[4] वाले मामले में कार्यकारी मुख्य न्यायमूर्ति श्री स्पांकी द्वारा विभक्त मत ; **लाला विशम्बर लाल** बनाम **राजाराम**[5], **परस राम** बनाम **शेरजीत**[6] वाले मामले में न्यायमूर्ति महमूद द्वारा दिए गए विनिश्चय और **शादी** बनाम **अनूप सिंह**[7] वाले मामले में पांच न्यायाधीशों की पूर्ण न्यायपीठ की ओर से न्यायमूर्ति महमूद द्वारा दिए गए विनिश्चय को उद्धृत करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "(25). उपर्युक्त विवेचना के परिणामस्वरूप हमें यह प्रतीत होता है कि संयुक्त भूमि के संबंध में सह-भागीदारों के अधिकार का प्रश्न इस प्रश्न से पृथक् और भिन्न रखा जाना चाहिए कि उस सह-भागीदार को क्या अनुतोष मंजूर किया जाना चाहिए जिसके संयुक्त भूमि के अधिकार का अन्य भागीदारों द्वारा या तो अनन्य रूप से भूमि पर कृषि करके या उस पर निर्माण करके अपवंचन कर लिया गया है । कतिपय विनिश्चयों में विवाद प्रत्यक्षतया दो भिन्न मामलों में भ्रम से उत्पन्न हुआ है । अतः जहां कोई सह-भागीदार अन्य सह-भागीदारों के भय के कारण स्वयं के लिए दूसरे सह-भागीदार के अनन्य कब्जे पर आपत्ति करने के लिए हकदार है वहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वादी को उसके अधिकारों के अपवंचन की दशा में क्या अनुतोष मंजूर किया जाना चाहिए और यह बात प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगी । न्यायालय द्वारा गिराने के लिए अनुतोष का अधिकार या व्यादेश मंजूर करने या न करने का विनिश्चय इस आधार पर लिया जाएगा कि परिस्थितियां मामले में

---

[1] ए. आई. आर. (38) 1951 इलाहाबाद 199.

[2] 18 कलकत्ता 10 प्रिवी कौंसिल.

[3] ए. आई. आर. (11) 1924 प्रिवी कौंसिल 144.

[4] सेलेक्ट मामला सं. 270.

[5] 13 डब्ल्यू. आर. 337.

[6] (1887) के. डब्ल्यू. एन. 253.

[7] 1890 आई. एल. आर. 12 इलाहाबाद 436.

क्या न्यायोचित ठहराती हैं । न्यायालय दोनों अनुतोषों को मंजूर करने के लिए महसूस कर सकता है यदि साक्ष्य से यह साबित होता हो कि वादी को विभाजन के समय पर्याप्त रूप से प्रतिकारित नहीं किया जा सकता और अनुतोष मंजूर करने के बजाय इनकार करने से उसे गंभीर हानि होगी । इसके प्रतिकूल यदि प्रतिवादी के लिए अनुतोष मंजूर करने से तात्विक और सारवान क्षति कारित होती है तो न्यायालय निःसंदेह ऐसे अनुतोष को मंजूर न करने में समुचित विवेक का प्रयोग करेगा । जैसाकि कतिपय मामलों में उपदर्शित किया गया है कि प्रत्येक मामला स्वयं अपने विशिष्ट तथ्यों के आधार पर विनिश्चित किया जाएगा और यह न्यायालय पर छोड़ा जाएगा कि वह उपदर्शित परिस्थितियों को साबित करने पर अपने इस विवेक का प्रयोग करे कि सुविधा का संतुलन किस पक्ष की ओर जाता है । न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करने में न्याय, साम्य और बेहतर अंतःकरण की विचारणाओं द्वारा मार्गदर्शित होगा और वह इनकी अनदेखी नहीं कर सकता और न्यायालय के लिए यह संभव नहीं है कि वह उन परिस्थितियों के बारे में कोई अलचीला नियम अधिकथित करे जिन में गिराने के लिए या व्यादेश के लिए अनुतोष मंजूर किया जाए या इनकार किया जाए ।"

12. यहां **परस राम** बनाम **शेरजीत**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति महमूद द्वारा अभिव्यक्त मत को उद्धृत करना सुसंगत होगा :–

"(14) इस बिंदु पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अनेक मामले हैं । परस राम **बनाम** शेरजीत (1887 के. डब्ल्यू. एन. 253) वाले मामले में न्यायमूर्ति महमूद द्वारा एक ऐसे मामले में विनिश्चय दिया गया है जहां सह-स्वामी द्वारा विरोध के बावजूद संयुक्त स्वामी द्वारा एक भवन का निर्माण करने पर उसे गिराने का अनुरोध किया गया था । विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि विधि के मूल प्रश्न के रूप में जो साम्य के नियमों से भिन्न है, वादी डिक्री के लिए हकदार हो सकते हैं किंतु भारत के न्यायालय विधि की संयुक्त अधिकारिता और साम्य का प्रयोग करते हैं और वे उपचार प्रवृत्त करने में साम्यपूर्ण सिद्धांतों की उपेक्षा नहीं कर सकते । उन्होंने उन मामलों को जिनमें अतिचारी द्वारा दूसरे की भूमि पर भवन खड़ा कर लिया गया है, उन मामलों से भिन्न बताया जिनमें संयुक्त स्वामी द्वारा

---

[1] 1887 के. डब्ल्यू. एन. 253.

संयुक्त भूमि पर संयुक्त स्वामियों की अनुज्ञा के बिना और उनके विरोध के वाबजूद भवन बना लिया गया है । तत्पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने लाला विशम्बर लाल **बनाम** राजा राम (13 डब्ल्यू. आर. 337) वाले मामले में सर बर्नेज पिकॉक के सुज्ञात निर्णयों को उद्धृत करते हुए यह मत व्यक्त किया कि जहां भूमि का संयुक्त स्वामी अपने सह-स्वामियों की अनुज्ञा लिए बिना ऐसी भूमि पर निर्माण करता है वहां ऐसे भवन ऐसे सह-स्वामियों के अनुरोध पर तब तक नहीं गिराए जाने चाहिएं जब तक कि वे यह साबित न करें कि संयुक्त भूमि पर उनके संयुक्त स्वामी निर्माण करने की कार्रवाई से उन्हें तात्विक और सारभूत क्षति कारित हुई है जिसे संयुक्त भूमि के विभाजन द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता । इस मामले पर शादी **बनाम** अनूप सिंह (1890 ए. डब्ल्यू. एन. 95 एफ. बी. = 12 इलाहाबाद 436) वाले मामले में न्यायमूर्ति महमूद सहित पांच न्यायाधीश की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया था । इस मामले में संयुक्त भूमि पर प्रतिवादी के निर्माण आरंभ करने के तीन या चार दिन के भीतर वाद फाइल करके व्यादेश के लिए अनुरोध किया गया था । प्रतिवादी ने भूमि पर अनन्य अधिकार होने का प्रकथन किया था । वादी ने अंतरिम व्यादेश प्राप्त कर लिया था किंतु अपील करने पर जिला न्यायाधीश ने परस राम वाली नज़ीर को दृष्टिगत करते हुए इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या वादी को प्रतिवादी से विभाजन करके प्रतिकारित किया जा सकता है । उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि प्रतिवादी ने भूमि पर जो निर्माण किया है वह उसके उस भाग से अधिक पर है जो उसे विभाजन में मिलेगा और इसलिए वादी को पर्याप्ततः प्रतिकारित नहीं किया जा सकता । मुख्य न्यायमूर्ति सर जॉन एज ने यह अभिनिर्धारित किया कि जिला न्यायाधीश इस प्रश्न पर विचार करने में कि क्या अधिक भूमि पर अतिक्रमण किया गया है और उस बारे में तथ्य का यह निष्कर्ष देने में कि क्या व्यादेश मंजूर किया जाना चाहिए, गलत था । परस राम वाले निर्णय के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रश्न की जांच करना न्यायोचित नहीं है कि क्या सह-भागीदार के हिस्से से अधिक भूमि विनियुक्त कर ली गई थी । विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने यह मत व्यक्त किया कि प्रतिवादी ने न्यायालय में विभाजन के लिए समावेदन करने के बजाय स्वयं ही उन भूमियों को अपना बना लिया जिनमें उसके प्रत्येक सह-भागीदार का हित था और इस प्रकार उसने सामान्य भूमि के एक

भाग का पूर्ण रूप से उपयोग और उपभोग करने से विवर्जित कर दिया । आगे उन्होंने इस प्रकार मत व्यक्त किया –

> 'हमें इस मामले में इस बात पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि उस स्थिति में सिविल न्यायालय को क्या करना चाहिए जहां प्रतिवादी ने अत्यधिक खर्चा करके निर्माण कर लिया है जिसके बारे में किसी साम्यपूर्ण न्यायालय को उसे गिराने का आदेश करने से विरत रहना चाहिए ।'

यह मत स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 55 के अधीन न्यायालय की शक्ति को साम्या न्यायालय के रूप में इस धारा के उपबंधों के अनुसार व्यादेश मंजूर करने या उससे इनकार करने के लिए अपने विवेक विनियमित करने के लिए न्यायालय की शक्ति को व्यावृत्त करता है ।"

13. उच्चतम न्यायालय ने **अय्यास्वामी गोंदर** बनाम **मुन्नूस्वामी गोंदर**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि जहां भूमि का कोई स्वामी दूसरे सह-स्वामी को भूमि के प्रयोग से रोकता है वहां यदि ऐसे प्रयोग से उसे कोई क्षति कारित नहीं होती है या रुकावट नहीं होती है तो अवरोध उत्पन्न करने वाले स्वामी के विरुद्ध व्यादेश मंजूर किया जा सकता है । किसी सह-स्वामी द्वारा भूमि के उपयोग पर विधि द्वारा एकमात्र निर्बंधन यह है कि ऐसी भूमि का इस प्रकार उपयोग नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि दूसरे सह-स्वामी के साथ अन्याय हो या उसे कोई बाधा हो । निर्णय के पैरा 10 और 11 में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया था :–

> "10. हमें इस दलील में पर्याप्त बल प्रतीत होता है । प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों के साथ कोई अन्याय या बाधा के किसी विनिर्दिष्ट अभिवाक् के अभाव में वादियों को सामान्य भूमि और सामान्य जलमार्ग का उपयोग करने के लिए हर प्रकार का अधिकार प्राप्त है । वादी-अपीलार्थियों ने स्वीकृत सह-स्वामियों के अधिकारों के आधार पर अपने अधिकारों का दावा किया है जिसमें भूमि का अनिर्बंधित उपयोग और विन्यास के बिंदु पर असीमित अधिकार सम्मिलित हैं और इसलिए उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही नहीं था कि वादियों का जल लेने का अधिकार प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों की किसी

---

[1] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1789.

मंजूरी द्वारा या किसी अन्य विक्रय-विलेख से अर्जित नहीं हुआ था । सह-स्वामित्व के अधिकार में अनेक अधिकार सम्मिलित हैं जिसके बारे में उच्च न्यायालय ने विचार करने में उपेक्षा की है ।

11. किसी सह-स्वामी द्वारा भूमि के सामान्य उपयोग के संबंध में विधि द्वारा केवल यह निर्बंधन है कि इसका उपयोग इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि ऐसा उपयोग अन्य सह-स्वामी के साथ अन्याय कारित करे या उसके अधिकार में बाधा डाले ।"

14. उच्चतम न्यायालय ने **मंदाली रंगन्ना और अन्य** बनाम **टी. रामचन्द्र और अन्य**[1] वाले मामले में निर्णय के पैरा 21 और 22 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"21. व्यादेश की मंजूरी के लिए किसी आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को न केवल मामले से संबंधित आधारभूत तथ्यों अर्थात् प्रथमदृष्ट्या मामले की विद्यमानता, सुविधा के संतुलन और अपूर्णीय क्षति पर विचार करना चाहिए अपितु उसे पक्षकारों के आचरण पर भी विचार करना चाहिए ।

22. व्यादेश की मंजूरी एक साम्यापूर्ण अनुतोष है । कोई व्यक्ति जो लंबे समय तक मूक बना रहा है और जिसने संपत्ति को अनन्य रूप से दूसरे को बरतने के लिए अनुज्ञात किया है, सामान्यतया किसी व्यादेश के लिए हकदार नहीं होगा । न्यायालय केवल इस कारण से हस्तक्षेप नहीं करेगा कि संपत्ति अत्यंत मूल्यवान है । तथापि, हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि व्यादेश की मंजूरी या इनकार से गंभीर परिणाम होंगे और यह बात उसकी प्रकृति पर निर्भर करेगी । न्यायालयों को ऐसे मामलों पर विचार करते समय पक्षकारों के हित को संरक्षित करने के लिए सभी तरह के प्रयास करने चाहिए । उपर्युक्त प्रयोजन के लिए न्यायालयों द्वारा विवेक का प्रयोग अनिवार्य है । पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों का निष्पक्ष रूप से अवधारण किया जाना चाहिए ।"

15. **मंदाली रंगन्ना** (पूर्वोक्त) वाले मामले का **किशोर सिंह रतन सिंह जडेजा** बनाम **मारुति कारपोरेशन और अन्य**[2] और **नरेन्द्र कांते** बनाम

---

[1] (2008) 11 एस. सी. सी. 1.

[2] (2009) 11 एस. सी. सी. 229.

अनुराधा कांते और अन्य[1] वाले मामलों में अनुसरण किया गया था । उक्त सभी मामलों में अंतरिम व्यादेश से इनकार किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने **किशोर सिंह रतन सिंह जडेजा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में पर-व्यक्तियों के अधिकार प्रभावित होने के कारण व्यादेश की मंजूरी नहीं दी । ऐसे 280 अंतरिती थे जिनको भूमि का कुछ भाग पहले ही विक्रीत किया जा चुका था । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि संपत्ति के स्वामियों को संपत्ति का विकास करने से रोका जाता है तो उन्हें उक्त अवधि के दौरान उनकी भूमि के उपयोग से मिलने वाले फायदों से वंचित करना होगा । ऐसे किसी व्यादेश की मंजूरी के विरुद्ध सुविधा या असुविधा का असंतुलन देखना होगा । **नरेन्द्र कांते**[1] वाले मामले में उच्च न्यायालय ने एक प्रकीर्ण अपील में यह मत व्यक्त किया कि यदि व्यादेश मंजूर किया जाता है तो इससे प्रतिवादियों को अपूर्णीय नुकसान और क्षति होगी । यह मत व्यक्त किया गया था कि प्रतिवादी सं. 10 (प्रत्यर्थी-प्रतिवादी सं. 1 और 2 के अंतरिती) ने उक्त संपत्ति में अधिकार अर्जित कर लिया था । इसलिए उसे विवादित भूमि के ऊपर निर्माण संबंधी क्रियाकलाप करने के लिए अनुज्ञात किया गया था किंतु उसे प्रश्नगत संपत्ति को स्थानांतरित करने या अंतरित करने या सिविल वाद के लंबन के दौरान तीसरे पक्षकार के हक में अधिकार सृजित करने से रोका गया था । विचारण न्यायालय को मामला वाद शीघ्रतापूर्वक विनिश्चित करने और उसका छह मास के भीतर निपटान करने के लिए निदेश दिया गया था । उच्चतम न्यायालय ने यह निदेश करने के सिवाय आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया कि वाद संपत्ति के सह भागीदार तीसरे पक्षकार के हक में अधिकार या भार सृजित नहीं करेंगे या किसी भी रीति में संबंधित वाद संपत्ति का अंतरण नहीं करेंगे और इस संबंध में किए गए सभी संव्यवहार वाद के अंतिम विनिश्चय के अध्यधीन होंगे ।

16. प्रत्येक सह-भागीदार को संपत्ति में अधिकार है और उसे विधि के अनुसार इस शर्त के अध्यधीन संपत्ति को विकसित करने का अधिकार है कि संपत्ति का ऐसा प्रयोग विभाजन को असंभव नहीं बनाएगा । वादी विभाजन और व्यादेश के लिए वाद फाइल कर सकता है अथवा न्यायालय की जानकारी में ऐसे तथ्य और परिस्थितियां ला सकता है कि प्रतिवादियों द्वारा किए गए क्रियाकलापों से विभाजन असंभव बन जाएगा । किसी भी दशा में वाद फाइल करने में विलंब वादी को व्यादेश के अनुतोष का अनुरोध करने के लिए हकदार नहीं बनाएगा ।

---

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 77.

17. वर्तमान मामले में वादी ने यह कभी भी अभिवाक् नहीं किया है या यह उपदर्शित नहीं किया है कि उसने भूमि पर कृषि करके या अन्यथा कोई कार्य करके किसी स्वामित्वपूर्ण अधिकार का प्रयोग किया है । उसने वर्ष 2004 में विक्रय-विलेखों के निष्पादन के बावजूद आपस में अंशों का विभाजन करने का कोई प्रयास नहीं किया । वादी संपत्ति के प्रयोग के लिए प्रतिवादियों द्वारा वाद फाइल करने की प्रतीक्षा करता रहा । इस बीच में उसने भूमि को अकृषि भूमि घोषित करने के लिए अनुज्ञात किया और राजस्व न्यायालय की अधिकारिता के आधार पर विभाजन के लिए वाद खारिज होने दिया । उसने उन मापों और निरीक्षणों पर भी आपत्ति नहीं की जिनके आधार पर भवन के नक्शे स्वीकृत किए गए थे । उसने यह उपदर्शित करने के लिए भवन के नक्शों की प्रतियां प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया कि क्या विकसित करने के लिए संपूर्ण भूमि या उसका कोई भाग प्रस्तावित है । उसके द्वारा संपत्ति का विभाजन कराने के लिए विलंब और वाद में विभाजन के अनुतोष का दावा न करना वस्तुतः व्यादेश के अनुतोष को खारिज करने के लिए एक आधार के रूप में ठीक ही स्वीकार किया गया है ।

18. वादपत्र में किए गए अभिवचनों से यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि भवन निर्माण सामग्री भूखंड अर्थात् खसरा सं. 292 के एक भाग (पूर्वी) पर ही डाली गई है और कुछ श्रमिकों द्वारा सड़क डालना आरंभ किया गया है । प्रतिवादियों के क्रियाकलाप संपूर्ण भूमि को हड़पने के बराबर नहीं हैं जिससे कि वादियों के भाग पर उनके अधिकार विफल हो सकें ।

19. वादी ने वादपत्र में या व्यादेश के लिए आवेदन में प्रतिवादियों को भूमि पर पर-व्यक्ति अधिकार सृजित करने से रोकने के लिए किसी अनुतोष का दावा नहीं किया है और न ही वादी-अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा ऐसी कोई दलील दी गई है ।

20. उपर्युक्त कारणों से हमें यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने व्यादेश का आवेदन खारिज करने में तथ्यों और विधि की कोई त्रुटि नहीं की है ।

21. आदेश के विरुद्ध प्रथम अपील खारिज की जाती है और यह निदेश दिया जाता है कि वाद का विनिश्चय शीघ्रतापूर्वक किया जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

महावीर

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रभागीय वन अधिकारी, मिर्जापुर और अन्य

तारीख 7 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति सिबग़त उल्ला खां

वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 – धारा 4, 6 और 9 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 90] – वन विभाग द्वारा अधिनियम की धारा 4 के अधीन वन क्षेत्र घोषित करने के लिए अधिसूचना जारी करना – याचियों द्वारा अभिकथित रूप से जमींदार द्वारा जारी रसीद के आधार पर अपनी भूमि बताते हुए आक्षेप करना – याचियों द्वारा अभिकथित रसीद के आधार पर न तो भूमि पर नामांतरण करना और न ही रसीदों को किसी साक्ष्य द्वारा साबित करना – केवल उपधारणा के आधार पर याचियों को कोई फायदा नहीं दिया जा सकता ।

यह रिट याचिका पांच याचियों द्वारा फाइल की गई थी । याची सं. 1 की मृत्यु हो चुकी है और उसके विधिक प्रतिनिधि को उसके स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया है । प्रत्येक याची ने यह दावा किया है कि वह जमींदारी उन्मूलन के समय से ही विभिन्न प्लाटों का भू-धृतिधारक है (कुछ याचियों ने दावा किया है कि उनसे पहले उनके पिता भू-धृतिधारक थे)। रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – चूंकि आरंभ से ही यह विवादित है कि क्या रसीद जारी की गई थी या नहीं, इसे केवल उपधारणा के आधार पर ही विनिश्चित नहीं किया जा सकता । किसी भी स्थिति में उपधारणा खंडनीय है । याचियों ने इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् उन्होंने अपने नामों का राजस्व अभिलेखों में नामांतरण क्यों नहीं कराया । मौखिक कथनों में और आक्षेपों में पट्टे फाइल नहीं किए गए हैं । वन बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष याचियों ने साक्ष्य समाप्त होने तक रसीदें फाइल नहीं की थीं । ऐसा कोई साक्ष्य नहीं दिया गया था कि रसीद का निष्पादक रसीद निष्पादित करने के लिए प्राधिकृत था । न तो लिखित आक्षेप में और न ही मौखिक कथन में जमींदार के नाम का उल्लेख किया

गया है । इस बारे में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि वर्ष 1947 में, जब रसीदें जारी की गई थीं, संबंधित व्यक्तियों के नाम राजस्व अभिलेखों में क्यों अभिलिखित नहीं किए गए थे । निचले न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि रसीदें कूटरचित हैं और वे 100 बीघा से भी अधिक की संपत्ति को हड़पने के लिए तैयार की गई थीं । साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 तब लागू नहीं होती जब यह अभिकथन किया गया हो कि दस्तावेज़ कूटरचित हैं । किसी व्यक्ति को लगभग 20 या 30 वर्ष पुरानी तारीख दस्तावेज़ कूटरचित करने और तत्पश्चात् उसे अधिनियम की धारा 90 के अधीन उसका अवलंब लेने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । यह धारा दोहरा कपट करने के लिए अनुज्ञात नहीं करती, अर्थात् दस्तावेज़ तैयार करने और फिर उसे पूर्व दिनांकित करने के लिए अनुज्ञात नहीं करती । यदि वन बंदोबस्त अधिकारी के मत की पुष्टि की जाती है तब उत्तर प्रदेश में कोई भी व्यक्ति किसी भी समय किसी जमींदारी कृषि भूमि पर दावा करने के लिए जमींदारी की रसीद कूटरचित कर लेगा और उसे 1950 ई. से पहले की पूर्व दिनांकित करके या जमींदार से जमींदारी उन्मूलन के 20, 30 या अधिक वर्ष की पूर्व दिनांकित रसीद प्राप्त करके दावा करेगा । तद्नुसार विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है । (पैरा 7, 8, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1980]	ए. आई. आर. 1980 इलाहाबाद 385 : **रामजस और अन्य** बनाम **सुरेन्द्र नाथ और एक अन्य** ।	6

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 1991 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 13416.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री एच. एस. श्रीवास्तव, आनंद कुमार और कीर्ति कुमार सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति सिबग़त उल्ला खां – याचियों के काउंसेल और प्रत्यर्थियों

के स्थायी काउंसेल को सुना । यह रिट याचिका पांच याचियों द्वारा फाइल की गई थी । याची सं. 1 की मृत्यु हो चुकी है और उसके विधिक प्रतिनिधि को उसके स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया है । प्रत्येक याची ने यह दावा किया है कि वह जमींदारी उन्मूलन के समय से ही विभिन्न प्लाटों का भू-धृतिधारक है (कुछ याचियों ने दावा किया है कि उनसे पहले उनके पिता भू-धृतिधारक थे)। प्रश्नगत प्लाटों को वर्ष 1968 में वन अधिनियम की धारा 4 के अधीन जारी की गई अधिसूचना में सम्मिलित करते हुए कुछ क्षेत्र को आरक्षित वन घोषित करने की प्रस्थापना की गई थी । याचियों ने तारीख 15 मार्च, 1985 को वन अधिनियम की धारा 6/9 के अधीन यह दावा करते हुए आक्षेप फाइल किए थे कि उन्हें वन अधिनियम की धारा 4 के अधीन 1968 में राजपत्र में जारी की गई अधिसूचना की जानकारी नहीं थी । प्रत्येक याची ने यह दावा किया है कि वह (या उसके पिता) जमींदारी उन्मूलन के पूर्व से ही जमींदार की सहमति से कब्ज़ा धारित किए हुए थे । तथापि, उनमें से किसी के भी नाम की राजस्व अभिलेख में प्रविष्टि नहीं की गई थी । वन बंदोबस्त अधिकारी ने तारीख 24 मार्च, 1989 को, याचियों द्वारा फाइल की गई रसीद को जो जमींदार द्वारा जारी की गई बताई गई थी, स्वीकार करते हुए उनके आक्षेपों को स्वीकार कर लिया था । उपरोक्त प्रयोजन के लिए वन बंदोबस्त अधिकारी ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 का अवलंब लिया है ।

2. वन बंदोबस्त अधिकारी द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध जिला न्यायाधीश, मिर्जापुर के समक्ष अपीलें फाइल की गई थीं । अभिकथित रसीदों की प्रतियां रिट याचिका के उपाबंध सं. 9 से 13 के रूप में फाइल भी की गई हैं । ये रसीदें 1357, 1358 और 1359 फसली वर्षों अर्थात् तारीख 1 जुलाई, 1949 से 30 जून, 1952 तक की हैं । याची सं. 1 के विरुद्ध अपील जो कि उत्तर प्रदेश राज्य (वन विभाग) बनाम महावीर के शीर्षक से थी, को 1989 की अपील सं. 72 के रूप में संख्यांकित किया गया था और उसे तारीख 6 फरवरी, 1991 को स्वीकार कर लिया गया था । वन बंदोबस्त अधिकारी द्वारा पारित आदेश अपास्त कर दिया गया था और महावीर के आक्षेप को खारिज कर दिया गया था । अन्य संख्यांकित अपीलें अर्थात् 1989 की अपील सं. 67 दुखी के विरुद्ध थी, 1989 की अपील सं. 65 राम किशोर के विरुद्ध थी, 1989 की अपील सं. 80 विश्वनाथ के विरुद्ध थी और 1989 की अपील सं. 77 मोहन के विरुद्ध फाइल की गई थी । सभी अपीलें एक जैसे आधारों पर और एक ही तारीख को अपर जिला न्यायाधीश चतुर्थ, मिर्जापुर द्वारा स्वीकार कर ली गई थीं ।

3. निचले अपील न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 के बारे में यह अभिनिर्धारित किया कि किसी भी आक्षेपकर्ता ने अपने साक्ष्य की तारीख तक वन बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष न तो रसीद फाइल की है और न ही जमींदार का नाम दर्शाया है अथवा न ही अभिकथित पट्टा फाइल किया गया है । आक्षेपकर्ताओं द्वारा अभिकथित रसीदें वन बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष साक्ष्य समाप्त होने के पश्चात् फाइल की गई थीं । लिखित आक्षेप या मौखिक कथन में रसीद के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है । अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि रसीदें कूटरचित हैं और उन्हें मामले के प्रयोजन के लिए तैयार किया गया था ।

4. साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 निम्नलिखित है :–

> "90. **तीस वर्ष पुरानी दस्तावेज के बारे में उपधारणा** – जहां कि कोई दस्तावेज़, जिसका तीस वर्ष पुरानी होना तात्पर्यित है या साबित किया गया है, ऐसे किसी अभिरक्षा में से, जिसे न्यायालय उस विशिष्ट मामले में उचित समझता है, पेश की गई है, वहां न्यायालय यह उपधारित कर सकेगा कि ऐसी दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर और उसका हर अन्य भाग, जिसका किसी विशिष्ट व्यक्ति के हस्तलेख में होना तात्पर्यित है, उस व्यक्ति के हस्तलेख में है, और निष्पादित या अनुप्रमाणित दस्तावेज़ होने की दशा में यह उपधारित कर सकेगा कि वह उन व्यक्तियों द्वारा सम्यक् रूप से निष्पादित और अनुप्रमाणित की गई थी जिनके द्वारा उसका निष्पादित और अनुप्रमाणित होना तात्पर्यित है ।"

5. 1954 के उत्तर प्रदेश संशोधन द्वारा "तीस वर्ष" शब्दों को बदल कर "बीस वर्ष" कर दिया गया है ।

6. इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा **रामजस और अन्य** बनाम **सुरेन्द्रनाथ और एक अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां किसी वाद में प्रतिरक्षा कोई दस्तावेज़ का आधार है या वादपत्र में अथवा लिखित कथन में उसका उल्लेख किया गया है, समुचित मामलों में वहां भी धारा 90 के अधीन उपधारणा की जा सकती है ।

7. चूंकि आरंभ से ही यह विवादित है कि क्या रसीद जारी की गई थी या नहीं, इसे केवल उपधारणा के आधार पर ही विनिश्चित नहीं किया जा सकता । किसी भी स्थिति में उपधारणा खंडनीय है । याचियों ने इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि जमींदारी उन्मूलन के पश्चात्

---

[1] ए. आई. आर. 1980 इलाहाबाद 385.

उन्होंने अपने नामों का राजस्व अभिलेखों में नामांतरण क्यों नहीं कराया । मौखिक कथनों में और आक्षेपों में पट्टे फाइल नहीं किए गए हैं वन बंदोबस्त अधिकारी के समक्ष याचियों ने साक्ष्य समाप्त होने तक रसीदें फाइल नहीं की थीं । ऐसा कोई साक्ष्य नहीं दिया गया था कि रसीद का निष्पादक रसीद निष्पादित करने के लिए प्राधिकृत था । न तो लिखित आक्षेप में और न ही मौखिक कथन में जमींदार के नाम का उल्लेख किया गया है । इस बारे में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि वर्ष 1947 में, जब रसीदें जारी की गई थीं, संबंधित व्यक्तियों के नाम राजस्व अभिलेखों में क्यों अभिलिखित नहीं किए गए थे ।

8. निचले न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि रसीदें कूटरचित हैं और वे 100 बीघा से भी अधिक की संपत्ति को हड़पने के लिए तैयार की गई थीं । साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 तब लागू नहीं होती जब यह अभिकथन किया गया हो कि दस्तावेज़ कूटरचित हैं ।

9. किसी व्यक्ति को लगभग 20 या 30 वर्ष पुरानी तारीख दस्तावेज़ कूटरचित करने और तत्पश्चात् उसे अधिनियम की धारा 90 के अधीन उसका अवलंब लेने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । यह धारा दोहरा कपट करने के लिए अनुज्ञात नहीं करती, अर्थात् दस्तावेज़ तैयार करने और फिर उसे पूर्व दिनांकित करने के लिए अनुज्ञात नहीं करती । यदि वन बंदोबस्त अधिकारी के मत की पुष्टि की जाती है तब उत्तर प्रदेश में कोई भी व्यक्ति किसी भी समय किसी जमींदारी कृषि भूमि पर दावा करने के लिए जमींदारी की रसीद कूटरचित कर लेगा और उसे 1950 ई. से पहले की पूर्व दिनांकित करके या जमींदार से जमींदारी उन्मूलन के 20, 30 या अधिक वर्ष की पूर्व दिनांकित रसीद प्राप्त करके दावा करेगा ।

10. तद्नुसार विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है ।

11. अतः रिट याचिका बीस वर्षों के लिए (जिस अवधि में यह रिट याचिका लंबित रही थी) भूमि के प्रयोग और कब्जाधारित करने के लिए 1000/- रुपए प्रति एकड़ की दर से नुकसानी सहित खारिज की जाती है । यह नुकसानी भू-राजस्व की बकाया के रूप में वसूल की जाएगी ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

भट./मह.

रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

श्रीमती नजमा खातून और अन्य

तारीख 29 फरवरी, 2012

न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 147, 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – दावा – बीमा कंपनी द्वारा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के उल्लंघन की दलील – बीमा कंपनी का दायित्व – जहां बीमाकृत द्वारा बीमा पालिसी के निबंधनों या शर्तों के उल्लंघन में यान चलाया जा रहा हो वहां ऐसी स्थिति में भी बीमा कंपनी का दायित्व समाप्त नहीं हो जाता – तथापि, बीमा कंपनी बीमाकृत से संदाय किए गए प्रतिकर की वसूली के लिए कार्रवाई कर सकती है ।

वर्तमान अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, मेरठ द्वारा तारीख 13 मई, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन फाइल की गई है जिसमें तारीख 4 मई, 2009 को दोपहर लगभग 12.30 बजे दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के पुत्र ने दुर्घटना में अली आलम की मृत्यु हो जाने के कारण दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 द्वारा 2009 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 1007 फाइल किया था । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह स्पष्ट है कि अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं । विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 4) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता

अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं । अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 4 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है । आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 4) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 या 4 उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 4) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे । अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटायी जाएगी । (पैरा 32, 36, 40, 41, 42 और 43)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य ;**	39
[2008]	2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.) : **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य ;**	24,31
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त ;**	24,29,31

[2007]	2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद) : **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य ;**	38
[2004]	(2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **छल्ला भरथम्म्मा ;**	16, 35
[2004]	[2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 : **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य ;**	24,27 29,30,31
[2004]	2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.) : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य;**	16,34
[1998]	ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588 : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य ।**	24,25

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 2711.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राहुल सहाय

दावेदारों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा ने दिया ।

न्या. महरोत्रा – वर्तमान अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, मेरठ द्वारा तारीख 13 मई, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन फाइल की गई है जिसमें तारीख 4 मई, 2009 को दोपहर लगभग 12.30 बजे दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 के पुत्र ने दुर्घटना में अली आलम की मृत्यु हो जाने के कारण दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 द्वारा 2009 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 1007 फाइल किया था ।

2. दावा याचिका में यह पक्षकथन किया गया था कि तारीख 4 मई, 2009 को उक्त अली आलम और उसका पिता मसूद आलम एक थ्री-व्हीलर जिसका रजिस्ट्रेशन सं. यू. पी.-15 एटी-1404 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रश्नगत यान" कहा गया है) पर अपने निवास स्थान उलधन, कस्बा खरखौदा, जिला-मेरठ जा रहे थे और उक्त थ्री-व्हीलर (अर्थात् प्रश्नगत यान) का चालक यात्रियों के निवेदन करने के बावजूद भी उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चला रहा था और जब थ्री-व्हीलर (अर्थात् प्रश्नगत यान) लगभग 12.30 दोपहर गन्ना क्रय केन्द्र के सामने पहुंचा तो विपरीत दिशा से आ रही मारूति कार से टक्कर हो गई और उसके पलटने के परिणामस्वरूप उक्त अली आलम और मसूद आलम तथा अन्य यात्रियों को भी गंभीर क्षतियां पहुंचीं और क्षतियां पहुंचने के कारण उक्त अली आलम और मसूद आलम की दुर्घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई; और उक्त अली आलम और मसूद आलम को मेडिकल कालेज ले जाया गया जहां उन्हें मृत घोषित कर दिया गया ।

3. प्रत्यर्थी सं. 4 प्रश्नगत यान (अर्थात् थ्री-व्हीलर) का स्वामी है जबकि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रश्नगत यान की बीमाकर्ता थी ।

4. पक्षकारों के बीच अभिवाकों के आदान-प्रदान के पश्चात्, अधिकरण ने उक्त दावा मामले में विवाद्यक विरचित किए ।

5. उक्त दावा मामले में पेश साक्ष्य किया गया ।

6. अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के पश्चात्, अधिकरण ने विभिन्न विवाद्यकों पर अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए ।

7. अधिकरण ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत दुर्घटना प्रश्नगत यान (अर्थात् थ्री-व्हीलर) के चालक द्वारा यान उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी जिसके कारण उक्त अली आलम को गंभीर क्षतियां पहुंचीं और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई ।

8. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि मारूति कार के चालक की ओर से कोई उपेक्षा सिद्ध नहीं हुई है ।

9. अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान के चालक के पास दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी । तथापि, अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि चालन अनुज्ञप्ति के

अनुसार, प्रश्नगत यान का चालक गैर-यातायात हल्के मोटर यान को चलाने के लिए अधिकृत था जबकि प्रश्नगत यान (अर्थात् थ्री-व्हीलर) ऑटो-रिक्शा अर्थात् यात्री यातायात टेम्पो के रूप में रजिस्ट्रीकृत था और इस प्रकार चालक प्रश्नगत यान को चलाने के लिए अधिकृत नहीं था ।

10. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से विधिवत् रूप से बीमाकृत था ।

11. अधिकरण ने यह भी निर्धारित किया कि यद्यपि प्रश्नगत यान बिना परमिट के नहीं चलाया जा रहा था किन्तु प्रश्नगत यान से दुर्घटना परमिट के अन्दर आने वाले क्षेत्र के बाहर हुई थी ।

12. उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण ने तारीख 13 मई, 2001 को आक्षेपित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय पारित किया और अन्य बातों के साथ-साथ याचिका के फाइल करने की तारीख से अंतिम संदाय की तारीख तक दावा 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर सहित 1,54,500/- रुपए की प्रतिकर की धनराशि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 के लिए अधिनिर्णीत की ।

13. तथापि, अधिकरण द्वारा अभिलिखित उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए कि प्रश्नगत यान का चालक यान को चलाने के लिए अधिकृत नहीं था क्योंकि उसकी चालन अनुज्ञप्ति केवल गैर-यातायात हल्के मोटर यान के लिए थी और इस उपर्युक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि यद्यपि प्रश्नगत यान परमिट के बिना नहीं चलाया जा रहा था और दुर्घटना परमिट के अन्दर आने वाले क्षेत्र के बाहर हुई थी, अधिकरण ने यह निदेश दिया कि आरंभतः प्रतिकर की धनराशि अपीलार्थी-बीमा कंपनी को संदत्त करनी होगी और इसके पश्चात्, अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 4) से उसे वसूल करने का अधिकार होगा ।

14. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राहुल सहाय को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

15. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राहुल सहाय ने यह दलील दी है कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पूर्वोक्त प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध चलाया जा रहा था, अधिकरण ने प्रतिकर की धनराशि का संदाय करने के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी को निदेश देने में और उसके पश्चात् प्रश्नगत

यान के स्वामी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 4 से उसे वसूल करने का आदेश करने में गलती की है ।

16. श्री राहुल सहाय ने यह दलील दी कि किसी भी दशा में अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 4 है) के विरुद्ध उचित रूप से सुरक्षित किया जाना चाहिए था ताकि आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर का संदाय करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी उपर्युक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके । श्री राहुल सहाय ने इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है :–

1. **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1]**;**

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **छल्ला भरथम्मा**[2]**;**

17. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राहुल सहाय द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया ।

18. जहां तक श्री राहुल सहाय द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अधिकरण ने प्रतिकर का संदाय करने के लिए और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए बीमा कंपनी को निदेश करने में गलती की है, इस संबंध में मोटर यान अधिनियम, 1988 के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा ।

19. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 की उपधारा (5) इस प्रकार है :–

> "147. **पालिसियों की अपेक्षाएं तथा दायित्व की सीमाएं** – (1) से (4) .....
>
> (5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई बीमाकर्ता जो इस धारा के अधीन बीमा पालिसी देता है, उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

[2] (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।"

20. इस प्रकार, उपर्युक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।

21. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 में जहां तक यह सुसंगत है, निम्नलिखित उपबंधित है :–

> "149. **पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध हुए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तुष्टि करने का बीमाकर्ताओं का कर्तव्य** – (1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात्, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) {या धारा 163-क के उपबंधों के अधीन है} ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगी, खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीत-ऋणी हो ।
>
> (2) से (7).....।"

22. उपर्युक्त उद्धृत उपबन्ध से यह दर्शित होता है कि यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर

लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीत-ऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो ।

23. उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश में जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी-अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है और उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है ।

24. उपरोक्त निष्कर्ष माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों द्वारा समर्थित है :–

1. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1]

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2]

3. **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3]

4. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[4]

25. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "7. अतः, हमारे समक्ष यही स्थिति है । बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-फख द्वारा सृजित वर्जन के बावजूद अपीलार्थी, प्राधिकृत बीमाकर्ता ने बस के लिए प्रीमियम प्राप्त किए बिना बीमा पालिसी जारी कर दी थी । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5)

---

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[4] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

और धारा 149(1) के उपबंधों के आधार पर अपीलार्थी उस दायित्व के संबंध में तृतीय पक्षकार की जिसके लिए पालिसी ली गई थी, क्षतिपूर्ति के लिए और इसकी हकदारी होते हुए भी उसके संबंध में प्रतिकर के अधिनिर्णयों का समाधान करने के लिए दायी है, (जिस पर हम कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं) भले ही वह इस कारण से पालिसी से इनकार करे या रद्द कराए कि प्रीमियम के संदाय में जारी चेक का आदरण नहीं हुआ था ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है ।)

26. इस प्रकार, यह विनिश्चय, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5) और 149(1) के आधार पर उपर्युक्त उल्लिखित निष्कर्ष का समर्थन करता है ।

27. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"105. इन याचिकाओं में उठे विभिन्न विवाद्यकों से संबंधित हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है –

(i) मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 जिसमें पर-व्यक्तियों के जोखिमों के विरुद्ध यानों के अनिवार्य बीमा के लिए उपबंध है, मोटर यानों के प्रयोग के द्वारा कारित दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर द्वारा अनुतोष प्रदान करने के लिए एक समाज कल्याणकारी विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा कराने का उपबंध इसी सर्वोपरि उद्देश्य की दृष्टि से है और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उक्त उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए किया जाना चाहिए ।

(ii) बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क या धारा 166 के अधीन फाइल दावा याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) के निबंधनों के अनुसार प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का हकदार है ।

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

(iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए पालिसी की शर्त का भंग अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा 2(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकृत व्यक्ति द्वारा किया गया साबित होना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समयबिंदु पर यान चालन के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं नहीं हैं । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और वह सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सुसंगत समय पर यान के चालन के लिए अयोग्य नहीं था, यानों के प्रयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व से बचने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिरक्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को भी सिद्ध करना चाहिए ; जिसके सबूत का भार उन पर होगा ।

(v) न्यायालय इस प्रकार का कोई मानदंड अधिकथित नहीं कर सकता है कि उक्त भार का किस प्रकार निर्वहन किया जाएगा क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने या सुसंगत अवधि के दौरान यान चालन की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है तो उसे (बीमाकर्ता को) उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व से बचने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि वे दुर्घटना से संबंधित पाए जाएं । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(3) के अधीन बीमाकृत व्यक्ति

को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने से संबंधित मूल भंग की संकल्पना और मुख्य प्रयोजन के नियम को लागू करेगा ।

(vii) यह प्रश्न कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा प्रस्तुत चालन अनुज्ञप्ति (जाली अनुज्ञप्ति या अन्यथा) विधि की अपेक्षा को पूरा करती है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर अवधारित किया जाएगा ।

(viii) यदि दुर्घटना के समय यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति थी तो बीमा कंपनियां डिक्री की तुष्टि करने की दायी होंगी ।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के प्रयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं, जिनमें पर-व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या उसकी संपत्ति को नुकसान अंतर्वलित होता है, के संबंध में सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम है । अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत व्यक्ति, बीमाकर्ता और चालक के मध्य के आंतरिक दावों का विनिश्चय करने तक निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावे का न्यायनिर्णयन और बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता का विनिश्चय करने के दौरान अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर विवादों का विनिश्चय करने के लिए आवश्यक रूप से शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है । दावाकर्ता द्वारा प्रतिकर के दावे के न्यायनिर्णयन और इस पर किए गए अधिनिर्णय के दौरान बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर दावों और विवादों पर दिया गया विनिश्चय दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए अधिनियम की धारा 174 में यथाउपबंधित रीति में प्रवर्तनीय और निष्पादनीय है ।

(x) जहां अधिनियम के अधीन दावे का न्यायनिर्णयन करने पर अधिकरण का यह निष्कर्ष हो कि बीमाकर्ता ने उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा को संतोषप्रद रूप से साबित कर दिया है, जैसाकि इस

न्यायालय द्वारा ऊपर निर्वचन किया गया है, वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर के और उन धनराशियों के संबंध में जिनका संदाय करने के लिए उस अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करे । अधिकरण द्वारा दावे का इस प्रकार अवधारण प्रवर्तनीय होगा और बीमाकृत व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय ठहराई गई धनराशि राजस्व के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन दी गई रीति में अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल की जाएगी । प्रमाणपत्र भू-राजस्व की बकाया के रूप में वसूली के लिए केवल तभी जारी किया जाएगा जैसा कि अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा यथाअपेक्षित है, जब बीमाकृत व्यक्ति अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से बीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) के परंतुक के साथ इसके उपबंधों और उपधारा (5) जिनमें बीमाकृत व्यक्ति की ओर से बीमा की संविदा के अधीन संदत्त धनराशि वसूल करने के लिए बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए इसमें उल्लिखित विनिर्दिष्ट आकस्मिकता आशयित है, का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और इन्हें ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पारस्परिक दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब होगा, बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता की प्रतिरक्षाओं और दावों को नियमित न्यायालय में उपचार माना जा सकता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

28. प्रतिपादना संख्या (vi) और (x) से जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिनिर्णय में अधिकरण द्वारा दिया गया निदेश विधि अनुसार है ।

29. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[1]

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय पर विचार किया और इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"35. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पर-व्यक्ति के अधिकार और निजी नुकसान के मामलों के बीच वैचारिक संकल्पनात्मक मतभेदों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । आरंभिक रूप से, यह साबित करने का भार बीमाकर्ता पर होता है कि विज्ञप्ति जाली थी । जब एक बार यह साबित हो जाता है तो नैसर्गिक परिणाम उत्पन्न होंगे ।

उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –

(1) **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय पर-व्यक्ति जोखिम वाले मामलों के अतिरिक्त अन्य मामलों में लागू नहीं होता ।

(2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली थी वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष को दूर नहीं कर सकता है ।

(3) पर-व्यक्ति जोखिम के मामले में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और जहां ऐसा हो, वहां बीमाकृत से उसे वसूल भी किया जा सकता है ।

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों को लागू नहीं होती ।

उच्च न्यायालय/आयोग विधि की स्थिति के प्रकाश में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले पर नए सिरे से विचार करेंगे ।

अपीलें खर्चों के बारे में कोई आदेश पारित किए बिना उपर्युक्त रूप में स्वीकार की जाती हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

30. उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय तृतीय पक्षकार के जोखिम के मामले में लागू होता है और बीमाकर्ता को तृतीय पक्षकार को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और इसके पश्चात् बीमाकृत से इस रकम को वसूल किया जा सकता है ।

31. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट करते हुए **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट किया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "8. **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के प्रभाव और विवक्षा (तात्पर्य) और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** लक्ष्मी नारायण दत्त (उपरोक्त) वाले मामले में हममें से एक (न्यायमूर्ति डाक्टर अरिजीत पसायत) ने विचार करते हुए स्पष्ट किया है । पैरा 38 में निकाला गया निम्नलिखित निष्कर्ष सुसंगत है –
>
> > "38. उपरोक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –
> >
> > (1) **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों को छोड़कर अन्य किसी मामले में कोई उपयोग नहीं है ।
> >
> > (2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली है, वहां नवीकरण से अन्तर्निहित दोष दूर नहीं हो सकता ।
> >
> > (3) तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और यदि ऐसा उपदर्शित किया गया है तो वह बीमाकृत से उसकी वसूली कर सकता है ।

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[2] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना का अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों में कोई उपयोग नहीं होता ।

9. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मीना वारीयान और अन्य [(2007) 5 एस. सी. सी. 428 = 2007 (2) टी. ए. सी. 417] वाले मामले में दिया गया पश्चात्वर्ती विनिश्चय, जो दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय है, **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि किसी ऐसे मामले में जहां कोई व्यक्ति अधिनियम के अर्थांतर्गत तृतीय पक्ष नहीं है, बीमा कंपनी को केवल **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर अपने आप दायी नहीं बनाया जा सकता । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय ने **लक्ष्मी नारायण दत्त** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 38 में उल्लिखित विश्लेषण को उद्धृत किया और उसके साथ सहमति व्यक्त की । हम संगतता को दृष्टि में रखते हुए **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्वचन और प्रयोजनीयता को ध्यान में रखते हुए **लक्ष्मी नारायण दत्त** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को दोहराते हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

32. उपरोक्त विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं ।

33. जहां तक श्री राहुल सहाय द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 4 है) के विरुद्ध संरक्षित होना चाहिए जिससे कि यदि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर की धनराशि नकद रूप में जमा करे तो वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके, इस संबंध में श्री राहुल सहाय द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों का निर्देश करना प्रासंगिक है ।

34. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "7. अतः हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए **बलजीत कौर** 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.) वाले मामले में अभिव्यक्त मत के निबंधनों में यह निदेश करते हैं कि बीमाकर्ता, अधिकरण द्वारा नियत किए गए उस प्रतिकर के परिमाण का आज से तीन मास के भीतर संदाय करेगा जिसके संबंध में प्रत्यर्थियों-दावाकर्ताओं ने कोई विवाद नहीं किया है । बीमाकर्ता से उसे वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी । वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण की विषयवस्तु से संबंधित विवाद बीमाकर्ता और स्वामी के बीच था और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । बीमाकृत को धनराशि निर्मुक्त करने से पहले यान के स्वामी को नोटिस जारी किया जाएगा और उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति दाखिल करने की अपेक्षा की जाएगी जिसका बीमाकर्ता दावाकर्ताओं को संदाय करेगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि निष्पादन न्यायालय आवश्यक समझे तो वह संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता ले सकता है । निष्पादन न्यायालय उस रीति के बारे में विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें बीमाकृत यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस मामले में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या बीमाकृत यान के स्वामी की किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से वसूलने का निदेश करे । अपील का उपर्युक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"
>
> (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

35. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** बनाम **छल्ला भरथम्मा**[1] वाले मामले में इस प्रकार अधिकथित किया गया है :–

"प्रश्न यह रहता है कि समुचित निदेश क्या होगा । अधिनियम के फायदा संबंधी उद्देश्य पर विचार करते हुए बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई उत्तरदायित्व न हो । कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है । स्वामी से संदेय धनराशि वसूली करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता से वाद फाइल करने की अपेक्षा नहीं की गई है । वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण करने के लिए संबंधित विवाद्यक की विषयवस्तु विवाद्यक बीमाकर्ता और स्वामी के बीच हो और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया हो । दावाकर्ताओं के लिए धनराशि को निर्मुक्त करने से पूर्व दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देगा जो बीमाकर्ता दावेदारों को देगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि आवश्यकता हुई तो निष्पादन न्यायालय संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेगा । निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसार उस रीति के बारे में समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस संबंध में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय यान के स्वामी अर्थात् बीमाकृत की प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से वसूली करने के लिए निदेश देगा । वर्तमान मामले में हम अन्तर्वलित धनराशि की मात्रा पर विचार करते हुए इस विनिश्चय को बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए क्या कदम उठाया जाए ।"

36. हमारी राय में, उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 4) से उक्त

---

[1] (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं ।

37. तथापि, हम इस न्यायालय के दोनों विनिश्चयों को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चयों पर विचार किया गया है ।

38. **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यथानिर्दिष्ट उपरोक्त निर्णयज विधि से यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि बीमाकर्ता को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के अधीन पालिसी के अन्तर्गत दावाकर्ताओं को प्रतिकर के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है फिर भी इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा विकसित विधि के अधीन संदाय करने का दायित्व बीमा कंपनी को ठहराया गया है । इसके साथ-साथ बीमा कंपनी को भी मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के भीतर बीमाकृत व्यक्ति से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए और इस प्रयोजन के लिए कोई वाद फाइल करने का भार डाले बिना स्वतंत्रता दी गई है । आरंभतः विधि का यह सिद्धांत बलजीत कौर वाले मामले में घोषित किया गया था और इसका संबंधित पक्षकारों द्वारा ऊपर निर्दिष्ट मामले में अनुसरण किया गया है । किन्तु पश्चात्वर्ती मामलों में विशेषतया **नन्जप्पन** (उपरोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि बीमाकृत/यान का स्वामी न्यायालय के समक्ष जमा धनराशि को निर्मुक्त करने से पहले एक सूचना जारी करेगा और उससे उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देने की अपेक्षा की जाएगी जो बीमा कंपनी दावाकर्ताओं को संदाय करेगी । नोटिस के पश्चात् न्यायालय प्रतिभूति के भाग के रूप में दुर्घटना करने वाले यान की कुर्की करने का निदेश कर सकता है और विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित कर सकता

---

[1] 2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद).

है । चूक होने की दशा में न्यायालय के लिए यह विकल्प होगा कि वह प्रतिभूति के निपटान द्वारा बीमाकृत/स्वामी से या यान के स्वामी की किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से धनराशि को सीधे वसूल करने का निदेश कर सकेगा । तथापि, ये सभी तरीके उच्चतम न्यायालय द्वारा बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत से वसूली के लिए उपबंधित किए गए हैं । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इन सभी निदेशों का तात्पर्य यह है कि न्यायालय उन दावाकर्ताओं के हित को कम नहीं मानेगा जिनके कल्याण के लिए उच्चतम न्यायालय ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के साथ बीमाकर्ता के दायित्व के अन्यथा निर्वचन द्वारा इन सभी मामलों के माध्यम से इस विधि का विकास किया है । इस प्रकार, वर्तमान मामले में निष्कर्ष यह है कि पुनरीक्षणकर्ता-दावेदार को तब भी नुकसान न हो जब बीमाकृत/यान का स्वामी प्रतिभूति नहीं देता है या वह न्यायालय के समक्ष उसको जारी किए नोटिस के अनुसरण में हाजिर नहीं होता है । अधिनियम के उपबंधों के भीतर धनराशि वसूल करने का भार उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय में स्वयं बीमाकर्ता पर डाला गया है । दावाकर्ताओं को जिन्होंने अपने पक्ष में अधिनिर्णय प्राप्त किया है, इन मामलों में उच्चतम न्यायालय ने अपने संप्रेक्षण के माध्यम से हानि नहीं होने दी है । इस प्रकार, मामले को उपरोक्त दृष्टि से देखते हुए मेरा यह मत है कि यदि निचला न्यायालय प्रथमतः बीमाकृत/यान के स्वामी को नोटिस जारी करने का निदेश देता है और केवल उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष जमा राशि दावाकर्ताओं के पक्ष में निर्मुक्त की जाती है तो यह न्यायोचित और ठीक होगा ।"

39. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस प्रकार से अधिकथित किया है :–

"4. विद्वान् काउंसेल ने यह सिद्ध करने के लिए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी **बनाम** छल्ला भरथम्मा और अन्य (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 2 (एस. सी.) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख (उद्धृत) किया है कि बीमा

[1] 2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355.

कंपनी के दावे को स्वामी द्वारा प्रत्याभूत किया जाना चाहिए । हमारे समक्ष इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । हम यह कहना चाहते हैं कि जब तक वसूली के प्रयोजन के लिए बीमा कंपनी द्वारा उसी कार्यवाही में कोई समुचित आवेदन नहीं दिया जाता है तब तक स्वामी द्वारा प्रतिभूति प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसी प्रास्थिति अब परिपक्व हो चुकी है । इस प्रक्रम पर हम केवल दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर का संदाय करने से संबंधित मुद्दे पर विचार कर रहे हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता है और जिसका स्वामी तथा बीमा कंपनी के बीच दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है । पीड़ित एक पर-व्यक्ति है । इसके अलावा, ऐसे निर्णय में, उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिनियम के फायदाग्रही उद्देश्य पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है – 'बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे, भले ही विधि में उसका कोई दायित्व न हो' । प्रभावतः यह अधिनिर्णय के समाधान के लिए एक कामचलाऊ (अन्तरकालीन) प्रबंध है जैसे ही इसे पारित किया जाता है । नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. **बनाम** स्वर्ण सिंह और अन्य [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपने निर्णय के पैरा 110 में इस प्रकार मत व्यक्त किया कि अधिकरण यह निदेश कर सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर और अन्य धनराशियों के लिए बीमाकृत को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है जिसके द्वारा उसे अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है । अतः विधान-मंडल का आशय और उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्वचन के आधार पर यह बात सुस्थापित है कि दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर के संदाय से किसी भी परिस्थिति में इनकार नहीं किया जाएगा । हम दोहराते हुए यह भी कह सकते हैं कि इसका स्वामी या बीमाकर्ता के दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है जिस पर उसी मामले में पृथक् आवेदन में या बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत निष्पादन आवेदन में विचार किया जा सकता है ।"

40. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी प्रत्यर्थी सं. 4 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है ।

41. आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 4) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करें और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करें ।

42. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 3 या 4 उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 4) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे ।

43. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी ।

44. उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की जाती है ।

45. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चों के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य

बनाम

सफ़िया बेगम

तारीख 26 नवम्बर, 2010

मुख्य न्यायमूर्ति (डा.) आफताब एच. सैकिया
और न्यायमूर्ति मुजफ्फर हुसैन अत्तार

जम्मू-कश्मीर (अनुकम्पा नियुक्ति) नियम, 1994 – नियम 2 – तदर्थ सरकारी कर्मचारी – सेवा के दौरान मृत्यु – मृतक के आश्रित अर्थात् पत्नी द्वारा अनुकम्पा आधार पर नियुक्ति के लिए दावा – राज्य द्वारा इनकार – अनुकम्पा नियुक्ति नियमों का उद्देश्य सरकारी कर्मचारी की मृत्यु पर उसके आश्रितों को जीविका उपलब्ध कराना है – अतः इस आधार पर कि कर्मचारी तदर्थ आधार पर नियुक्त था, नियुक्ति देने से इनकार करना उचित नहीं है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 और 16 – सरकार द्वारा पूर्व में गलत आधार पर नियमों का फायदा प्रदान करना – ऐसा फायदा नजीर के रूप में प्रस्तुत करके दावा किया जाना – यदि किसी गलती से किसी व्यक्ति को कोई फायदा दे दिया गया है तो उसे आधार बनाकर ऐसे फायदे की ईप्सा नहीं की जा सकती ।

मोहम्मद सादिक नामक व्यक्ति (मृतक) तदर्थ/अंतर-कालीन आधार पर वर्ष 1991 में फार्मासिस्ट के रूप में नियुक्त किया गया था । तारीख 8 फरवरी, 2003 तक, जिस दिन उसने अंतिम सांस ली, मृतक अपीलार्थियों की सेवा में रहा था । उसकी विधवा अर्थात् सफ़िया बेगम ने अनुकम्पा के आधार पर नियुक्त किए जाने का अनुरोध किया था । अनुकम्पा आधार पर उसको नियुक्त करने की सिफारिश ब्लाक चिकित्सा अधिकारी, मेंडर ने तारीख 5 मार्च, 2003 की सूचना द्वारा मुख्य चिकित्सा अधिकारी, पुंछ ने तारीख 11 मार्च, 2003 की सूचना द्वारा और तारीख 31 मई, 2003 की सूचना द्वारा निदेशक स्वास्थ्य सेवा, जम्मू ने की थी । निदेशक, स्वास्थ्य सेवा, जम्मू ने अपनी संसूचना में 2001 के शासकीय आदेश सं. 1304-जी. ए. डी., तारीख 9 नवम्बर, 2001 में मृतक की सेवाओं को नियमित करने

का भी अनुरोध किया था । उस संसूचना में ऐसे ही एक मामले का निर्देश किया गया था जो कि सरकार द्वारा तारीख 19 जुलाई, 2002 को जारी किया गया था । प्रत्यर्थी ने रिट के अभिलेख पर ऐसे दस्तावेजों को प्रस्तुत किया है जिनसे यह प्रकट होता है कि ऐसी ही परिस्थितियों में मोहम्मद रमजान की विधवा श्रीमती नसीर बेगम को अनुकम्पा आधार पर नियुक्त करने का आदेश दिया गया था । अपीलार्थियों द्वारा अनुकम्पा आधार पर याची की नियुक्ति न करने के कारण वह इस न्यायालय में 2005 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 1357 फाइल करने के लिए मजबूर हुई थी । प्रत्यर्थी-रिट याची ने रिट याचिका में यह प्रार्थना की थी कि अपीलार्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे 1994 के नियमों के आधार पर उसके मृतक पति के स्थान पर अनुकम्पा आधार पर नियुक्त करने के लिए या चतुर्थ श्रेणी में या किसी अन्य समतुल्य पद पर नियुक्ति के दावे पर विचार करें और वैकल्पिक रूप से यह भी प्रार्थना की थी कि याची के प्रति भी श्रीमती नसीर बेगम की भांति समान व्यवहार करने का आदेश दिया जाए । रिट याचिका स्वीकार किए जाने से व्यथित होकर राज्य द्वारा यह लेटर्स पेटेन्ट अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए सरकार में रिक्त पद एक लोक सम्पत्ति होती है और ऐसी स्थिति में जब सक्षम प्राधिकारी उस पद को भरने का निर्णय लेता है तब प्राधिकारी के ऐसे विनिश्चय के बारे में सभी अर्हित अभ्यर्थियों को अधिसूचित किया जाना चाहिए तथा ऐसे सभी व्यक्ति जो उस प्रकाशित विज्ञापन के उत्तर में आवेदन करते हैं, उनके नामों पर उनकी योग्यता और उपयुक्तता के आधार पर चयन/नियुक्त किए जाने के लिए विचार किया जाना चाहिए । हमारी संवैधानिक स्कीम को ध्यान में रखते हुए राज्य और उसके प्राधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे लोक कल्याण को सुनिश्चित करें, तथापि, अपनी वित्तीय स्थिति में रहते हुए कोई व्यक्ति जो सरकार में रिक्त पद पर या एक्स काडर होने के आधार पर भी नियुक्त किया गया है, सरकारी कर्मचारी बन जाता है । कोई व्यक्ति चाहे वह किसी सेवा में और/या एक्स काडर आधार पर या भले ही वह करार द्वारा नियुक्त हुआ हो, यदि ऐसा व्यक्ति उस प्रास्थिति को प्राप्त कर लेता है तो वह उसे विनियमित करने वाले नियमों/कार्यपालक आदेशों के अधीन आ जाता है । कोई व्यक्ति उसके द्वारा की गई सेवा की अवधि के आधार पर नियुक्त

होने पर नियमों द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक प्राप्त करता है । किसी कर्मचारी को सरकार और उसके प्राधिकारियों द्वारा जो वेतन और अन्य भत्ते दिए जाते हैं वे कर्मचारी और उसके परिवार के सदस्यों के निर्वाह का स्रोत बन जाते हैं । पारिवारिक कार्य कर्मचारी द्वारा प्राप्त किए जाने वाले वेतन से ही पूरे होते हैं । किसी कर्मचारी की असमय मृत्यु होने पर परिवार न केवल उस व्यक्ति के स्नेह और देखभाल से वंचित हो जाता है अपितु जीवन-यापन के स्रोत से भी वंचित हो जाता है । ऐसे परिवार को न केवल भावनात्मक और मानसिक दुख होता है अपितु उसके निर्वाह का स्रोत भी समाप्त हो जाता है । न्यायालय की संवैधानिकता दार्शनिकता के आधार पर राज्य इस बात के लिए कर्तव्याबद्ध है कि वह अपने लोगों के कल्याण का ध्यान रखे । निस्संदेह, यह भी राज्य का एक मौलिक कर्तव्य है । जब परिवार उपर्युक्त परिस्थितियों में परिवार के एकमात्र कमाने वाले व्यक्ति की मृत्यु होने के कारण बेसहारा हो जाता है तो धन की कमी हो जाती है और परिवार भुखमरी का शिकार हो जाता है । ऐसे परिवार को गरीबी और भुखमरी से बचाने के लिए राज्य ने उन्हें सहायता प्रदान करने के लिए एक नीतिगत निर्णय लिया है । इस नीतिगत निर्णय के आधार, पूर्णतया न्यायालय की संवैधानिक दार्शनिकता से जुड़े हुए हैं । 1994 के नियम लोक पदों पर नियुक्ति करने के लिए सामान्य नियमों के अपवादस्वरूप बनाए गए हैं । किसी पद पर सार्वजनिक रूप से की जाने वाली नियुक्ति के सामान्य नियम से हटकर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति किए जाने के विशेष प्रयोजन को सेवा में नियुक्ति की विधिक रीतियों में स्वीकार किया गया है । इस श्रेणी के सृजन का प्रयोजन, जो कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है, यह है कि मृत कर्मचारी और मृत सिविलियन या सैन्य अधिकारी के परिवार को भुखमरी से बचाया जाए । 1994 के नियमों में प्रयुक्त "सरकारी कर्मचारी" अभिव्यक्ति को समझकर और परिभाषित करके ही उक्त नियमों के अधीन प्रयोजनों को प्राप्त किया जा सकता है । 1994 के नियमों में भिन्न स्थितियां प्रकट होती हैं जोकि परिवार के सदस्य को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए हकदार बना सकें अर्थात् ऐसे सरकारी कर्मचारी, जिनकी कार्य के दौरान मृत्यु हुई हो, ऐसे कर्मचारी जिनकी सेना संबंधी कार्रवाई में कार्य पर मृत्यु हुई हो और एक ऐसे सिविलियन जिनकी मृत्यु सेना संबंधी कार्रवाई में हुई हो किन्तु सैन्य क्रियाकलाप में अंतर्वलित न हो, 1994 के नियमों का उद्देश्य न

केवल मृत कर्मचारी के परिवार के हितों की, अपितु मृत सिविलियन के हितों की रक्षा करना है । 1994 के नियमों में आने वाले "सरकारी कर्मचारी" पद को इस पृष्ठभूमि में समझा और परिभाषित किया जाना चाहिए । जहां नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने स्वयं नियमों में "सरकारी कर्मचारी" पद को परिभाषित करते हुए जो विशेष निष्कर्ष लिया है वहां उस पर पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने सचेतन रूप से 1994 के नियमों में "सरकारी कर्मचारी" अभिव्यक्ति को रखा है । यदि सरकार का आशय केवल स्थायी सरकारी कर्मचारी के परिवार को ही 1994 के नियमों का लाभ देना होता तो प्राधिकारी को नियमों में "सरकारी कर्मचारी" को तद्नुसार परिभाषित करने से कोई नहीं रोक सकता था । सरकारी कर्मचारी एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसे सरकार द्वारा सेवा प्राप्त करने के लिए नियुक्त किया जाता है । सरकारी कर्मचारी से जैसा कि 1994 के नियमों में दिया गया है, स्थायी सरकारी कर्मचारी, अस्थायी सरकारी कर्मचारी और तदर्थ सरकारी कर्मचारी अभिप्रेत है । इस निर्वचन को 1994 के नियमों के नियम 2 के खंड 3 से समर्थन मिलता है, जो किसी सिविलियन के परिवार के सदस्य की अनुकंपा आधार पर नियुक्ति पर विचार करने के लिए उपबंध करता है । जहां सरकार इसी सिद्धांत, तर्क और युक्तियुक्तता के आधार पर मृत सिविलियन के परिवार के सदस्य को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करना प्रस्थापित करती है वहां 1994 के नियमों में आने वाले "सरकारी कर्मचारी" पद में अस्थायी और तदर्थ कर्मचारी भी सम्मिलित होते हैं । अनुकंपा आधार पर नियुक्ति के इन विशेष नियमों के प्रयोजन को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब 1994 के नियमों में आने वाले "सरकारी कर्मचारी" पद का ऐसा ही निर्वचन किया जाए । इसी आधार पर अपीलार्थियों ने नसीर बेगम को नियुक्त किया था । (पैरा 11, 12, 15 और 16)

अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा निर्दिष्ट दूसरा निर्णय जिसका उन्होंने अवलंब लिया है, यह उपबंध करता है कि यह विधि का एक स्थापित सन्नियम है कि किसी गलती करने और उसे दोहराने के आधार पर निदेश जारी नहीं किया जा सकता । विधि की इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का नकारात्मक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता । इस मामले में अपीलार्थियों द्वारा की गई गलती से और उसे पुनः दोहराने के

आधार पर कोई निदेश (अनुतोष) नहीं मांगा जा सकता । (पैरा 18)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5014 : **महाप्रबंधक, उत्तरांचल जल संस्थान और अन्य** बनाम **लक्ष्मी देवी और अन्य ;**	9,17
[2003]	(2003) 2 एस. सी. सी. 111 : **भावनगर विश्वविद्यालय** बनाम **पलिताना शुगर मिल्स (प्रा.) लि. और अन्य ;**	17,18
[2000]	2000 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2389 : **बिहार राज्य और अन्य** बनाम **कामेश्वर प्रसाद सिंह और एक अन्य ;**	9
[1996]	ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2445 : **हरियाणा राज्य और अन्य (अपीलार्थी)** बनाम **रानी देवी और एक अन्य** ।	9,17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की एल. पी. ए. एस. डब्ल्यू. सं. 50 और 2010 की सी. एम. पी. सं. 8.

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 के अनुच्छेद 103 के अधीन फाइल रिट याचिका में पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्रीमती शाइस्ता हकीम

प्रत्यर्थियों की ओर से श्रीमती सुरिन्दर कौर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मुजफ्फर हुसैन अत्तार ने दिया ।

न्या. हुसैन अत्तार – अन्तर न्यायिक प्रशासन में, अन्य बातों के साथ-साथ, न्यायालय का यह मौलिक कर्तव्य भी है कि वह कानून के द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों को क्रियान्वित कराए । जम्मू-कश्मीर (अनुकम्पा पर नियुक्ति) नियम, 1994 (जिसे संक्षेप में "1994 के नियम" कहा गया है) के नियम 2 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "सरकारी कर्मचारी" का विधिक रूप से

इसके सही परिप्रेक्ष्य में निर्वचन करना आवश्यक है जिससे कि 1994 के नियमों का उद्देश्य पूरा हो सके ।

2. मोहम्मद सादिक नामक व्यक्ति (मृतक) तदर्थ/अंतर-कालीन आधार पर वर्ष 1991 में फार्मासिस्ट के रूप में नियुक्त किया गया था । तारीख 8 फरवरी, 2003 तक, जिस दिन उसने अंतिम सांस ली, मृतक अपीलार्थियों की सेवा में रहा था । उसकी विधवा अर्थात् सफिया बेगम ने अनुकम्पा के आधार पर नियुक्त किए जाने का अनुरोध किया था । अनुकम्पा आधार पर उसको नियुक्त करने की सिफारिश ब्लाक चिकित्सा अधिकारी, मेंडर ने तारीख 5 मार्च, 2003 की सूचना द्वारा, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, पुंछ ने तारीख 11 मार्च, 2003 की सूचना द्वारा और तारीख 31 मई, 2003 की सूचना द्वारा निदेशक स्वास्थ्य सेवा, जम्मू ने की थी । निदेशक, स्वास्थ्य सेवा, जम्मू ने अपनी संसूचना में 2001 के शासकीय आदेश सं. 1304-जी. ए. डी., तारीख 9 नवम्बर, 2001 में मृतक की सेवाओं को नियमित करने का भी अनुरोध किया था । उस संसूचना में ऐसे ही एक मामले का निर्देश दिया गया था जो कि सरकार द्वारा तारीख 19 जुलाई, 2002 को जारी किया गया था । प्रत्यर्थी ने रिट के अभिलेख पर ऐसे दस्तावेजों को प्रस्तुत किया है जिनसे यह प्रकट होता है कि ऐसी ही परिस्थितियों में मोहम्मद रमजान की विधवा श्रीमती नसीर बेगम को अनुकम्पा आधार पर नियुक्त करने का आदेश दिया गया था । अपीलार्थियों द्वारा अनुकम्पा आधार पर याची की नियुक्ति न करने के कारण वह इस न्यायालय में 2005 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 1357 फाइल करने के लिए मजबूर हुई थी । प्रत्यर्थी-रिट याची ने रिट याचिका में यह प्रार्थना की थी कि अपीलार्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे 1994 के नियमों के आधार पर उसके मृतक पति के स्थान पर अनुकम्पा आधार पर नियुक्त करने के लिए या चतुर्थ श्रेणी में या किसी अन्य समतुल्य पद पर उसकी नियुक्ति के दावे पर विचार करें और वैकल्पिक रूप से यह भी प्रार्थना की थी कि याची के प्रति भी श्रीमती नसीर बेगम की भांति समान व्यवहार करने का आदेश दिया जाए ।

3. रिट याचिका में यह अभिवाक् किया गया था कि चूंकि मृतक वर्ष 1991 से 2003 तक अपीलार्थियों के नियोजन में रहा था और मृतक की असमय मृत्यु होने के कारण मृतक के परिवार को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है तथा प्रत्यर्थी-रिट याची के लिए वित्तीय सहायता

के अभाव में जीवन-यापन करना कठिन हो गया था, इसलिए उसे नियुक्ति दी जाए ।

4. प्रत्यर्थियों द्वारा न्यायालय में आक्षेप फाइल करते हुए यह दलील दी गई कि चूंकि मृतक मृत्यु के समय तक तदर्थ आधार पर कार्यरत था इसलिए प्रत्यर्थी-रिट याची का मामला 1994 में एस. आर. ओ. सं. 43 द्वारा अधिसूचित किए गए नियमों के अधीन नहीं आता है ।

5. विद्वान् रिट न्यायालय ने रिट याची को सुना और 29 सितम्बर, 2009 को दिए गए निर्णय द्वारा रिट याचिका को विनिश्चित किया । रिट न्यायालय ने अपीलार्थियों की इस दलील को कि मृतक तदर्थ आधार पर नियुक्त था इसलिए वह अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के नियमों में नहीं आया था, इसी न्यायालय द्वारा पहले दिए गए निर्णय के आधार पर अस्वीकार कर दिया । इस लेटर्स पेटेन्ट अपील में दिए गए आक्षेपित निर्णय द्वारा रिट याचिका मंजूर कर ली गई थी और अपीलार्थियों को निदेश दिया गया था कि वे प्रत्यर्थी/रिट याची की योग्यता और अर्हता के अनुसार पूर्णतया संबद्ध नियमों के अनुरूप अनुकम्पा के आधार पर याची को नियुक्ति देने पर विचार करें । अपीलार्थियों को आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन मास की अवधि में प्रक्रिया पूर्ण करने के लिए निदेश दिया गया था ।

6. अपीलार्थियों ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर यह लेटर्स पेटेन्ट अपील फाइल की है ।

7. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और मामले पर विचार किया ।

8. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि मृतक तदर्थ कर्मचारी था इसलिए उस पर 1994 के नियम लागू नहीं होते और प्रत्यर्थी-रिट याची अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार करने की हकदार नहीं है ।

9. विद्वान् उपमहाधिवक्ता श्रीमती एस. हकीम ने न्यायालय के समक्ष बलपूर्वक यह दलील दी कि 1994 के नियमों में प्रयुक्त "सरकारी कर्मचारी" में तदर्थ कर्मचारी सम्मिलित नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **हरियाणा राज्य और**

अन्य (अपीलार्थी) बनाम **रानी देवी और एक अन्य**[1] और **महाप्रबंधक, उत्तरांचल जल संस्थान और अन्य** बनाम **लक्ष्मी देवी और अन्य**[2] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का निर्देश करते हुए उनका अवलंब लिया । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि सरकार को और उसके प्राधिकारियों को ऐसा आदेश देते हुए परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती जो विधि और नियमों द्वारा समर्थित नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि सरकार या उसके प्राधिकारियों को किसी गलत निर्णय, जो निर्णय किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में लाभ देने के लिए था, के आधार पर किसी अन्य व्यक्ति को उसका लाभ देने का निदेश नहीं दिया जा सकता । विद्वान् काउंसेल ने इस संदर्भ में **बिहार राज्य और अन्य** बनाम **कामेश्वर प्रसाद सिंह और एक अन्य**[3] वाले मामले का निर्देश देते हुए उसका अवलंब लिया है ।

10. याची-प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्रीमती सुरिन्दर कौर ने यह दलील दी कि न्यायालय ने निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया है कि न केवल तदर्थ आधार पर कार्यरत व्यक्ति के परिवार के सदस्य अपितु दैनिक मजदूर के परिवार के सदस्य भी अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के हकदार हो सकते हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलाधीन निर्णय विधिक है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

11. भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए सरकार में रिक्त पद एक लोक सम्पत्ति होती है और ऐसी स्थिति में जब सक्षम प्राधिकारी उस पद को भरने का निर्णय लेता है तब प्राधिकारी के ऐसे विनिश्चय के बारे में सभी अर्हित अभ्यर्थियों को अधिसूचित किया जाना चाहिए तथा ऐसे सभी व्यक्ति जो उस प्रकाशित विज्ञापन के उत्तर में आवेदन करते हैं, उनके नामों पर उनकी योग्यता और उपयुक्तता के आधार पर चयन/नियुक्त किए जाने के लिए विचार किया जाना चाहिए ।

12. हमारी संवैधानिक स्कीम को ध्यान में रखते हुए राज्य और उसके

---

[1] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2445.

[2] 2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5014.

[3] 2000 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2389.

प्राधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे लोक कल्याण को सुनिश्चित करें, तथापि, अपनी वित्तीय स्थिति में रहते हुए कोई व्यक्ति जो सरकार में रिक्त पद पर या एक्स काडर होने के आधार पर भी नियुक्त किया गया है, सरकारी कर्मचारी बन जाता है । कोई व्यक्ति चाहे वह किसी सेवा में और/या एक्स काडर आधार पर या भले ही वह करार द्वारा नियुक्त हुआ हो, यदि ऐसा व्यक्ति उस प्रास्थिति को प्राप्त कर लेता है तो वह उसे विनियमित करने वाले नियमों/कार्यपालक आदेशों के अधीन आ जाता है । कोई व्यक्ति उसके द्वारा की गई सेवा की अवधि के आधार पर नियुक्त होने पर नियमों द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक प्राप्त करता है । किसी कर्मचारी को सरकार और उसके प्राधिकारियों द्वारा जो वेतन और अन्य भत्ते दिए जाते हैं वे कर्मचारी और उसके परिवार के सदस्यों के निर्वाह का स्रोत बन जाते हैं । पारिवारिक कार्य कर्मचारी द्वारा प्राप्त किए जाने वाले वेतन से ही पूरे होते हैं । किसी कर्मचारी की असमय मृत्यु होने पर परिवार न केवल उस व्यक्ति के स्नेह और देखभाल से वंचित हो जाता है अपितु जीवन-यापन के स्रोत से भी वंचित हो जाता है । ऐसे परिवार को न केवल भावनात्मक और मानसिक दुख होता है अपितु उसके निर्वाह का स्रोत भी समाप्त हो जाता है । हमारी संवैधानिकता दार्शनिकता के आधार पर राज्य इस बात के लिए कर्तव्याबद्ध है कि वह अपने लोगों के कल्याण का ध्यान रखे । निस्संदेह, यह भी राज्य का एक मौलिक कर्तव्य है । जब परिवार उपर्युक्त परिस्थितियों में परिवार के एकमात्र कमाने वाले व्यक्ति की मृत्यु होने के कारण बेसहारा हो जाता है तो धन की कमी हो जाती है और परिवार भुखमरी का शिकार हो जाता है ऐसे परिवार को गरीबी और भुखमरी से बचाने के लिए राज्य ने उन्हें सहायता प्रदान करने के लिए एक नीतिगत निर्णय लिया है । इस नीतिगत निर्णय के आधार पूर्णतया हमारी संवैधानिक दार्शनिकता से जुड़े हुए हैं । इस प्रकार लिया गया नीतिगत निर्णय जम्मू-कश्मीर (अनुकम्पा नियुक्ति) नियम, 1994 कहा गया है और ये नियम जीवन संरक्षण के आधार पर बनाए गए हैं । 1994 के नियमों के नियम 2 और 5 निम्नलिखित रूप में हैं :–

> "2. **नियमों का लागू होना** – ये नियम ऐसे व्यक्ति की अनुकम्पा नियुक्ति को लागू होंगे, जो निम्नलिखित में से किसी के कुटुम्ब का सदस्य हो –
>
> (i) ऐसा सरकारी कर्मचारी जिसकी मृत्यु सेना संबंधी

कार्रवाई के सिवाय सेवा के दौरान हुई है ;

(ii) ऐसा कोई सरकारी कर्मचारी जिसकी मृत्यु सेना से संबद्ध कार्रवाई के परिणामस्वरूप हुई हो और जो सेना संबंधी क्रियाकलापों में अन्तर्वलित न हो ;

(iii) ऐसा कोई सिविलियन जिसकी मृत्यु सेना से संबंधित कार्रवाई में हुई हो और जो सेना संबंधी क्रियाकलापों में अन्तर्वलित न हो और सहायक आयुक्त के पद से अनिम्न किसी राजस्व अधिकारी द्वारा निर्धारित उस परिवार की सभी स्रोतों से आय कुल मिलाकर 3,500/- रुपए प्रतिमास से अधिक नहीं है ;

(iv) कोई स्थायी कनिष्ठ कमीशन अधिकारी या सेवा बल को कोई अकमीशन अधिकारी या जम्मू-कश्मीर राज्य में कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए अर्धसैनिक बल में किसी समतुल्य रैंक का अधिकारी या वास्तविक नियंत्रण रेखा पर दुश्मन की कार्रवाई के परिणामस्वरूप मृत कोई अधिकारी ।

3. **इन नियमों के अधीन नियुक्ति** – सरकार के अधीन किसी सेवा या पद पर नियुक्ति की प्रक्रिया को तत्समय विनियमित करने वाले किसी नियम या आदेश में, किसी बात के होते हुए भी, नियम 2 में विनिर्दिष्ट अर्हित व्यक्ति के परिवार के सदस्य की मैट्रिक से अधिक शैक्षणिक अर्हता होने पर अराजपत्रित सेवा में निम्नतर रैंक में या जहां अभ्यर्थी मैट्रिक तक पढ़ा हो, वहां चतुर्थ श्रेणी के रिक्त पद पर नियुक्ति की जा सकेगी :

परन्तु यह कि आवेदक इसके पात्र तथा अर्हित हो या नियम 2 में विनिर्दिष्ट मृतक व्यक्ति की मृत्यु को 6 मास की अवधि के भीतर पात्रता और अर्हता प्राप्त कर ली हो ।

(2) उप-नियम (1) में की कोई बात साधारण प्रशासनिक विभाग में किसी भी अभ्यर्थी को अराजपत्रित सेवा के उच्च पद पर नियुक्त करने की सरकार की शक्ति को प्रभावित नहीं करेगी यदि वह मृत सरकारी कर्मचारी या सेना की कार्रवाई मृत सिविलियन के परिवार का/की सदस्य है ।

4. **कार्य पर होने के दौरान मृत्यु के मामले में नियुक्ति** – इन

नियमों के अधीन सरकारी कर्मचारी के, जिसकी मृत्यु सेना की कार्रवाई से अन्यथा कार्य पर होते हुए हुई हो, परिवार के सदस्य की नियुक्ति संबंधित विभागाध्यक्ष द्वारा की जा सकेगी, परन्तु यह कि –

(i) जहां विभागाध्यक्ष के कार्यालय या अधीनस्थ कार्यालय में कोई पद रिक्त नहीं है, संबंधित प्रशासनिक विभाग द्वारा नियुक्ति के लिए ऐसा प्रस्ताव तैयार किया जाएगा और जहां ऐसे संबंधित प्रशासनिक विभाग में भी कोई रिक्त पद उपलब्ध नहीं है वहां मामला किसी अन्य विभाग में अभ्यर्थी की नियुक्ति के लिए साधारण प्रशासनिक विभाग को निर्दिष्ट किया जाएगा, या

(ii) जहां ऐसी नियुक्ति नियमों में शिथिलीकरण करके की गई है वहां ऐसे मामले सामान्य प्रशासनिक विभाग के समन्वय में प्रस्तुत किए जाएंगे ।

5. **अन्य मामलों में नियुक्ति** – (1) इन नियमों के अधीन सरकारी कर्मचारी या सिविलियन के परिवार के सदस्य की नियुक्ति के संबंध में, जिसकी मृत्यु सेना की कार्रवाई के परिणामस्वरूप हुई हो या किसी अधिकारी या सशस्त्र बल या अर्धसैनिक बल के परिवार के सदस्यों के संबंध में इसमें इसके पश्चात् विहित प्रक्रिया के अनुरूप साधारण प्रशासनिक विभाग द्वारा ही नियुक्ति की जाएगी ।

(2) कोई सरकारी कर्मचारी या सिविलियन, जिसकी मृत्यु सेना से संबंधित कार्रवाई के परिणामस्वरूप हुई हो, उसके परिवार का सदस्य किसी भी उपयुक्त पद पर नियुक्त किए जाने के लिए जिले के उपायुक्त, जहां वह निवास करता/करती है, को आवेदन कर सकेगा/कर सकेगी । उपायुक्त ऐसी जांच, जो वह आवश्यक समझे, करने के उपरान्त मामले को गृह विभाग के माध्यम से सामान्य प्रशासनिक विभाग को या सरकार के अधीन किसी विभाग में उपयुक्त रिक्त पद पर समायोजित करते हुए नियुक्ति करने के लिए भेजेगा ।

(3) सशस्त्र बल या अर्धसैनिक बल के किसी सदस्य के परिवार का कोई सदस्य, जो कि इन नियमों के अधीन अर्हित है, सरकार के गृह विभाग में उपयुक्त पद या नियुक्ति के लिए, उस सशस्त्र बल या

अर्धसैनिक बल के कमाडिंग अधिकारी के माध्यम से, जहां मृत सशस्त्र बल के सदस्य ने अंतिम सेवा की हो, सरकार के गृह विभाग को प्रेषित कर सकेगा । गृह विभाग पात्रता का अवधारण करने के उपरान्त मामले को सरकार के सामान्य प्रशासनिक विभाग को भेज सकेगा ।"

13. 1994 के नियमों का नियम 2 नियमों को परिवार के इन सदस्यों पर लागू करने का उपबंध करता है – (i) कोई सरकारी कर्मचारी जिसकी मृत्यु कार्य पर होते हुए सेना संबंधी कार्रवाई को छोड़कर किसी अन्य कार्य के दौरान हुई हो (ii) कोई सरकारी कर्मचारी जिसकी मृत्यु सेना संबंधी कार्रवाई में हुई हो और सेवा संबंधी कार्रवाई में अंतर्वलित न हो ; और (iii) कोई सिविलियन, जिसकी मृत्यु सेना संबंधी कार्रवाई में हुई हो किन्तु सेना संबंधी कार्रवाई आदि में अंतर्वलित न हो ।

14. 1994 के नियमों का नियम 4 और 5 प्राधिकारियों को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त करता है ।

15. 1994 के नियम लोक पदों पर नियुक्ति करने के लिए सामान्य नियमों के अपवादस्वरूप बनाए गए हैं । किसी पद पर सार्वजनिक रूप से की जाने वाली नियुक्ति के सामान्य नियम से हटकर अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति किए जाने के विशेष प्रयोजन को सेवा में नियुक्ति की विधिक रीतियों में स्वीकार किया गया है । इस श्रेणी के सृजन का प्रयोजन, जो कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है, यह है कि मृत कर्मचारी और मृत सिविलियन या सैन्य अधिकारी के परिवार को भुखमरी से बचाया जाए ।

16. 1994 के नियमों में प्रयुक्त "सरकारी कर्मचारी" अभिव्यक्ति को समझकर और परिभाषित करके ही उक्त नियमों के अधीन प्रयोजनों को प्राप्त किया जा सकता है । 1994 के नियमों में भिन्न स्थितियां प्रकट होती हैं जोकि परिवार के सदस्य को अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए हकदार बना सकें अर्थात् ऐसे सरकारी कर्मचारी, जिनकी कार्य के दौरान मृत्यु हुई हो, ऐसे कर्मचारी जिनकी सेना संबंधी कार्रवाई में कार्य पर मृत्यु हुई है और एक ऐसे सिविलियन जिनकी मृत्यु सेना संबंधी कार्रवाई में हुई हो, किन्तु सैन्य क्रियाकलाप में अंतर्वलित न हो, 1994 के नियमों का उद्देश्य न केवल मृत कर्मचारी के परिवार के हितों

की अपितु मृत सिविलियन के हितों की भी रक्षा करना है । 1994 के नियमों में आने वाले "सरकारी कर्मचारी" पद को इस पृष्ठभूमि में समझा और परिभाषित किया जाना चाहिए । जहां नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने स्वयं नियमों में "सरकारी कर्मचारी" पद को परिभाषित करते हुए जो विशेष निष्कर्ष लिया है वहां उस पर पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने सचेतन रूप से 1994 के नियमों में "सरकारी कर्मचारी" अभिव्यक्ति को रखा है । यदि सरकार का आशय केवल स्थायी सरकारी कर्मचारी के परिवार को ही 1994 के नियमों का लाभ देना होता तो प्राधिकारी को नियमों में "सरकारी कर्मचारी" को तद्नुसार परिभाषित करने से कोई नहीं रोक सकता था । सरकारी कर्मचारी एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसे सरकार द्वारा सेवा प्राप्त करने के लिए नियुक्त किया जाता है । सरकारी कर्मचारी से जैसा कि 1994 के नियमों में दिया गया है, स्थायी सरकारी कर्मचारी, अस्थायी सरकारी कर्मचारी और तदर्थ सरकारी कर्मचारी अभिप्रेत है । इस निर्वचन को 1994 के नियमों के नियम 2 के खंड 3 से समर्थन मिलता है, जो किसी सिविलियन के परिवार के सदस्य की अनुकंपा आधार पर नियुक्ति पर विचार करने के लिए उपबंध करता है । जहां सरकार इसी सिद्धांत, तर्क और युक्तियुक्तता के आधार पर मृत सिविलियन के परिवार के सदस्य को अनुकंपा के आधार पर नियुक्त करना प्रस्थापित करती है वहां 1994 के नियमों में आने वाले "सरकारी कर्मचारी" पद में अस्थायी और तदर्थ कर्मचारी भी सम्मिलित होते हैं । अनुकंपा आधार पर नियुक्ति के इन विशेष नियमों के प्रयोजन को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब 1994 के नियमों में आने वाले "सरकारी कर्मचारी" पद का ऐसा ही निर्वचन किया जाए । इसी आधार पर अपीलार्थियों ने नसीर बेगम को नियुक्त किया था ।

17. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा निर्दिष्ट किए गए निर्णय अपीलार्थियों को कोई सहायता नहीं पहुंचाते क्योंकि इस मामले के तथ्य तथा दर्शाई गई विधिक स्थिति भिन्न है । **हरियाणा राज्य और अन्य (अपीलार्थी)** बनाम **रानी देवी और एक अन्य**[1] वाले मामले में शिक्षु केनाल पटवारी के परिवार के सदस्य की नियुक्ति के लिए निदेश जारी किया गया था । उक्त निर्णय के पैरा सं. 3 में यह वर्णित किया गया था कि राज्य सरकार ने एक

---

[1] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2445.

विनिश्चय किया था जो तारीख 9 मई, 1972 को अधिसूचित किया गया था, जिसमें यह कहा गया था कि हरियाणा सरकार के उन कर्मचारियों के आश्रितों को अनुग्रह राशि के भुगतान की स्कीम बनाई जाए जिनकी मृत्यु सेवा के दौरान हुई थी और नियम तदर्थ कर्मचारी को लागू नहीं हैं । इस दलील के आधार पर राज्य सरकार द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उक्त मामले में यह आधार लिया गया था कि अनुग्रह राशि के भुगतान या मृत सरकारी कर्मचारी के आश्रितों में से किसी एक को नियुक्ति देने के संबंध में यह स्कीम नैमित्तिक, तदर्थ कर्मचारियों या उन कर्मचारियों को जो कि मात्र शिक्षु हैं, लागू नहीं होती । इस तथ्य के आधार पर माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि उपरोक्त मामले में प्रत्यर्थी अनुकंपा के आधार पर विचार किए जाने या नियुक्त किए जाने के हकदार नहीं थे । **महाप्रबंधक, उत्तरांचल जल संस्थान**[1] वाले मामले में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी और बनाए गए नियमों के आधार पर कार्यवाही की गई थी और नियमों में सरकारी कर्मचारी को इस प्रकार परिभाषित किया गया था – (i) ऐसे नियोजन में स्थायी कर्मचारी; या (ii) अस्थायी होने पर भी ऐसे नियोजन में नियमित रूप से नियोजित कर्मचारी; या (iii) भले ही नियमित नहीं हों किन्तु ऐसे नियोजन में नियमित पद पर तीन वर्ष की सेवा पूर्ण कर ली हो । इन नियमों का नियम 3 यह उपबंध करता है कि ये नियम उत्तर प्रदेश राज्य लोक सेवाओं से संबंधित सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती पर लागू होंगे और उत्तर प्रदेश के क्रियाकलापों से संबंधित पदों को लागू होंगे । स्वतः नियमों में उपबंधित सरकारी सेवकों की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए अनुकंपा आधार पर की जाने वाली नियुक्तियां केवल ऐसे कर्मचारियों तक ही सीमित रखी गई थीं । उक्त मामले के तथ्य भी हमारे समक्ष के मामले से भिन्न हैं । **भावनगर विश्वविद्यालय** बनाम **पलिताना शुगर मिल्स (प्रा.) लि. और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 59 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "59. जैसा कि विदित है कि कोई विनिश्चय ऐसी नजीर होता है जिसके लिए यह विनिश्चित किया जाता है न कि इस तर्क के लिए कि उससे तर्कपूर्ण रूप से क्या निकाला जा सकता है । यह

---

[1] 2009 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5014.

[2] (2003) 2 एस. सी. सी. 111.

सुस्थापित है कि तथ्यों और अतिरिक्त तथ्यों में थोड़ा सा भी अन्तर किसी विनिश्चय के पूर्ववर्ती महत्व में अत्यधिक अन्तर ला सकता है ।"

18. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा निर्दिष्ट और अवलंब लिए गए **भावनगर विश्वविद्यालय**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय इस मामले को लागू नहीं होता है क्योंकि इस मामले के तथ्य तात्विक आधार पर उक्त मामले के तथ्यों से पूर्णतया भिन्न हैं । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा निर्दिष्ट दूसरा निर्णय जिसका उन्होंने अवलंब लिया है, यह उपबंध करता है कि यह विधि का यह स्थापित सन्नियम है कि किसी गलती करने और उसे दोहराने के आधार पर निदेश जारी नहीं किया जा सकता । विधि की इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का नकारात्मक लक्ष्य की प्राप्त के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता । इस मामले में अपीलार्थियों द्वारा की गई गलती से और उसे पुनः दोहराने के आधार पर कोई निदेश (अनुतोष) नहीं मांगा जा सकता ।

19. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी-रिट के याची को आक्षेपित निर्णय में उपबंधित अवधि में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावे पर विचार करने के लिए आबद्ध हैं ।

20. उपरोक्त कारणों के आधार पर हमें अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है । यह विफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

भ./मह.

---

[1] (2003) 2 एस. सी. सी. 111.

ओरिएंटल इंश्योरेन्स कम्पनी

बनाम

सरिशता कुमारी और अन्य

तारीख 29 दिसम्बर, 2012

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 140 – मोटर दुर्घटना दावा – अंतरिम प्रतिकर – इंश्योरेंस कंपनी द्वारा सुसंगत समय पर चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति न होने का अभिवाक् करना – अधिकरण को अंतरिम प्रतिकर की मंजूरी के आवेदन पर विचार करते समय दावा याचिका में उल्लिखित अन्तर्वस्तु, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, शव परीक्षण रिपोर्ट, पुलिस रिपोर्ट, मृत्यु प्रमाणपत्र/निःशक्तता प्रमाणपत्र पर ही विचार करना चाहिए न कि बीमाकर्ता को उपलब्ध अन्य प्रतिरक्षाओं पर ।

यह अपील, दावा याचिका जो कि सरिशता कुमारी और अन्य बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी और अन्य के शीर्षक से फाइल की गई थी, में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जम्मू द्वारा तारीख 10 मार्च, 2010 को पारित अंतरिम आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अधिकरण को अंतरिम प्रतिकर की मंजूरी के लिए आवेदन पर विचार करते समय दावा याचिका में उल्लिखित अंतर्वस्तु, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, शवपरीक्षण रिपोर्ट, पुलिस की रिपोर्ट, मृत्यु प्रमाणपत्र/निःशक्तता प्रमाणपत्र को विचार में लेना चाहिए और इसके पश्चात् मृत्यु की दशा में पचास हजार रुपए का अधिनिर्णय अथवा स्थायी निःशक्तता की दशा में पच्चीस हजार रुपए का अंतरिम अधिनिर्णय पारित करना चाहिए । इस प्रक्रम पर अधिकरण को अन्य ऐसी प्रतिरक्षाओं पर विचार नहीं करना चाहिए जो बीमाकर्ता को अधिनियम में उल्लिखित अन्य उपबंधों के निबंधनों में उपलब्ध हैं । ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों में विद्वान् अधिकरण ने ठीक ही आक्षेपित आदेश पारित किया है और ठीक ही बीमाकर्ता-अपीलार्थी के दायित्व को नियत किया है । तद्नुसार यह अपील संबंधित सिविल प्रकीर्ण आवेदनों सहित खारिज की जाती है । तथापि, इस अपील में ऊपर की गई कोई मताभिव्यक्ति विद्वान् अधिकरण के समक्ष मुख्य याचिका को लड़ने में

किसी भी प्रकार से अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं मानी जाएगी । कार्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह तारीख 10 मार्च, 2010 के आदेश में उल्लिखित शर्तों के निबंधनों में दावेदार-प्रत्यर्थियों का उचित रूप से सत्यापन करने और पहचान करने के पश्चात् उनके हक में अधिनिर्णीत अंतरिम धनराशि को निर्मुक्त करे । (पैरा 4, 7 और 8)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 797 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **सिनीता** ;	6
[2011]	2011 (II) एस. एल. जे. 623 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **नसीब चंद** ।	5

सिविल (अपीली) अधिकारिता : 2010 की सी. आई. एम. ए. सं. 432.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अमृत सरीन

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सुदेश शर्मा

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – यह अपील, दावा याचिका जो कि सरिशता कुमारी और अन्य बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी और अन्य के शीर्षक से फाइल की गई थी, में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जम्मू द्वारा तारीख 10 मार्च, 2010 को पारित उस अंतरिम आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा मोटर यान अधिनियम, 1988 (जिसे आगे संक्षेप 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 140 के निबंधनों में अंतरिम प्रतिकर की मंजूरी के लिए आवेदन को मंजूर करते हुए दावेदार-प्रत्यर्थियों के हक में 50,000/- रु. का अंतरिम अधिनिर्णय (जिसे आगे संक्षेप में 'आक्षेपित आदेश' कहा गया है) पारित किया गया है ।

2. अपीलार्थी-बीमाकर्ता द्वारा अपील के ज्ञापन में दिया गया आधार तथा अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील यह है कि दुर्घटना करने वाले यान के चालक के पास सुसंगत समय पर विधिमान्य चालक अनुज्ञप्ति नहीं थी इसलिए आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है । यहां मोटर यान अधिनियम की धारा 140 को उद्धृत करना उचित होगा :–

"140. **त्रुटि न होने के सिद्धांत पर कतिपय मामलों में प्रतिकर संदाय करने का दायित्व** –

(1) जहां मोटर यान या मोटर यानों के उपयोग में हुई दुर्घटना के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्ता हुई है वहां, यथास्थिति, यान का स्वामी या यानों के स्वामी ऐसी मृत्यु या निःशक्तता के बारे में प्रतिकर का संदाय इस धारा के उपबंधों के अनुसार संयुक्ततः और पृथक्तः करने के लिए दायी होंगे ।

(2) ऐसे प्रतिकर की रकम, जो किसी व्यक्ति की मृत्यु के बारे में उपधारा (1) के अधीन संदेय होगी, पचास हजार रुपए की नियत राशि होगी और किसी व्यक्ति की स्थायी निःशक्तता के बारे में उस उपधारा के अधीन संदेय प्रतिकर की रकम पच्चीस हजार रुपए की नियत राशि होगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए किसी दावे में दावेदार से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवाक् करे और सिद्ध करे वह मृत्यु या स्थायी निःशक्तता जिसके बारे में प्रतिकर का दावा किया गया है, संबंधित यान या यानों के स्वामी या स्वामियों के या किसी अन्य व्यक्ति के दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी ।

(4) उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए दावा, यथास्थिति ऐसे व्यक्ति के जिसकी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के बारे में दावा किया गया है, किसी दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण विफल नहीं होगा और ऐसी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के बारे में वसूलीय प्रतिकर की मात्रा ऐसी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के उत्तरदायित्व में ऐसे व्यक्ति के अंश के आधार पर कम नहीं की जाएगी ।

(5) किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति के संबंध में उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, जिसके लिए यान का स्वामी अनुतोष के रूप में प्रतिकर देने का दायी है, वह तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन प्रतिकर का संदाय करने का भी दायी होगा :

परंतु किसी अन्य विधि के अधीन दिए जाने वाले प्रतिकर की ऐसी रकम को इस धारा या धारा 163-क के अधीन संदेय प्रतिकर की रकम में घटा दिया जाएगा ।"

3. यह उपबंध यह स्पष्ट करता है कि दोष न होने के दायित्व के आधार पर किस प्रकार अंतरिम अधिनिर्णय देकर अंतरिम प्रतिकर मंजूर किया जाएगा ।

4. अधिकरण को अंतरिम प्रतिकर की मंजूरी के लिए आवेदन पर विचार करते समय दावा याचिका में उल्लिखित अंतर्वस्तु, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, शवपरीक्षण रिपोर्ट, पुलिस की रिपोर्ट, मृत्यु प्रमाणपत्र/निःशक्तता प्रमाणपत्र को विचार में लेना चाहिए और इसके पश्चात् मृत्यु की दशा में पचास हजार रुपए का अधिनिर्णय अथवा स्थायी निःशक्तता की दशा में पच्चीस हजार रुपए का अंतरिम अधिनिर्णय पारित करना चाहिए । इस प्रक्रम पर अधिकरण को अन्य ऐसी प्रतिरक्षाओं पर विचार नहीं करना चाहिए जो बीमाकर्ता को अधिनियम में उल्लिखित अन्य उपबंधों के निबंधनों में उपलब्ध हैं ।

5. मेरे उक्त मत का इस न्यायालय द्वारा **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **नसीब चंद**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय से समर्थन होता है । यहां उक्त निर्णय का पैरा 3, 6, 18 और 19 उद्धृत करना उचित होगा :–

> "3. मामले का सार यह है कि क्या अपीलार्थी बीमाकर्ता द्वारा अधिनियम की धारा 149 के निबंधनों में पेश की गई प्रतिरक्षा या लिया गया आधार दोष न होने के दायित्व पर अंतरिम अधिनिर्णय की मंजूरी के लिए अधिनियम की धारा 140 के अधीन आवेदन के निर्धारण के समय उठाया जा सकता है या लागू किया जा सकता है ।
>
> 6. अधिनियम की धारा 140 के अधीन दावों को इस आधार पर विफल नहीं किया जा सकता कि स्वामी ने शर्तों का उल्लंघन किया है या बीमाकर्ता को अधिनियम की धारा 149 के निबंधनों में प्रतिरक्षा प्राप्त है जो साक्ष्य पेश करने के पश्चात् अवधारण के लिए अपेक्षित है ।
>
> 18. अधिनियम की धारा 140, 141, 158(6) और 166(4) के साथ पठित नियमों (पूर्वोक्त) के निबंधनों में दावा अधिकरण से यह अपेक्षित है कि वह निम्नलिखित विवाद्यकों के संबंध में अधिनियम की धारा 140 के अधीन याचिका का निर्धारण करते समय अपना यह समाधान करे –
>
> (i) दुर्घटना मोटर यान के उपयोग से हुई है ;

---

[1] 2011 (II) एस. एल. जे. 623.

(ii) उक्त घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है या स्थायी निःशक्तता हुई है ;

(iii) दावा दुर्घटना में अंतर्वलित मोटर यान के स्वामी या बीमाकर्ता के विरुद्ध किया गया है ।

19. दावा अधिकरण ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और निःशक्तता प्रमाणपत्र की परीक्षा करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 ने ऐसे सभी संघटक प्रथमदृष्ट्या साबित कर दिए हैं जो दोष न होने के दायित्व के मामले में अधिनियम की धारा 140 के अधीन याचिका के निर्धारण के लिए आवश्यक हैं । अपीलार्थी-बीमाकर्ता ने बीमा करने के तथ्य से इनकार नहीं किया है । अतः यह स्वीकृत है कि यान सुसंगत समय पर बीमाकृत था । अधिकरण ने नियमों (पूर्वोक्त) के साथ पठित अधिनियम की धारा 140 और 141 में उल्लिखित प्रक्रिया का पूर्ण रूप से अनुसरण किया है ।"

6. उच्चतम न्यायालय ने भी **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **सिनीता**[1] वाले मामले में यही सिद्धांत अधिकथित किया है ।

7. ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों में विद्वान् अधिकरण ने ठीक ही आक्षेपित आदेश पारित किया है और ठीक ही बीमाकर्ता-अपीलार्थी के दायित्व को नियत किया है । तद्नुसार यह अपील संबंधित सिविल प्रकीर्ण आवेदनों सहित खारिज की जाती है । तथापि, इस अपील में ऊपर की गई कोई मताभिव्यक्ति विद्वान् अधिकरण के समक्ष मुख्य याचिका को लड़ने में किसी भी प्रकार से अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं मानी जाएगी ।

8. कार्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह तारीख 10 मार्च, 2010 के आदेश में उल्लिखित शर्तों के निबंधनों में दावेदार-प्रत्यर्थियों का उचित रूप से सत्यापन करने और पहचान करने के पश्चात् उनके हक में अधिनिर्णीत अंतरिम धनराशि को निर्मुक्त करे ।

9. कार्यालय को यह भी आदेश दिया जाता है कि वह इस आदेश की प्रति सूचना के लिए भेजे ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 797.

जीव राज

बनाम

ओम प्रकाश

तारीख 6 जुलाई, 2012

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 और आदेश 41, नियम 32 [सपठित राजस्थान परिसर (किराया एवं बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13] – द्वितीय अपील – दुकान से बेदखली – युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता – मकान मालिक अपने हित का सर्वोत्तम निर्णायक – यदि बेदखली के वाद में मकान मालिक अभिलेख पर यह साबित कर देता है कि विवादित दुकान की उसे युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता है तो उसका वाद डिक्री कर दिया जाएगा बावजूद इसके कि किराएदार ने मकान मालिक को अन्य वैकल्पिक आवास का सुझाव दिया है क्योंकि मकान मालिक ही अपने हित का सर्वोत्तम निर्णायक होता है ।

वर्तमान मामले में, मकान मालिक ओम प्रकाश द्वारा स्थापित बेदखली के लिए वाद यह था कि तारीख 22 नवम्बर, 1986 को उसके पिता जय नारायण की मृत्यु के पश्चात् तारीख 22 जनवरी, 1987 को एक मौखिक कुटुम्ब विभाजन हुआ जिसके अधीन वाद दुकान उसके पक्ष में आया और इस विभाजन के समय पर वह अपने भाई के साथ एक अन्य दुकान मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स में दर्जी के रूप में कार्य कर रहा था किन्तु विभाजन होने पर उसके भाई ने उसे उक्त दुकान से निकाल दिया और इसलिए वह बेरोजगार हो गया और परिणामतः उसे दर्जी के रूप में स्वयं अपना कारबार आरम्भ करने के लिए वाद दुकान की आवश्यकता पड़ी । प्रतिवादी-किराएदार जीव राज भी वाद दुकान में मैसर्स अजय टेलर्स के नाम से दर्जी की दुकान चला रहा था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने बेदखली के लिए युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता का कोई आधार नहीं पाया जैसा कि स्थापित किया गया था और परिणामतः तारीख 22 अप्रैल, 2009 को बेदखली का वाद खारिज कर दिया, वादी-मकान मालिक ने प्रथम अपील प्रस्तुत की जिसे विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 2, जोधपुर मेट्रोपोलिटन

के प्रथम अपील न्यायालय द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटते हुए मंजूर कर लिया गया था । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता मकान मालिक द्वारा सिद्ध कर दी गई है और परिणामतः वह बेदखली की डिक्री पाने का हकदार है । तद्नुसार, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा डिक्री पारित की गई और प्रतिवादी-किराएदार को यह निर्देश दिया गया कि वह दो माह की अवधि के भीतर मकान मालिक को वाद दुकान का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा सौंप दे और अन्तःकालीन लाभ अर्थात् 200/- रुपए प्रतिमाह का संदाय करें । इससे व्यथित होकर वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वाद परिसरों की बेदखली के लिए मकान मालिक की सद्भाविक और युक्तियुक्त आवश्यकता के बारे में निष्कर्ष आवश्यक रूप से और सामान्यतः तथ्य का निष्कर्ष हैं और मकान मालिक की ऐसी सद्भाविक आवश्यकता के बारे में न्यायालय का ही समाधान होता है । यह सत्य है कि मात्र मकान मालिक की सनक और इच्छा को ही ऐसी सद्भावना की कोटि में नहीं कहा जा सकता है और किराएदार, किराया नियंत्रण विधि के अधीन संरक्षण पाने का हकदार होता है और इसलिए, ईप्सित बेदखली, ऐसी बेदखली के लिए मकान मालिक की युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता सिद्ध होनी चाहिए । उसी समय, यह भी समान रूप से जानकारी होना आवश्यक है कि किराएदार-मकान मालिक को यह निर्देश नहीं दे सकता है कि कैसे उसे वाद परिसरों का समायोजन करना चाहिए और यदि ऐसी सद्भाविक आवश्यकता मकान मालिक द्वारा साक्ष्य के आधार पर न्यायालय के समक्ष समुचित तौर पर सिद्ध कर दी जाती है तो सामान्यतः हक, बेदखली की डिक्री के बारे में प्रश्न मंजूर कर लिए जाते हैं । वर्तमान मामले में, चूंकि मकान मालिक और किराएदार के संबंध को प्रतिवादी-किराएदार द्वारा कभी भी विवादित नहीं किया गया है इसलिए अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल की वर्ष 1987 में कुटुम्ब विभाजन के बारे में दलील दिखावा और यह भी कि विभाजन के पश्चात् मकान मालिक ओम प्रकाश या उसके भाई कैलाश द्वारा जारी किराए की रसीदों का वस्तुतः कोई परिणाम और उपयोगिता नहीं है । मकान मालिक ओम प्रकाश की सद्भाविक आवश्यकता जो स्वतंत्र रूप से स्वयं अपना दर्जी का कारबार करना चाहता था, स्वीकृततः वह मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स के रूप में ज्ञात दुकान में अपने भाई के साथ दर्जी का कार्य कर रहा था और ऐसी

आवश्यकता सुस्पष्टतः उसके पिता की मृत्यु और वर्ष 1987 में विभाजन के पश्चात् उद्भूत हुई थी । तथापि, यदि इस दलील की उपधारणा कर ली जाती है कि वादी-मकान मालिक ओम प्रकाश पश्चात्वर्ती वर्षों में भी मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स के रूप में ज्ञात दुकान में अपने भाई के साथ दर्जी के रूप में कार्य कर रहा था तो भी स्वयं अपनी दुकान की बेदखली के लिए उसकी सद्भाविक आवश्यकता जो वर्ष 1987 में विभाजन के उपरान्त उसके हिस्से में आई थी, को समाप्त नहीं कहा जा सकता है । दूसरी ओर, ऐसी आवश्यकता समय बीतने के साथ बढ़ती गई और उसके अनियोजन या उसकी स्वयं की दुकान उपलब्ध होने के बावजूद भी अनियोजन का सामना करने से इसकी आवश्यकता की प्रबलता में वृद्धि हो गई किन्तु, वह दुकान वादी के कब्जे में थी । सुस्पष्टतः, किराएदार यह निदेश नहीं दे सकता था न ही न्यायालय के लिए यह निर्धारित करना संभाव्य था कि उसके आवासीय गृह के प्रथम तल के कमरे में दर्जी का कार्य करने का प्रबंध करने के लिए मुख्य बाजार सड़क की ओर भूमि तल पर वाद दुकान में प्रति-स्थापित करना बेहतर था । सुस्पष्टतः, किराएदार-प्रतिवादी इस संबंध में निबंधनों के प्रति निदेश नहीं कर सकता था । जहां तक, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 31 के निबंधनों में प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय का प्ररूप होने का संबंध है, इस न्यायालय का यह पूर्णतया समाधान है कि प्रथम अपील न्यायालय ने वर्तमान मामले में, ऐसी बेदखली के लिए मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता के बारे में विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने के लिए तर्कपूर्ण और ठोस कारण दिया है । दूसरी ओर, विद्वान् विचारण न्यायालय ने घिसे-पिटे निष्कर्ष निकाले हैं और बेदखली के वाद को मात्र इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि विभाजन की तारीखों अर्थात् तारीख 22 जनवरी, 1987 अथवा 22 नवम्बर, 1987 में भिन्नता है और यह कि क्या किराया रसीदें मकान मालिक के भाई कैलाश द्वारा या स्वयं मकान मालिक द्वारा वर्ष 1987 के पश्चात् जारी की गई थीं । यह प्रश्न मात्र तभी सुसंगत हो सकते थे यदि मकान मालिक के हक को किराएदार द्वारा इनकार किया जाता अथवा मकान मालिक और किराएदार के संबंध को इनकार किया जाता और उन्हें वादी-मकान मालिक द्वारा सिद्ध किया जाना अपेक्षित हो सकता था उस समय जब यदि हक को किराएदार द्वारा इस प्रकार गलत तौर पर इनकार किया जाता, तो यह न्यायालय द्वारा बेदखली की डिक्री मंजूर करने के लिए आधार हो सकता था । वर्तमान मामले में, ऐसा कुछ नहीं है और ऐसे संबंध को प्रतिवादी-किराएदार द्वारा स्वीकार किया गया है इसलिए,

यद्यपि मकान मालिक ओम प्रकाश की सद्भाविक आवश्यकता वर्ष 1987 में विभाजन के कारण उद्भूत हुई फिर भी उसे ऐसे कारकों द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता है । वे सुस्पष्टतः, ऐसे पृष्ठभूमि कारक थे जिन पर मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता पर बेदखली के प्रश्न का विनिश्चय किया जाना अपेक्षित नहीं था । (पैरा 13, 14 और 15)

मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता वाद दुकान में स्वतंत्र रूप से स्वयं अपना कारबार करना था और उस प्रयोजन के लिए 13 वर्षों के इन्तजार के पश्चात् यदि उसने वर्ष 2000 में बेदखली वाद फाइल किया है तो न्यायालय यह समझने में असमर्थ है कि किस प्रकार विद्वान् विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच सका था कि सद्भाविक आवश्यकता मौजूद नहीं थी, क्योंकि वह मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स के नाम से एक दुकान में अपने भाई के साथ कार्य कर रहा था । उससे कुछ और अधिक करने की प्रत्याशा नहीं थी और यदि उसने अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए अपने भाई के साथ कुछ कार्य कर लिया अथवा उसके पास उपलब्ध प्रथम तल के कमरे में स्वयं अपना कार्य कर रहा था तो यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि उसकी आवश्यकता पूरी हो गई थी इसलिए वाद-दुकान की बेदखली का आदेश पारित नहीं करना चाहिए । वादी-मकान मालिक के कारबार की आवश्यकता समुचित तौर पर मुख्य सड़क की ओर प्रथम तल की दुकान अर्थात् वाद-दुकान में ही पूरा होना संभाव्य था और न कि उस तरीके से जैसा कि पूर्वोक्त तरीके में प्रतिवादी-किराएदार के विद्वान् काउंसेल द्वारा दलील दी गई है । वर्ष 1993 में एक अन्य दुकान को मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को देने के बारे में भी दी गई दलील से वाद-दुकान के लिए मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता समाप्त नहीं होती है । उक्त दुकान प्रकटतः मकान मालिक ओम प्रकाश के अनन्य स्वामित्व और कब्जे में नहीं थी और उसे सभी तीनों भाइयों द्वारा वर्ष 1993 में मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को किराए पर दी गई थी और इसलिए, पश्चात्वर्ती वर्ष 2000 में फाइल वाद में, प्रतिवादी-किराएदार द्वारा यह दलील नहीं दी जा सकती है कि मकान मालिक को उक्त दुकान को किराए पर नहीं देते हुए अपनी आवश्यकता पूरी कर लेनी चाहिए थी जिसे उसके कुटुम्ब ने वर्ष 1993 में मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को किराए पर दे दी थी । क्या तीनों भाइयों जिनका उक्त दुकान पर संयुक्त नियंत्रण था और संयुक्ततः उक्त दुकान को मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को किराए पर देने के लिए सहमत हुए थे एक ऐसा प्रश्न है जो पश्चात्वर्ती वर्ष 2000 में फाइल में न तो

सुसंगत है न ही जैसा कि प्रथम अपील न्यायालय ने इस संबंध में सही ही सबूत के भार को अभिनिर्धारित किया था, से प्रतिवादी-किराएदार उन्मोचित होता है । इस न्यायालय की राय में, यदि प्रथम अपील न्यायालय ने अपील के अधीन निर्णय के पैरा 13 और 14 में संयुक्ततः विवाद्यक सं. 1, 3 और 4 पर विनिश्चय क्रमवार विवाद्यक की तरह साक्ष्य के आधार पर अपना निष्कर्ष निकालते हुए किया है तो विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 31 की अपेक्षाओं का पर्याप्त और पूर्ण अनुपालन किया है और यह विवादित नहीं रह जाता है कि अपील न्यायालय की शक्तियां निःसंदेह विचारण न्यायालय से व्यापक और सह-विस्तारी हैं और उसे उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अपने कारणों को देते हुए, विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को भी उलटने का भी अधिकार है जैसा कि उन्होंने वर्तमान मामले में किया है । इस न्यायालय की राय में, विद्वान् अपील न्यायालय ने मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता के बारे में तर्कपूर्ण कारणों को देते हुए और सम्पूर्ण साक्ष्यों पर सम्यक् रूप से चर्चा करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसी सद्भाविक आवश्यकता मौजूद थी और इसलिए बेदखली का आदेश पारित किया । विद्वान् अपील न्यायालय ने निर्णय के पैरा 15, 18 और 19 में वैकल्पिक आवास, भागिक बेदखली और तुलनात्मक कठिनाई से संबंधित विवाद्यकों पर भी चर्चा की है और मकान मालिक के पक्ष में निष्कर्ष निकाला और इसलिए, विद्वान् विचारण न्यायालय के आदेश को उलटते हुए बेदखली का निदेश दिया । न्यायालय के समक्ष उद्धृत निर्णयों में विधि की सभी प्रतिपादनाओं का संयुक्त परिशीलन करने पर, इस न्यायालय की यह राय है कि वर्तमान मामले में प्रमाणिकताओं का भार मजबूती तौर पर प्रत्यर्थी मकान मालिक के पक्ष में जाता है और प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के उन निष्कर्षों जो तर्कपूर्ण कारणों पर आधारित नहीं था, को उलटते हुए बेदखली का आदेश सही और न्यायोचित तरीके से पारित किया है और इस न्यायालय की राय में, इस न्यायालय द्वारा विचार करने योग्य कोई अन्य विधि के सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होते हैं । (पैरा 16, 17, 18, 19 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	2012 (1) सी. सी. सी. 285 = 2011 (3) आर. एल. डब्ल्यू. 2529 : **ठाकुर दास** बनाम **नाथू मल** ;	26

[2011]	2011 डी. एन. जे. 219 (एस. सी.) : **परिमल** बनाम **वीना** उर्फ **भारती** ;	21
[2011]	2011 (1) डब्ल्यू. एल. सी. 475 (एस. सी.) : **एच. सिद्दीकी (अब मृतक** मार्फत **उनके विधिक प्रतिनिधिगण)** बनाम **ए. रामालिंगम** ;	21
[2010]	2010 (1) डब्ल्यू. एल. सी. 742 (एस. सी.) सिविल : **एस. आर. श्रीनिवास और अन्य** बनाम **एस. पद्मावथम्मा** ;	22
[2010]	2010 डी. एन. जे. 545 (एस. सी.) : **भारत मठ और एक अन्य** बनाम **आर. विजय रंगनाथन और अन्य** ;	22
[2009]	(2009) 3 एस. सी. सी. 287 : **नरेन्द्र गोपाल विद्यार्थी** बनाम **रजत विद्यार्थी** ;	26
[2008]	(2008) 9 एस. सी. सी. 699 : **अजीत सिंह और एक अन्य** बनाम **जीत राम और एक अन्य** ;	26
[2008]	2008 (2) डब्ल्यू. एल. सी. 64 (एस. सी.) = 2008 (4) आर. एल. डब्ल्यू. 3352 (एस. सी.) : **कश्मीर सिंह** बनाम **हरनाम सिंह और एक अन्य** ;	22
[2007]	(2007) 1 एस. सी. सी. 546 : **गुरुदेव कौर और अन्य** बनाम **काकी और अन्य** ;	27
[2006]	(2006) 3 एस. सी. सी. 224 : **जी. अमलारपवम और अन्य** बनाम **आर. सी. डाईओसेज आफ मदुरई और अन्य** ;	21
[2005]	2005 (1) डी. एन. जे. 480 (राजस्थान) : **हीरा लाल** बनाम **मंदिर श्री ठाकुर जी संगारिया और एक अन्य** ;	23
[2004]	2004 (1) डब्ल्यू. एल. सी. 319 (एस. सी.) : **कृष्ण मोहन कुल** उर्फ **नानी चरण कुल और एक अन्य** बनाम **प्रतिमा मार्ती और अन्य** ;	22

[2004]	2004 (3) आर. एल. डब्ल्यू. 1828 (राजस्थान) : **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **पार्वती देवी और अन्य** ;	28
[2003]	2003 (1) सी. सी. सी. 145 (एस. सी.) : **बोन्दर सिंह और अन्य** बनाम **निहाल सिंह और अन्य** ;	22
[2001]	2001 (2) आर. सी. आर. 169 : **एन. आर. नारायणस्वामी** बनाम **डी. फ्रांसिस जगन** ;	24
[2001]	2001 (2) आर. सी. आर. 272 : **सदानन्दन** बनाम **प्रदीपन** ;	24
[2001]	(2001) 8 एस. सी. सी. 561 : **सिदालिंगम्मा और एक अन्य** बनाम **ममता शिनाय** ;	25
[1999]	1999 (2) आर. सी. जे. 388 (एस. सी.) : **शिव स्वरूप गुप्ता** बनाम **डा. महेश चन्द गुप्ता** ;	23
[1999]	1999 (4) सी. सी. सी. 128 (एस. सी.) : **शिवासुब्रमणियम और अन्य** बनाम **काशीनाथ पुजारी और अन्य** ;	23
[1997]	1997 (2) आर. एल. डब्ल्यू. 774 (राजस्थान) : **बाबू लाल** बनाम **लाडू राम और अन्य** ;	21
[1997]	1997 (2) आर. एल. डब्ल्यू. 810 (राजस्थान) : **खेतू लाल** बनाम **नरसिंह दास और अन्य** ;	21
[1997]	ए. आई. आर. 1997 पटना 67 : **श्रीमती सोना देवी** बनाम **नगीना सिंह और अन्य** ;	22
[1996]	ए. आई. आर. 1996 पटना 156 : **बीबी रियाजान खातून और अन्य** बनाम **सरदूल आलम और अन्य** ;	22
[1988]	ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 365 : **गोविन्द** बनाम **डा. जीत सिंह** ;	23

[1987] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 2055 :
दीपक बनर्जी बनाम **श्रीमती लीलावती चक्रवर्ती** ; 22

[1987] 1987 (1) आर. एल. आर. 88 = 1987 आर. एल. डब्ल्यू. 555 :
भागीरथ बनाम **राम प्रसाद और एक अन्य** ; 23

एस. बी. सिविल द्वितीय अपील सं. 203/2010-2012 (1) आर. एल. डब्ल्यू. 360 :
ओम प्रकाश भाटी बनाम **हर कन्वर के विधिक प्रतिनिधिगण** । 29

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की खंड न्यायपीठ सिविल द्वितीय अपील सं. 391.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी-प्रतिवादी की ओर से श्री जे. आर. पटेल

प्रत्यर्थी-वादी की ओर से श्री आर. के. थान्वी जिनकी सहायता श्री नरेन्द्र थान्वी ने की

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – प्रतिवादी-किराएदार ने यह द्वितीय अपील, प्रथम अपील न्यायालय, अपर जिला न्यायाधीश सं. 2, जोधपुर, मेट्रोपोलिटन द्वारा सिविल अपील सं. 23/2009 ओम प्रकाश बनाम जीव राज तारीख 23 मई, 2011 में पारित बेदखली के निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर फाइल की है, जिसके द्वारा उन्होंने विचारण न्यायालय के बेदखली वाद सं. 177/2000, ओम प्रकाश बनाम जीव राज, तारीख 22 अप्रैल, 2009 में पारित निर्णय और डिक्री को उलटते हुए खारिज कर दिया था ।

2. यह बेदखली की डिक्री, प्रथम बी रोड, सरदारपुरा, जोधपुर के प्रमुख वाणिज्यिक क्षेत्र में स्थित 9 x 12 फीट में उसकी दुकान के संबंध में मकान मालिक ओम प्रकाश को युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर पारित की गई है ।

3. मकान मालिक ओम प्रकाश द्वारा स्थापित बेदखली के लिए वाद यह था कि तारीख 22 नवम्बर, 1986 को उसके पिता जय नारायण की मृत्यु के पश्चात् तारीख 22 जनवरी, 1987 को एक मौखिक कुटुम्ब

विभाजन हुआ जिसके अधीन वाद दुकान उसके पक्ष में आया और इस विभाजन के समय पर वह अपने भाई के साथ एक अन्य दुकान मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स में दर्जी के रूप में कार्य कर रहा था किन्तु विभाजन होने पर उसके भाई ने उसे उक्त दुकान से निकाल दिया और इसलिए वह बेरोजगार हो गया और परिणामतः उसे दर्जी के रूप में स्वयं अपना कारबार आरम्भ करने के लिए वाद दुकान की आवश्यकता पड़ी ।

4. प्रतिवादी-किराएदार जीव राज भी वाद दुकान में मैसर्स अजय टेलर्स के नाम से दर्जी की दुकान चला रहा था ।

5. विद्वान् विचारण न्यायालय ने बेदखली के लिए युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता का कोई आधार नहीं पाया जैसा कि स्थापित किया गया था और परिणामतः तारीख 22 अप्रैल, 2009 को बेदखली का वाद खारिज कर दिया, वादी-मकान मालिक ने प्रथम अपील प्रस्तुत की जिसे विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 2, जोधपुर मेट्रोपोलिटन के प्रथम अपील न्यायालय द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटते हुए मंजूर कर लिया गया था । विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता मकान मालिक द्वारा सिद्ध कर दी गई है और परिणामतः वह बेदखली की डिक्री पाने का हकदार है । तद्नुसार, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा डिक्री पारित की गई और प्रतिवादी-किराएदार को यह निर्देश दिया गया कि वह दो माह की अवधि के भीतर मकान मालिक को वाद दुकान का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा सौंप दे और अन्तःकालीन लाभ अर्थात् 200/- रुपए प्रतिमाह का संदाय करें ।

6. प्रतिवादी-किराएदार के विद्वान् काउंसेल श्री जे. आर. पटेल ने यह जोरदार तर्क दिया कि विद्वान् अपील न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 31 के आज्ञापक अपेक्षाओं का अवधारण करने के लिए मुद्दों को सूत्रबद्ध किए बिना विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलट दिया है । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि मकान मालिक ओम प्रकाश की सद्भाविक आवश्यकता सिद्ध नहीं हुई है और विद्वान् विचारण न्यायालय ने मकान मालिक का वाद सही ही खारिज किया था । मकान मालिक ओम प्रकाश अपने भाई के साथ विभाजन के पश्चात् भी उसी दुकान में दर्जी के रूप में वस्तुतः कार्य करता रहा जिसमें वे दोनों मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स के नाम से कार्य कर रहे थे और इसलिए, मकान मालिक ओम प्रकाश किसी भी प्रकार से बेरोजगार नहीं था और चूंकि अपनी प्रतिपरीक्षा में मकान मालिक द्वारा भी इसी प्रकार की स्वीकृति की

गई है, इसलिए, अपील न्यायालय द्वारा बेदखली की डिक्री पारित नहीं की जा सकती थी । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि वर्ष 1993 में वादी को एक वैकल्पिक आवास भी उपलब्ध था जिसे उसने मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र के रूप में ज्ञात दुकान के लिए एक अन्य किराएदार को किराए पर दे दिया था और मकान मालिक के पास उपलब्ध ऐसी वैकल्पिक आवास की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए, वह वर्ष 2000 में फाइल वर्तमान वाद में वाद दुकान के लिए सद्भाविक आवश्यकता का दावा नहीं कर सकता है ।

7. विद्वान् काउंसेल श्री जे. आर. पटेल ने प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय को संक्षिप्त, विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटने के लिए तर्क रहित कारण आदि के आधार पर आक्षेपित करते हुए, विभिन्न निर्णयज विधियों का अवलंब लेते हुए यह निवेदन किया कि विद्वान् अपील न्यायालय विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटने के लिए कोई भी कारण समनुदेशित करने में असफल रहा है और मात्र मकान मालिक की इच्छा या सनक को ही बेदखली के लिए मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता नहीं कहा जा सकता है और परिणामतः, वर्तमान द्वितीय अपील में प्रथम अपील न्यायालय की बेदखली की डिक्री उलटे जाने योग्य है और इस न्यायालय के समक्ष अवधारण के लिए वर्तमान द्वितीय अपील में सारवान् विधि के प्रश्न उद्भूत होते हैं ।

8. दूसरी ओर, ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री आर. के. थान्वी जिनकी सहायता श्री नरेन्द्र थान्वी ने की, ने प्रतिवादी-किराएदार के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई सभी दलीलों का जोरदार तरीके से विरोध किया और यह निवेदन किया कि अपील न्यायालय की शक्तियां, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन सह-विस्तारित और अत्यधिक व्यापक हैं और वर्तमान मामले में प्रथम अपील न्यायालय ने सही ही बेदखली की डिक्री मंजूर की है । उन्होंने यह तर्क दिया कि चूंकि हक का प्रश्न 1950 के किराया नियंत्रण विधि के अधीन किराएदारी मामलों में सुसंगत नहीं है तथा मकान मालिक और किराएदार के बीच संबंध भी विवादित नहीं हैं और प्रतिवादी-किराएदार द्वारा वर्ष 1987 में कुटुम्ब विभाजन के बारे में प्रतिवादी-किराएदार के निवेदन से इनकार करना और उसके पश्चात् वर्ष 2000 में बेदखली के लिए वाद फाइल करना सुसंगत नहीं है और ऐसे वाद को वर्जित या विलम्बित नहीं कहा जा सकता है ।

9. प्रतिवादी-किराएदार के विद्वान् काउंसेल की इस दलील का विरोध करते हुए कि वैकल्पिक आवास, जिसे उसने वर्ष 1993 में मैसर्स दीप

कला साड़ी केन्द्र को किराए पर दे दिया था, श्री आर. के. थान्वी ने यह निवेदन किया कि यह दुकान वर्ष 1993 में सभी तीनों भाइयों जिसमें वादी-मकान मालिक सम्मिलित है, द्वारा संयुक्त रूप से उक्त किराएदार मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को दी गई थी और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि बेदखली की सद्भाविक आवश्यकता ऐसे वैकल्पिक आवास से पूरी हो सकती थी । उन्होंने यह निवेदन किया कि मकान मालिक ओम प्रकाश ने अपने दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपने आवासीय गृह के प्रथम तल पर दर्जी का कार्य कर रहा है और विभिन्न अन्य दुकानों से दर्जी का कार्य करने के लिए आर्डर लेता है और उसे समुचित तरीके से अपना कारबार करने के लिए बाजार की मुख्य सड़क की ओर भूमि तल पर दुकान की आवश्यकता है । व्यवसाय जिसमें वह वर्ष 1987 से 2000 तक पिछले 13 वर्षों से अच्छी तरह से कार्य कर रहा था, वह प्रायः बेरोजगार ही रहा । श्री थान्वी ने यह तर्क दिया कि इस संबंध में, सुस्थिर विधिक प्रतिपादना यह है कि मकान मालिक ही अपनी आवश्यकताओं को बेहतर तरीके से देख सकता है और इस संबंध में किराएदार यह नहीं बता सकता है कि मकान मालिक को मात्र अपने मकान के प्रथम तल में ही दर्जी का कारबार करना चाहिए ।

10. उन्होंने यह भी निवेदन किया कि यदि प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय में, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 31 का सारवान् अनुपालन किया जाए तो अवधारण के लिए पृथक् मुद्दों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है और प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय जिसमें विचारण न्यायालय के निर्णय को उलट दिया गया है, को भी मात्र इस आधार पर दूषित नहीं कहा जा सकता है और इसलिए, उसने यह निवेदन किया कि प्रथम अपील न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और बेदखली डिक्री में कोई कमी नहीं है और इस प्रक्रम पर प्रतिवादी-किराएदार की वर्तमान द्वितीय अपील खारिज करने की प्रार्थना की है ।

11. दोनों विद्वान् काउंसेल स्वयं ही स्वीकृति के इस प्रक्रम पर अपील का अंतिम निपटारा करने के लिए सहमत हैं और तद्नुसार, एक सीमा तक तर्क सुने गए और न्यायालय के समक्ष उद्धृत निर्णयों के अलावा अभिलेखों का भी परिशीलन किया गया ।

12. इस न्यायालय की सुविचारित राय में, वर्तमान द्वितीय अपील में कोई सारवान् विधि का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है और यह खारिज किए जाने योग्य है । कारण इस प्रकार हैं ।

13. वाद परिसरों की बेदखली के लिए मकान मालिक की सद्भाविक और युक्तियुक्त आवश्यकता के बारे में निष्कर्ष आवश्यक रूप से और सामान्यतः तथ्य का निष्कर्ष हैं और मकान मालिक की ऐसी सद्भाविक आवश्यकता के बारे में न्यायालय का ही समाधान होता है । यह सत्य है कि मात्र मकान मालिक की सनक और इच्छा को ही ऐसी सद्भावना की कोटि में नहीं कहा जा सकता है और किराएदार, किराया नियंत्रण विधि के अधीन संरक्षण पाने का हकदार होता है और इसलिए, ईप्सित बेदखली, ऐसी बेदखली के लिए मकान मालिक की युक्तियुक्त और सद्भाविक आवश्यकता सिद्ध होनी चाहिए । उसी समय, यह भी समान रूप से जानकारी होना आवश्यक है कि किराएदार-मकान मालिक को यह निर्देश नहीं दे सकता है कि कैसे उसे वाद परिसरों का समायोजन करना चाहिए और यदि ऐसी सद्भाविक आवश्यकता मकान मालिक द्वारा साक्ष्य के आधार पर न्यायालय के समक्ष समुचित तौर पर सिद्ध कर दी जाती है तो सामान्यतः हक, बेदखली की डिक्री के बारे में प्रश्न मंजूर कर लिए जाते हैं ।

14. वर्तमान मामले में, चूंकि मकान मालिक और किराएदार के संबंध को प्रतिवादी-किराएदार द्वारा कभी भी विवादित नहीं किया गया है इसलिए अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल की वर्ष 1987 में कुटुम्ब विभाजन के बारे में दलील दिखावा और यह भी कि विभाजन के पश्चात् मकान मालिक ओम प्रकाश या उसके भाई कैलाश द्वारा जारी किराए की रसीदों का वस्तुतः कोई परिणाम और उपयोगिता नहीं है । मकान मालिक ओम प्रकाश की सद्भाविक आवश्यकता जो स्वतंत्र रूप से स्वयं अपना दर्जी का कारबार करना चाहता था, स्वीकृततः वह मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स के रूप में ज्ञात दुकान में अपने भाई के साथ दर्जी का कार्य कर रहा था और ऐसी आवश्यकता सुस्पष्टतः उसके पिता की मृत्यु और वर्ष 1987 में विभाजन के पश्चात् उद्भूत हुई थी । तथापि, यदि इस दलील की उपधारणा कर ली जाती है कि वादी-मकान मालिक ओम प्रकाश पश्चात्वर्ती वर्षों में भी मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स के रूप में ज्ञात दुकान में अपने भाई के साथ दर्जी के रूप में कार्य कर रहा था तो भी स्वयं अपनी दुकान की बेदखली के लिए उसकी सद्भाविक आवश्यकता जो वर्ष 1987 में विभाजन के उपरान्त उसके हिस्से में आई थी, को समाप्त नहीं कहा जा सकता है । दूसरी ओर, ऐसी आवश्यकता समय बीतने के साथ बढ़ती गई और उसके अनियोजन या उसकी स्वयं की दुकान उपलब्ध होने के बावजूद भी अनियोजन का सामना करने से इसकी आवश्यकता की प्रबलता में वृद्धि हो गई किन्तु, वह

दुकान वादी के कब्जे में थी । सुस्पष्टतः, किराएदार यह निदेश नहीं दे सकता था न ही न्यायालय के लिए यह निर्धारित करना संभाव्य था कि उसके आवासीय गृह के प्रथम तल के कमरे में दर्जी का कार्य करने का प्रबंध करने के लिए मुख्य बाजार सड़क की ओर भूमि तल पर वाद दुकान में प्रति-स्थापित करना बेहतर था । सुस्पष्टतः, किराएदार-प्रतिवादी इस संबंध में निबंधनों के प्रति निदेश नहीं कर सकता था ।

15. जहां तक, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 31 के निबंधनों में प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय का प्ररूप होने का संबंध है, इस न्यायालय का यह पूर्णतया समाधान है कि प्रथम अपील न्यायालय ने वर्तमान मामले में, ऐसी बेदखली के लिए मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता के बारे में विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने के लिए तर्कपूर्ण और ठोस कारण दिया है । दूसरी ओर, विद्वान् विचारण न्यायालय ने घिसे-पिटे निष्कर्ष निकाले हैं और बेदखली के वाद को मात्र इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि विभाजन की तारीखों अर्थात् तारीख 22 जनवरी, 1987 अथवा 22 नवम्बर, 1987 में भिन्नता है और यह कि क्या किराया रसीदें मकान मालिक के भाई कैलाश द्वारा या स्वयं मकान मालिक द्वारा वर्ष 1987 के पश्चात् जारी की गई थीं । यह प्रश्न मात्र तभी सुसंगत हो सकते थे यदि मकान मालिक के हक को किराएदार द्वारा इनकार किया जाता अथवा मकान मालिक और किराएदार के संबंध को इनकार किया जाता और उन्हें वादी-मकान मालिक द्वारा सिद्ध किया जाना अपेक्षित हो सकता था उस समय जब यदि हक को किराएदार द्वारा इस प्रकार गलत तौर पर इनकार किया जाता, तो यह न्यायालय द्वारा बेदखली की डिक्री मंजूर करने के लिए आधार हो सकता था । वर्तमान मामले में, ऐसा कुछ नहीं है और ऐसे संबंध को प्रतिवादी-किराएदार द्वारा स्वीकार किया गया है इसलिए, यद्यपि मकान मालिक ओम प्रकाश की सद्भाविक आवश्यकता वर्ष 1987 में विभाजन के कारण उद्भूत हुई फिर भी उसे ऐसे कारकों द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता है । वे सुस्पष्टतः, ऐसे पृष्ठभूमि कारक थे जिन पर मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता पर बेदखली के प्रश्न का विनिश्चय किया जाना अपेक्षित नहीं था ।

16. मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता वाद दुकान में स्वतंत्र रूप से स्वयं अपना कारबार करना था और उस प्रयोजन के लिए 13 वर्षों के इन्तजार के पश्चात् यदि उसने वर्ष 2000 में बेदखली वाद फाइल किया है तो मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि किस प्रकार विद्वान् विचारण

न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच सका था कि सद्भाविक आवश्यकता मौजूद नहीं थी, क्योंकि वह मैसर्स फ्री इंडिया टेलर्स के नाम से एक दुकान में अपने भाई के साथ कार्य कर रहा था । उससे कुछ और अधिक करने की प्रत्याशा नहीं थी और यदि उसने अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए अपने भाई के साथ कुछ कार्य कर लिया अथवा उसके पास उपलब्ध प्रथम तल के कमरे में स्वयं अपना कार्य कर रहा था तो यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि उसकी आवश्यकता पूरी हो गई थी इसलिए वाद-दुकान की बेदखली का आदेश पारित नहीं करना चाहिए । वादी-मकान मालिक के कारबार की आवश्यकता समुचित तौर पर मुख्य सड़क की ओर प्रथम तल की दुकान अर्थात् वाद-दुकान में ही पूरा होना संभाव्य था और न कि उस तरीके से जैसा कि पूर्वोक्त तरीके में प्रतिवादी-किराएदार के विद्वान् काउंसेल द्वारा दलील दी गई है ।

17. वर्ष 1993 में एक अन्य दुकान को मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को देने के बारे में भी दी गई दलील से वाद-दुकान के लिए मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता समाप्त नहीं होती है । उक्त दुकान प्रकटतः मकान मालिक ओम प्रकाश के अनन्य स्वामित्व और कब्जे में नहीं थी और उसे सभी तीनों भाइयों द्वारा वर्ष 1993 में मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को किराए पर दी गई थी और इसलिए, पश्चात्वर्ती वर्ष 2000 में फाइल वाद में, प्रतिवादी-किराएदार द्वारा यह दलील नहीं दी जा सकती है कि मकान मालिक को उक्त दुकान को किराए पर नहीं देते हुए अपनी आवश्यकता पूरी कर लेनी चाहिए थी जिसे उसके कुटुम्ब ने वर्ष 1993 में मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को किराए पर दे दी थी । क्या तीनों भाइयों जिनका उक्त दुकान पर संयुक्त नियंत्रण था और संयुक्ततः उक्त दुकान को मैसर्स दीप कला साड़ी केन्द्र को किराए पर देने के लिए सहमत हुए थे एक ऐसा प्रश्न है जो पश्चात्वर्ती वर्ष 2000 में फाइल में न तो सुसंगत है न ही जैसा कि प्रथम अपील न्यायालय ने इस संबंध में सही ही सबूत के भार को अभिनिर्धारित किया था, से प्रतिवादी-किराएदार उन्मोचित होता है ।

18. इस न्यायालय की राय में, यदि प्रथम अपील न्यायालय ने अपील के अधीन निर्णय के पैरा 13 और 14 में संयुक्ततः विवाद्यक सं. 1, 3 और 4 पर विनिश्चय क्रमवार विवाद्यक की तरह साक्ष्य के आधार पर अपना निष्कर्ष निकालते हुए किया है तो विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 31 की अपेक्षाओं का पर्याप्त और पूर्ण अनुपालन किया है और यह विवादित नहीं रह जाता है कि अपील

न्यायालय की शक्तियां निःसंदेह विचारण न्यायालय से व्यापक और सह-विस्तारी हैं और उसे उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अपने कारणों को देते हुए, विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को भी उलटने का भी अधिकार है जैसा कि उन्होंने वर्तमान मामले में किया है ।

19. इस न्यायालय की राय में, विद्वान् अपील न्यायालय ने मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता के बारे में तर्कपूर्ण कारणों को देते हुए और सम्पूर्ण साक्ष्यों पर सम्यक् रूप से चर्चा करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसी सद्भाविक आवश्यकता मौजूद थी और इसलिए बेदखली का आदेश पारित किया । विद्वान् अपील न्यायालय ने निर्णय के पैरा 15, 18 और 19 में वैकल्पिक आवास, भागिक बेदखली और तुलनात्मक कठिनाई से संबंधित विवाद्यकों पर भी चर्चा की है और मकान मालिक के पक्ष में निष्कर्ष निकाला और इसलिए, विद्वान् विचारण न्यायालय के आदेश को उलटते हुए बेदखली का निदेश दिया ।

20. अब हम दोनों पक्षों की ओर से उद्धृत निर्णयज विधियों पर विचार करते हैं, उनका संक्षिप्त पुनर्विलोकन करना समुचित होगा ।

21. अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल श्री जे. आर. पटेल ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 31 के अधीन यथापरिकल्पित अवधारण के लिए मुद्दों को सूत्रबद्ध करने के लिए अपील न्यायालय की कानूनी बाध्यता के संबंध में **बाबू लाल** बनाम **लाडू राम और अन्य**[1], **खेतू लाल** बनाम **नरसिंह दास और अन्य**[2], **परिमल** बनाम **वीना** उर्फ **भारती**[3] और **एच. सिद्दीकी (अब मृत** मार्फत **उनके विधिक प्रतिनिधिगण)** बनाम **ए. रामालिंगम**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चय का जोरदार अवलंब लिया । इन निर्णयों में प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों पर कोई विवाद नहीं है किन्तु 'अवधारण के लिए मुद्दों' शीर्षक का उल्लेख करना आवश्यक अपेक्षा नहीं है । यदि विचारण न्यायालय के आदेश को उलटने के लिए कारण देते हुए अपील न्यायालय ने निष्कर्ष निकाले हैं और जो महत्वपूर्ण मामला है और क्योंकि इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रथम अपील न्यायालय ऐसा कर सकता है तो प्रथम अपील

---

[1] 1997 (2) आर. एल. डब्ल्यू. 774 (राजस्थान).
[2] 1997 (2) आर. एल. डब्ल्यू. 810 (राजस्थान).
[3] 2011 डी. एन. जे. 219 (एस. सी.).
[4] 2011 (1) डब्ल्यू. एल. सी. 475 (एस. सी.).

न्यायालय के निर्णय को मात्र इस कारण से दूषित नहीं कहा जा सकता कि निर्णय में विनिर्दिष्टतः ऐसे अवधारण के लिए मुद्दों का कथन नहीं किया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **जी. अमलारपवम और अन्य** बनाम **आर. सी. डाईओसेज आफ मदुरई और अन्य**[1] वाले मामले के पैरा 9 और 12 में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि अपील न्यायालय ने अभिलेख पर के सम्पूर्ण साक्ष्यों पर विचार किया है और उन पर सविस्तार चर्चा की है तो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 31 के उपबंधों का सारवान् अनुपालन हुआ है और अपील न्यायालय का ऐसा निर्णय दूषित नहीं हो सकता है ।

22. प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने (i) **बीबी रियाजान खातून और अन्य** बनाम **सरदूल आलम और अन्य**[2], (ii) **श्रीमती सोना देवी** बनाम **नगीना सिंह और अन्य**[3] तथा (iii) **एस. आर. श्रीनिवास और अन्य** बनाम **एस. पद्मावथम्मा**[4] वाले मामलों का अवलंब लिया इस प्रतिपादना के लिए कि जब कभी प्रथम अपील न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों का उल्लेख किए बिना विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष को उलटता है तो ऐसे तथ्य के निष्कर्षों में भी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में हस्तक्षेप किया जा सकता है । उन्होंने उसी प्रतिपादना के लिए निम्नलिखित निर्णयों का भी अवलंब लिया :–

(i) **कश्मीर सिंह** बनाम **हरनाम सिंह और एक अन्य**[5],

(ii) **कृष्ण मोहन कुल** उर्फ **नानी चरण कुल और एक अन्य** बनाम **प्रतिमा मार्ती और अन्य**[6],

(iii) **दीपक बनर्जी** बनाम **श्रीमती लीलावती चक्रवर्ती**[7],

---

[1] (2006) 3 एस. सी. सी. 224.

[2] ए. आई. आर. 1996 पटना 156.

[3] ए. आई. आर. 1997 पटना 67.

[4] 2010 (1) डब्ल्यू. एल. सी. 742 (एस. सी.) सिविल.

[5] 2008 (2) डब्ल्यू. एल. सी. 64 (एस. सी.) = 2008 (4) आर. एल. डब्ल्यू. 3352 (एस. सी.).

[6] 2004 (1) डब्ल्यू. एल. सी. 319 (एस. सी.).

[7] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 2055.

(iv) **बोन्दर सिंह और अन्य** बनाम **निहाल सिंह और अन्य**[1],

(v) **भारत मठ और एक अन्य** बनाम **आर. विजय रंगनाथन और अन्य**[2] ।

23. मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता का न्यायनिर्णयन कैसे किया जाना है, इसके लिए अपीलार्थी-प्रतिवादी श्री पटेल के विद्वान् काउंसेल ने इन निर्णयों का अवलंब लिया :–

(i) **भागीरथ** बनाम **राम प्रसाद और एक अन्य**[3],

(ii) **गोविन्द** बनाम **डा. जीत सिंह**[4],

(iii) **हीरा लाल** बनाम **मंदिर श्री ठाकुर जी संगारिया और एक अन्य**[5],

(iv) **शिव स्वरूप गुप्ता** बनाम **डा. महेश चन्द गुप्ता**[6],

(v) **शिवासुब्रमणियन और अन्य** बनाम **काशीनाथ पुजारी और अन्य**[7] ।

24. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-मकान मालिक श्री आर. के. थान्वी के विद्वान् काउंसेल ने अपनी इस दलील के समर्थन में कि सद्भाविक आवश्यकता के आधार एक पुनरावर्ती वाद हेतुक हैं और ऐसे वाद फाइल करने के लिए कोई परिसीमा अवधि नहीं है जिसमें वर्तमान वाद वर्ष 1987 में विभाजन के 13 वर्षों पश्चात् वर्ष 2000 में फाइल किया गया है, निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया :–

(i) **एन. आर. नारायणस्वामी** बनाम **डी. फ्रांसिस जगन**[8],

(ii) **सदानन्दन** बनाम **प्रदीपन**[9] ।

---

[1] 2003 (1) सी. सी. सी. 145 (एस. सी.).
[2] 2010 डी. एन. जे. 545 (एस. सी.).
[3] 1987 (1) आर. एल. आर. 88 = 1987 आर. एल. डब्ल्यू. 555.
[4] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 365.
[5] 2005 (1) डी. एन. जे. 480 (राजस्थान).
[6] 1999 (2) आर. सी. जे. 388 (एस. सी.).
[7] 1999 (4) सी. सी. सी. 128 (एस. सी.).
[8] 2001 (2) आर. सी. आर. 169.
[9] 2001 (2) आर. सी. आर. 272.

25. इस प्रतिपादना के लिए कि मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करना चाहिए, विद्वान् काउंसेल श्री थान्वी ने **सिद्दालिंगम्मा और एक अन्य** बनाम **ममता शिनाय**[1] वाले मामले का अवलंब लिया ।

26. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में हस्तक्षेप करने की सीमित क्षेत्र के बारे में, उन्होंने निम्नलिखित तीन निर्णयों का अवलंब लिया :–

(i) **नरेन्द्र गोपाल विद्यार्थी** बनाम **रजत विद्यार्थी**[2],

(ii) **ठाकुर दास** बनाम **नाथू मल**[3],

(iii) **अजीत सिंह और एक अन्य** बनाम **जीत राम और एक अन्य**[4] ।

27. उन्होंने यह भी तर्क दिया कि द्वितीय अपील तथ्यों पर तृतीय विचारण नहीं हो सकता है और उच्च न्यायालय द्वारा मात्र उन्हीं मामलों में हस्तक्षेप किया जा सकता है जिनमें सारवान् विधि के प्रश्न अन्तर्वलित हैं, जिसमें उन्होंने यह तर्क दिया कि वर्तमान मामले में ऐसा कोई प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है । इस दलील के समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित निर्णय का अवलंब लिया :–

(i) **गुरुदेव कौर और अन्य** बनाम **काकी और अन्य**[5],

28. इस प्रतिपादना के लिए कि सह-मकान मालिक अथवा मकान मालिकों में से कोई एक भी बेदखली के लिए वाद फाइल कर सकता है, उन्होंने **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **पार्वती देवी और अन्य**[6] वाले मामले का अवलंब लिया ।

29. इन निर्णयज विधियों के अलावा, हाल ही में इस न्यायालय ने उसी प्रकार की परिस्थितियों में **ओम प्रकाश भाटी** बनाम **हर कन्वर के**

---

[1] (2001) 8 एस. सी. सी. 561.

[2] (2009) 3 एस. सी. सी. 287.

[3] 2012 (1) सी. सी. सी. 285 = 2011 (3) आर. एल. डब्ल्यू. 2529.

[4] (2008) 9 एस. सी. सी. 699.

[5] (2007) 1 एस. सी. सी. 546.

[6] 2004 (3) आर. एल. डब्ल्यू. 1828 (राजस्थान).

विधिक प्रतिनिधिगण[1], विनिश्चय तारीख 11 अगस्त, 2011 वाले मामले में संबंधित पक्षकारों द्वारा उद्भूत दलीलों पर विचार करते हुए, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "9. भारतीय न्यायालयों ने भी इसी प्रकार यह अभिनिर्धारित किया है कि किराएदार की बेदखली निकट भविष्य में उद्भूत होने वाली सद्भाविक आवश्यकता के लिए भी ईप्सित किया जा सकता है । यदि एक पक्षकार जो कार्यवाहियों की प्रकृति को जानता है, सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली के लिए एक आवेदन फाइल करता है जो निकट भविष्य में अस्तित्व में आ सकता है, इस आधार पर ऐसी याचिका ग्रहण करने से इनकार नहीं किया जा सकता है कि आवश्यकता मौजूद नहीं थी जब उसने याचिका फाइल की थी । इस बात को पूरी तरह से जानते हुए कि युक्तियुक्त आवश्यकता निकट भविष्य में उद्भूत हो सकती है और बेदखली की डिक्री सुनिश्चित करने के लिए भी ऐसी सद्भाविक आवश्यकता सिद्ध करने के लिए युक्तियुक्त समय लिया जा सकता है, मकान मालिक सद्भाविक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए समय के भीतर कार्यवाही आरम्भ कर सकता है जिसकी वह परिकल्पना करता है जो निकट भविष्य में उद्भूत होने वाली है । 'समय से कार्यवाही बड़ी हानि से बचाता है' एक सुविख्यात युक्ति है और उसका अभिप्रायः समय के भीतर समुचित उपाय करके हानि को रोकना है ।
>
> इसी प्रकार, यदि मकान मालिक की यह राय है कि सद्भाविक आवश्यकता निकट भविष्य में उद्भूत हो सकती है तो वह ऐसी आवश्यकता के वस्तुतः उद्भूत होने के पूर्व भी किराएदार की बेदखली के लिए कार्रवाई आरम्भ कर सकता है जिसे उसे कार्यवाही के दौरान न्यायालय के समक्ष सिद्ध करना होगा और यदि बेदखली की डिक्री पारित की जाती है तो न्यायालय के समक्ष ऐसी सद्भाविक आवश्यकता को स्पष्टतः दर्शित करना होगा । मकान मालिक मात्र सनक और इच्छा के आधार पर बेदखली की ईप्सा नहीं कर सकता है और उस समय पर सद्भाविक आवश्यकता होनी चाहिए, यद्यपि सद्भाविक आवश्यकता पूर्ण, बाध्यकारी और घोर आवश्यकता नहीं है तो भी मकान मालिक को दुःख या अपूर्णीय क्षति से ग्रसित होना

---

[1] एस. बी. सिविल द्वितीय अपील सं. 203/2010-2012 (1) आर. एल. डब्ल्यू. 360.

चाहिए । मकान मालिक की सद्भाविक आवश्यकता किसी के बीच में होनी चाहिए और यह मकान मालिक ही होता है जो वस्तुतः ऐसी आवश्यकता के बारे में बेहतर निर्णय कर सकता है और बेदखली के लिए न्यायालय के समक्ष जाने की योजना बनाता है और आवेदन करता है यदि मकान मालिक की यह राय होती है कि वाद परिसरों की निकट भविष्य में उसकी या स्वयं उसके बच्चों या उसके पोतों की सद्भाविक आवश्यकता के लिए अपेक्षित है ।

10. टी. सुनील कुमार **बनाम** मैसर्स एस. जी. इदुलगरी एण्ड सन्स (ए. आई. आर. 1993 आंध्र प्रदेश 205) वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

> '11. क्योंकि याची, याचिका फाइल करते समय अध्ययन कर रहे थे और क्योंकि उनमें से एक अवयस्क था, यह दलील दी गई कि उस समय परिसरों की कोई सद्भाविक आवश्यकता नहीं थी जब उन्होंने बेदखली के लिए याचिका फाइल की थी । यह आवश्यक नहीं है कि कारबार आरम्भ करने की आवश्यकता वाद की तारीख पर मौजूद होना चाहिए और वादी अपनी उस आवश्यकता के संबंध में वाद फाइल कर सकता है जो निकट भविष्य में उद्भूत होने वाली है [देखें - हेमरान नीमा **बनाम** राजनारायण (1980 एम. पी. आर. सी. जे. 65)]
>
> पद्मा राममूर्ति **बनाम** एम. राघा [1974 आर. सी. आर. 197 (हैदराबाद)] के बीच एक अन्य विनिश्चय जिसकी रिपोर्ट 1974 आर. सी. आर. में की गई थी, वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह सत्य है कि वैयक्तिक व्यवसाय की आवश्यकता मौजूद होनी चाहिए किन्तु इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि किराया मामलों के निपटारे में अधिक समय लगता है और इसलिए, वर्ष 1971 में परिसरों की आवश्यकता के लिए वर्ष 1969 में इस आधार पर फाइल याचिका कि मकान मालिक सेवानिवृत्त हो जाएगा और उसके पश्चात् वह व्यवस्थित होना चाहता है, तो ऐसे में इस बात को खारिज नहीं किया जा सकता है कि आवश्यकता मौजूद नहीं है ।'

12. यह सामान्य जानकारी की बात है कि एक किराएदार की बेदखली के लिए कार्यवाहियां कम से कम 5 वर्षों की अवधि के भीतर अंतिम नहीं हो सकती हैं यदि पक्षकारों के बीच विरोध है । इसलिए, यदि एक पक्षकार जो कार्यवाहियों की प्रकृति को जानता है, वह सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली के लिए एक आवेदन फाइल करता है जो निकट भविष्य में उद्भूत हो सकती है, तो आधार पर ऐसी याचिका ग्रहण करने से इनकार करते हुए दंडित नहीं किया जा सकता है कि आवश्यकता मौजूद नहीं थी, जब उसने याचिका फाइल की थी । यह याद रखना चाहिए कि बेदखली के लिए यह याचिका वर्ष 1979 में फाइल की गई थी किन्तु अभी तक इसका अंतिम तौर पर निपटारा नहीं किया गया है । कुल मिलाकर याची उस समय इंटरमीडिएट में अध्ययन कर रहे थे, जब याचिका फाइल की गई थी । इसलिए, यह ऐसी परिस्थिति नहीं थी जिसमें सामान्य परिस्थितियों में आन्तरिक अनुतोष नहीं दिया जा सकता था क्योंकि प्रत्यर्थी ने परिसर खाली नहीं किया था यह कहते हुए कि कोई सद्भाविक आवश्यकता नहीं थी । आगे, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि याचियों ने कारबार आरम्भ करने के लिए अभि. सा. 2 से मारेदपाली में स्थित कुछ अन्य परिसरों को किराए पर लिया था । यह एक पश्चात्वर्ती घटना थी जिससे यह दर्शित होता है कि याचियों को परिसरों की सद्भाविक आवश्यकता थी । समुचित मामलों में, बेदखली का वाद फाइल करने के पश्चात् की घटनाओं को भी नोटिस किया जा सकता है और न्यायालय द्वारा सम्यक् रूप से विचार किया जा सकता है, जो सद्भाविक आवश्यकता के प्रश्न का अवधारण करने के लिए सुसंगत होता है ।"

30. न्यायालय के समक्ष उद्धृत निर्णयों में विधि की सभी प्रतिपादनाओं का संयुक्त परिशीलन करने पर, इस न्यायालय की यह राय है कि वर्तमान मामले में प्रमाणिकताओं का भार मजबूती तौर पर प्रत्यर्थी मकान मालिक के पक्ष में जाता है और प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के उन निष्कर्षों जो तर्कपूर्ण कारणों पर आधारित नहीं था, को उलटते हुए बेदखली का आदेश सही और न्यायोचित तरीके से पारित किया है और इस

न्यायालय की राय में, इस न्यायालय द्वारा विचार करने योग्य कोई अन्य विधि के सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होते हैं ।

31. परिणामतः, प्रतिवादी-किराएदार की यह अपील खारिज की जाती है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

32. अपीलार्थी-प्रतिवादी आज से 6 माह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी-मकान मालिक को वाद दुकान का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा सौंपेगा और जुलाई, 2012 से अन्तःकालीन लाभ अर्थात् 2,000/- रुपए प्रतिमाह का संदाय करेगा और आने वाले माह के 15वें दिन प्रत्येक माह का अंतःकालीन लाभ का संदाय करता रहेगा और अथवा प्रत्यर्थी को अग्रिम का भी संदाय करेगा और यदि अंतःकालीन लाभ के संदाय में कोई व्यतिक्रम किया जाता है तो बेदखली के लिए 6 माह की अवधि कम कर दी जाएगी और बेदखली की डिक्री तुरन्त निष्पादनीय हो जाएगी । किराएदार वाद परिसरों या उसके किसी भाग का उप-पट्टा भी किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में नहीं करेगा और पूर्वोक्त अवधि के दौरान उक्त वाद-दुकान में किसी तीसरे पक्ष का हित भी सृजित नहीं करेगा और यदि ऐसा करता है तो उसे शून्य समझा जाएगा । अपीलार्थी-प्रतिवादी एक माह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त शर्तों को निगमित करते हुए एक लिखित वचनबंध देगा और शपथपत्र के साथ उसकी एक प्रति इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करेगा । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि आज से 6 माह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी-मकान मालिक को वाद-दुकान का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा नहीं सौंपा जाता है सिवाय सामान्य अनुक्रम में डिक्री का निष्पादन, तो प्रत्यर्थी-मकान मालिक इस न्यायालय की अवमान अधिकारिता का अवलंब लेने का भी हकदार होगा ।

तद्नुसार, अपील का निपटारा किया गया ।

क.

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

श्रीमती सुपयार देवी और अन्य

तारीख 19 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क – मोटर दुर्घटना दावा – वाहन स्वामी के पुत्र की वाहन चलाते समय दुर्घटना में मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – मृतक की आय 3,000/- रुपए मासिक निर्धारित किया जाना – आक्षेप – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अधिनिर्णीत प्रतिकर अनुचित नहीं कहा जा सकता ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी (संक्षेप में बीमा कंपनी) ने यह अपील दावा मामला सं. 244/2009(1316/2008) में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (अपर जिला न्यायाधीश फास्ट ट्रेक सं. 6), जयपुर मेट्रोपोलिटिन, जयपुर अजमेर (संक्षेप में एम. ए. सी. टी.) न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 31 जनवरी, 2012 के सामान्य अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन फाइल की है जिसके द्वारा दावेदारों द्वारा फाइल की दावा याचिका को अंशतः मंजूर किया गया है और 1,55,000/- रुपए की धनराशि प्रतिकर के रूप में अधिनिर्णीत की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने विवाद्यक सं. 4 के संबंध में मृतक की आय 1,500/- रुपए परिकल्पित की और 15 का गुणक लागू किया और उसकी आय 2,70,000/- रुपए परिकल्पित की जिसमें से पिता के हिस्से को घटा दिया गया था और 1,35,000/- रुपए सुपयार देवी के लिए अधिनिर्णीत किए गए । दोनों भाइयों राजेश और सुनील को प्रेम और स्नेह के लिए प्रत्येक को 5,000/- रुपए अधिनिर्णीत किए गए । कुल 1,55,000/- रुपए जिसमें अंतिम संस्कार की राशि शामिल है, अधिनिर्णीत किए गए । बीमा कंपनी के द्वारा दी गई दलीलें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्वीकार नहीं की जा सकती हैं । मैं मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों से सहमत हूं । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों को अनुचित

नहीं कहा जा सकता है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय उचित और उपयुक्त है और मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित किए गए अधिनिर्णय में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील को गुण-दोष के आधार पर खारिज किया जाता है । (पैरा 8 और 9)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	ए. सी. जे. 2012 जिल्द 1 पेज 1 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **सिनीता और अन्य;**	4,5
[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 417 : **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **सदानंद मुखी और अन्य;**	4
[2009]	ए. आई. आर 2009 एस. सी. 3056 : **निन्जम्मा और अन्य** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि.;**	4
[2007]	(2007) 9 एस. सी. सी. 263 : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्रीमती झूमा साहा और अन्य** ।	4

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की एकलपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1557.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मान सिंह चुंडावत

दावेदारों की ओर से श्री संदीप माथुर

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – नेशनल इंश्योरेंस कंपनी (संक्षेप में बीमा कंपनी) ने यह अपील दावा मामला सं. 244/2009 (1316/2008) में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (अपर जिला न्यायाधीश फास्ट ट्रेक सं. 6), जयपुर मेट्रोपोलिटिन, जयपुर अजमेर (संक्षेप में एम. ए. सी. टी.) न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 31 जनवरी, 2012 के सामान्य अधिनिर्णय के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन फाइल की है जिसके द्वारा

दावेदारों द्वारा फाइल की दावा याचिका को अंशतः मंजूर किया गया है और 1,55,000/- रुपए की धनराशि प्रतिकर के रूप में अधिनिर्णीत की गई है।

2. चूंकि तथ्यों का आक्षेपित आदेश में उल्लेख किया गया है और इसलिए जहां आवश्यक नहीं है, मैं उनको नहीं दोहरा रहा हूं ।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि अनिल कुमार की तारीख 11 फरवरी, 2008 को जो यान रजिस्ट्रेशन सं. आर.जे. 14 सी.बी. 7930 को चला रहा था, सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई जब वह जयपुर से अपने भाई राजेश कुमार के विवाह समारोह में शामिल होने जा रहा था । उक्त यान फतेहपुर के नजदीक मुड़ने के परिणामस्वरूप उलट गया जिससे अन्य दो व्यक्तियों अर्थात् शेर सिंह और गुलाब सिंह के साथ मृत्यु हो गई और विनोद कुमार और सतीश कुमार को भी चोटें आईं । यह अभिकथित किया गया है कि उक्त दुर्घटना उक्त यान के सामने अचानक नील गाय आ जाने के कारण हुई थी । उक्त दुर्घटना के संबंध में पुलिस स्टेशन कोतवाली फतेहपुर में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी जो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 23/2008 के रूप में रजिस्ट्रीकृत की गई थी । यान का जिसे मृतक चला रहा था, स्वामी उसका पिता था और अपीलार्थी बीमा कंपनी से बीमाकृत था । दावेदारों की दावा याचिका के संबंध में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 31 जनवरी, 2012 को सामान्य अधिनिर्णय में 1,55,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की गई है ।

4. बीमा कंपनी की ओर से पेश हुए काउंसेल श्री मान सिंह चुंडावत ने **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लि**. बनाम **सदानंद मुखी और अन्य**[1], **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्रीमती झूमा साहा और अन्य**[2] और **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **सिनीता और अन्य**[3] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण का अधिनिर्णय पूर्णतः विधिविरुद्ध है, बिना अधिकारिता के है और मामले के तथ्यों के तथा सुस्थापित विधिक स्थिति के विपरीत है और इसलिए अपास्त किए जाने योग्य है । यह भी दलील दी गई है कि अधिकथित दुर्घटना के समय मृतक यान चला रहा था, जो स्वयं आहत का पुत्र है और वह उक्त यान को स्वामी की स्थिति में चला रहा था और इसलिए उच्चतम न्यायालय द्वारा **निन्जम्मा और अन्य** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस**

---

[1] (2009) 2 एस. सी. सी. 417.

[2] (2007) 9 एस. सी. सी. 263.

[3] ए. सी. जे. 2012 जिल्द 1 पेज 1.

कंपनी लि.[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए दावेदारों द्वारा फाइल की गई दावा याचिका ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि मृतक पर-व्यक्ति की परिधि के भीतर नहीं आता है और इसलिए मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा बीमा कंपनी को दायित्वाधीन ठहराने के लिए कोई औचित्य नहीं है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने अभिलेख पर पेश किए गए किसी विश्वसनीय दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में मृतक की आय 3,000/- रुपए प्रतिमास मानते हुए गंभीर गलती की है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि दावेदारों में से कोई भी मृतक के ऊपर आश्रित नहीं था क्योंकि मृतक की माता मृतक के ऊपर आश्रित नहीं समझी जा सकती है जब उसका पति जीवित है और शेष दावेदारों जोकि मृतक के वयस्क भाई हैं, मृतक के ऊपर निर्भर नहीं माने जा सकते और इसलिए अधिनिर्णीत प्रतिकर अत्यधिक होने के कारण कम किए जाने योग्य है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत ब्याज की उच्चतर दर न्यायोचित नहीं है और इसे केवल अधिनिर्णय की तारीख से अधिनिर्णीत किया जा सकता है, न कि दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से ।

5. दावेदारों की ओर से पेश हुए विद्वान् काउंसेल श्री संदीप माथुर ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **सिनीता और अन्य**[2] वाले मामले का अवलंब लिया है जिसका बीमा कंपनी द्वारा भी अवलंब लिया गया है । उन्होंने यह दलील दी है कि मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने दावेदारों द्वारा पेश किए साक्ष्य और दस्तावेजों पर विचार किया है और इसलिए अधिनिर्णय को अनुचित नहीं कहा जा सकता । दावेदारों को प्रतिकर ठीक प्रकार से अधिनिर्णीत किया गया है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने आश्रितता के लिए 2,70,000/- रुपए का निर्धारण किया है किन्तु मृतक के पिता के आधे हिस्से को कम करके इसे 1,35,000/- रुपए कर दिया गया है । अतः बीमा कंपनी के काउंसेल द्वारा उद्धृत किए गए निर्णयों के अनुसार अधिनिर्णय को अपास्त नहीं किया जा सकता ।

6. मैंने बीमा कंपनी और दावेदार-प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेलों को सुना । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने सभी पक्षकारों जिसमें अपीलार्थी भी है, के काउंसेल को सुनने के पश्चात् तारीख 31 जनवरी, 2012 को अधिनिर्णय पारित किया है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने विवाद्यक सं. 1

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 3056.

[2] ए. सी. जे. 2012 जिल्द 1 पेज 1.

और 2 के संबंध में तारीख 31 जनवरी, 2012 के अधिनिर्णय में इस प्रकार अधिनिर्धारित किया है :–

> "केवल मात्र यह कह देने से कि वह विपक्षी संख्या 1 का पुत्र है, इसलिए याचिका प्रस्तुत नहीं कर सकता, न्यायोचित नहीं है । यह मोटर अधिनियम लोक कल्याणकारी अधिनियम है और एक रजिस्टर्ड वाहन का स्वामी अपने पुत्र से वाहन को चलवा सकता है, इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि ऐसी स्थिति में वह उसके नियोजन में वाहन स्वयं हो और वह वाहन चालक के रूप में कार्य करता है, इस तथ्य की भी पुष्टि होती है कि उसके द्वारा वाहन चलाया जा रहा था और अनिल कुमार का डी.एल. भी प्रस्तुत किया गया है और वह स्वयं दुर्घटना के वक्त अपने पिता के नियोजन में वाहन चला रहा था, यह तथ्य साबित होता है क्योंकि प्रकरण में सड़क दुर्घटना में होने वाली क्षति के लिए मृतक के हितार्थ यह कानून बनाया गया है । अतः तनकी संख्या 1 व 2 उपरोक्त विश्लेषण के अनुसार विपक्षी की किसी प्रकार की इस बिन्दु पर कोई साक्ष्य नहीं होने के कारण मौखिक कथन बीमा कम्पनी का स्वीकार योग्य नहीं पाया जाता तथा प्रकरण में प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श 3 पंचायतनाम लाश, मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श 6, फर्द जप्ती वाहन प्रदर्श 7, नक्शा मौका प्रदर्श 8, एम. टी. ओ. रिपोर्ट प्रदर्श 9, रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र तथा प्रदर्श 10 नेशलन इंश्योरेंस कम्पनी का प्रमाणपत्र तथा प्रकरण में प्रस्तुत अनिल कुमार का डी.एल. और प्रदर्श 17 सतीश कुमार का बयान इस बात को साबित करता है कि विपक्षी संख्या 1 के नियोजन में मृतक अनिल उक्त वाहन चला रहा था तथा उक्त वाहन के परिचालन के दौरान नील गाय के अचानक सामने आ जाने के कारण उक्त दुर्घटना घटित हुई यह तथ्य पूर्णतया साबित पाया जाता है ।"

7. मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने विवाद्यक सं. 3 के संबंध में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "क्योंकि वर्तमान प्रकरण में कार चालक अनिल कुमार के पास वैध लाइसेन्स है वह अपने पिता के नियोजन में वाहन चला रहा है, वह मूल स्वामी नहीं था, इसलिए वह तृतीय पक्षकार की श्रेणी में ही आएगा, न कि अन्य दशा में । उसे केवल मात्र परिवार का सदस्य होने के कारण और मृतक अनिल विपक्षी सं. 1 का पुत्र होने के कारण उक्त विधिक अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता, जब

तक कि सुसंगत साक्ष्य अन्य प्रकार से न हो । ऐसी स्थिति में बीमा कम्पनी द्वारा जिन न्यायिक दृष्टांतों को आधारित किया गया है, उनके संबंध में सुस्पष्ट व्याख्या उपरोक्त विश्लेषण में की जा चुकी है, ऐसी स्थिति में धारा 163-ए के अंतर्गत यह याचिका पोषणीय नहीं है, यह भी धारा 163-ए के संरचनात्मक सूत्र के आधार पर नहीं माना जा सकता, इसका स्पष्टीकरण धारा 163-ए में सुस्पष्ट तरीके पर दिया गया है । इस प्रकार से यह तनकी बीमा कम्पनी के विरुद्ध व आवेदकगण के पक्ष में विनिश्चित की जाती है ।'

8. मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण ने विवाद्यक सं. 4 के संबंध में मृतक की आय 1,500/- रुपए परिकल्पित की और 15 का गुणक लागू किया और उसकी आय 2,70,000/- रुपए परिकल्पित की जिसमें से पिता के हिस्से को घटा दिया गया था और 1,35,000/- रुपए सुपयार देवी के लिए अधिनिर्णीत किए गए । दोनों भाइयों राजेश और सुनील को प्रेम और स्नेह के लिए प्रत्येक को 5,000/- रुपए अधिनिर्णीत किए गए । कुल 1,55,000/- रुपए जिसमें अंतिम संस्कार की राशि शामिल है, अधिनिर्णीत किए गए । बीमा कंपनी के द्वारा दी गई दलीलें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्वीकार नहीं की जा सकती हैं ।

9. मैं मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों से सहमत हूं । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों को अनुचित नहीं कहा जा सकता है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय उचित और उपयुक्त है और मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित किए गए अधिनिर्णय में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील को गुण-दोष के आधार खारिज किया जाता है ।

10. उपर्युक्त अवलोकनों के साथ प्रकीर्ण अपील खारिज की जाती है । रोक आवेदनों को भी खारिज किया जाता है । प्रतिकर अधिनिर्णय के अनुसार दावेदारों को वितरित किया जाए । मामले के अभिलेख को तुरन्त मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण को वापस भेजा जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

शिवराज सैनी

बनाम

प्रहलाद उर्फ **बोदू मीणा और अन्य**

तथा

योगेश कुमार सैनी

बनाम

प्रहलाद उर्फ **बोदू मीणा और अन्य**

तारीख 19 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – दावा – दावेदारों को मामूली क्षतियां पहुंचना – क्षतियों को दृष्टिगत करते हुए 37,700/- रुपए के प्रतिकर के लिए अधिनिर्णय – दावेदारों द्वारा चुनौती – जहां अधिकरण ने तथ्यों और साक्ष्य पर विचार करते हुए विधिसम्मत निर्णय दिया हो वहां अपील में अपील न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने से विरत रहना चाहिए ।

अपीलार्थी-क्लेमेन्ट शिवराज सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2678/2011 एवं अपीलार्थी-क्लेमेन्ट योगेश कुमार सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 5314/2011 अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) क्रम संख्या-6, जयपुर नगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय तारीख 10 फरवरी, 2011 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी-क्लेमेन्ट शिवराज सैनी को 37,700/- रुपए एवं अपीलार्थी-क्लेमेन्ट योगेश कुमार सैनी को 36,700/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश पारित किया गया । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपीलार्थीगण को अत्यन्त ही कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उनका तर्क है कि दुर्घटना में अपीलार्थीगण के काफी चोटें आई थीं, उनके

इलाज पर भी काफी धनराशि खर्च हुई है, उन्होंने काफी समय पर शारीरिक कष्ट सहन किया है । किन्तु विद्वान् अधिकरण ने सभी मदों में अपीलार्थीगण को कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उनका कथन है कि इस हेतु विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं किया । इसके विपरीत प्रत्यर्थी बीमा कम्पनी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप में मूल्यांकन करते हुए अपीलार्थीगण को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण का निर्णय पूर्णतया विधिसम्मत है । न्यायालय ने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । विद्वान् अधिकरण के निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने के उपरान्त न्यायालय यह पाता है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करते हुए अपना निर्णय पारित किया है, जो पूर्णतया विधिसम्मत है एवं जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है । अतः अपीलार्थी शिवराज सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2678/2011 एवं अपीलार्थी योगेश कुमार सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 5314/2011 निरस्त की जाती है । अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) क्रम संख्या-6, जयपुर नगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय तारीख 10 फरवरी, 2011 की पुष्टि की जाती है । (पैरा 4, 5, 6 और 7)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की एकलपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 2678 और सं. 5314.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से श्री सुमेर सैनी

दावेदारों की ओर से श्री वीरेन्द्र अग्रवाल

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी-क्लेमेन्ट शिवराज सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2678/2011 एवं अपीलार्थी-क्लेमेन्ट योगेश कुमार सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 5314/2011 अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) क्रम संख्या-6, जयपुर नगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय तारीख 10 फरवरी, 2011 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी-क्लेमेन्ट शिवराज सैनी को 37,700/- रुपए एवं अपीलार्थी-क्लेमेन्ट योगेश कुमार

सैनी को 36,700/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश पारित किया गया । चूंकि उपरोक्त वर्णित दोनों अपीलों के अन्तर्गत अधिकरण के एक ही निर्णय को चुनौती दी गई है, जिससे इनका निस्तारण इस एक ही निर्णय के द्वारा किया जा रहा है ।

2. प्रकरण के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी-क्लेमेन्ट शिवराज सैनी एवं अपीलार्थी-क्लेमेन्ट योगेश कुमार सैनी ने अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) क्रम संख्या-6, जयपुर नगर, जयपुर के समक्ष पृथक्-पृथक् क्लेम याचिकाएं इन तथ्यों के साथ प्रस्तुत कीं कि दिनांक 7 अगस्त, 2006 को प्रार्थीगण स्कूल मिनी बस नम्बर आर जे 14 1पी 3421 में अन्य छात्रों के साथ जा रहे थे । जब 7.45 ए.एम. पर बस रोड नम्बर 6 विश्वकर्मा के सामने पहुंची तो बस चालक ने बस को तेज गति व लापरवाही से चलाकर पलटी खिला दी, जिससे प्रार्थीगण के शरीर पर चोटें आईं । उक्त दुर्घटना मिनी बस चालक की उपेक्षा व लापरवाही से कारित होना बताते हुए प्रार्थी शिवराज द्वारा 8,85,000/- रुपए एवं प्रार्थी योगेश कुमार सैनी द्वारा 7,85,000/- रुपए बतौर क्षतिपूर्ति विपक्षीगण से दिलाए जाने की प्रार्थना की ।

3. अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स द्वारा प्रस्तुत क्लेम याचिका के नोटिस याचिका के विपक्षीगण को जारी किए गए । विपक्षी बीमा कम्पनी की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें क्लेम याचिका के तथ्यों से इनकार करते हुए याचिका खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर पांच विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) क्रम संख्या-6 जयपुर नगर, जयपुर ने अपने निर्णय तारीख 10 फरवरी, 2011 के द्वारा अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स को उपरोक्त वर्णित अनुसार क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी शिवराज सैनी की ओर से यह सिविल विविध अपील संख्या 2678 एवं अपीलार्थी योगेश कुमार सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 5314/2011 इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है ।

4. अपीलार्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपीलार्थीगण को अत्यन्त ही कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उनका तर्क है कि दुर्घटना में अपीलार्थीगण के काफी चोटें आई थीं, उनके इलाज पर भी काफी धनराशि खर्च हुई है, उन्होंने काफी समय तक

शारीरिक कष्ट सहन किया है । किन्तु विद्वान् अधिकरण ने सभी मदों में अपीलार्थीगण को कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उनका कथन है कि इस हेतु विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं किया ।

5. इसके विपरीत प्रत्यर्थी बीमा कम्पनी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप में मूल्यांकन करते हुए अपीलार्थीगण को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण का निर्णय पूर्णतया विधिसम्मत है । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान अधिकरण के निर्णय के पैरा 12 की ओर आकर्षित किया, जो निम्न प्रकार है :–

> "12. हमने उभय पक्षगण को सुना एवं पत्रावली का अवलोकन किया । प्रकरण हाजा में इस संबंध में बीमा कम्पनी की ओर से प्रस्तुत गवाह एन. ए. ड. 1 पी. एम. कचौटिया को परीक्षित करवाया गया है, जिसने भी अपनी साक्ष्य में उक्त तथ्यों का समर्थन करते हुए बीमा पालिसी प्रदर्श ए-1 की शर्तों का उल्लंघन कारित करना बताया है एवं कथन किया है कि पुलिस द्वारा भी इस संबंध में अप्रार्थी सं. 1 के विरुद्ध धारा 3/181 एम. वी. एक्ट का आरोप प्रमाणित पाया गया है एवं उनके द्वारा जब इस संबंध में वाहन चालक व स्वामी को अनुज्ञापत्र पेश करने के पत्र प्रदर्श ए-2 व ए-3 जारी किए गए, उसका कोई जवाब ना तो उनके द्वारा दिया गया एवं ना ही विपक्षी सं. 1 का अनुज्ञापत्र पेश किया गया, अतः उक्त आधारों पर बीमा कम्पनी प्रतिकर हेतु दायी नहीं होना बताया है । इस गवाह से प्रतिपरीक्षा में ऐसा कोई कथन नहीं कराया जा सका है, जिससे यह स्पष्ट होता हो कि लाइसेन्स ना होने की स्थिति में भी बीमा कम्पनी प्रतिकर हेतु दायी हो । प्रस्तुत पत्र रजिस्ट्री रसीद जो बीमा कम्पनी द्वारा विपक्षी सं. 1 व 2 वाहन चालक व स्वामी को प्रेषित किए गए हैं उनके प्राप्त होने के बावजूद भी विपक्षी सं. 1 व 2 की ओर से कोई अनुज्ञापत्र विपक्षी सं. 1 का ना तो पुलिस के समक्ष प्रस्तुत किया गया एवं ना ही न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, ना ही उनके द्वारा न्यायालय में उपस्थित होकर इस संबंध में कोई साक्ष्य दिया गया है, ऐसी स्थिति में पुलिस द्वारा प्रस्तुत आरोपपत्र प्रदर्श 1 एवं गवाह एन. ए. ड. 2 की साक्ष्य व प्रस्तुत दस्तावेजात के आधार पर यह माना जा सकता है कि बरवक्त दुर्घटना विपक्षी सं. 1 वाहन चालक के पास

प्रश्नगत मिनी बस संख्या आर जे 14 1पी 3421 को चलाने का वैध व प्रभावी अनुज्ञापत्र नहीं होने के बावजूद भी उसके द्वारा बस को चलाया जा रहा था एवं इस तथ्य का ज्ञान अप्रार्थी सं. 2 वाहन स्वामी को होने के बावजूद भी उसके द्वारा विपक्षी सं. 1 को बस चलाने हेतु दी गई ऐसी स्थिति में बीमा पालिसी प्रदर्श एन. ए.1 की शर्तों की उल्लंघन कारित होने से बीमा कम्पनी को प्रतिकर अदायगी हेतु उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है, विशेष रूप से उस परिस्थिति में जबकि बीमा कम्पनी द्वारा जो बीमा की फार्म नम्बर 51 के तहत सवारियों की क्षमता बताई गई है, वह 22 बताई गई है, उसमें क्षमता से अधिक बच्चों को गलत तरीके से उक्त वाहन में विपक्षी सं. 2 के प्रधानाचार्य प्रिंसिपल सहित विपक्षी सं. 2 की जानकारी में विपक्षी सं. 1 के द्वारा स्कूली बच्चों को ले जाया जा रहा था, जो कि बीमा पालिसी की शर्तों के विरुद्ध था । इस तथ्य की बखूबी जानकारी विपक्षी सं. 1 व 2 को थी कि उनके द्वारा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन किया जा रहा है, ऐसी स्थिति में बीमा कम्पनी विपक्षी सं. 3 को जानबूझकर किए गए कृत्य और अनुज्ञप्ति के ना होने के कारण उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है । अतः यह विवाद्यक अप्रार्थी सं. 3 बीमा कम्पनी के पक्ष में निर्णीत किया जाता है ।"

6. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । विद्वान् अधिकरण के निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने के उपरान्त मैं यह पाता हूं कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करते हुए अपना निर्णय पारित किया है, जो पूर्णतया विधिसम्मत है एवं जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है ।

7. अतः अपीलार्थी शिवराज सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2678/2011 एवं अपीलार्थी योगेश कुमार सैनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 5314/2011 निरस्त की जाती है । अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) क्रम संख्या-6, जयपुर नगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय तारीख 10 फरवरी, 2011 की पुष्टि की जाती है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

मही./मह.

राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन

बनाम

रामास्वामी व अन्य

तारीख 24 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क, 166 और 173 – दुर्घटना – मृत्यु – प्रतिकर के लिए दावा – अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील – जहां निचले न्यायालय ने अपना निर्णय पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के सही मूल्यांकन के आधार पर पारित किया हो वहां आक्षेपाधीन निर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से यह सिविल विविध अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश फास्ट ट्रेक), दौसा द्वारा पारित निर्णय दिनांक 3 मार्च, 2008 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 4,57,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं पर ध्यान नहीं दिया । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है । उनका कथन है कि मृतक मुरुगन हेल्पर की मृत्यु जे.सी.बी के पास काम करते हुए रोडवेज से दुर्घटना में मृत्यु होना अंकित किया गया है जो बिल्कुल गलत है । उक्त व्यक्ति की मृत्यु आई. जे. एम. कम्पनी के ही किसी मशीनी उपकरण से हुई है और रोडवेज वाहन बिल्कुल गलत तरीके से फंसाया गया है । इसके विपरीत प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है । उनका तर्क है कि क्लेमेन्ट्स को जो क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई है वह उपयुक्त है । विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है, जो पूर्णतया विधिसम्मत है एवं जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का न्यायालय कोई आधार नहीं पाता है । (पैरा 4, 5 और 6)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की एकलपीठ सिविल विविध अपील सं. 1668.

मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 3 मार्च, 2008 को पारित आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वीरेन्द्र अग्रवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री आशुतोष भाटिया

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से यह सिविल विविध अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश फास्ट ट्रेक), दौसा द्वारा पारित निर्णय दिनांक 3 मार्च, 2008 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 4,57,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया ।

2. प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स ने अधिकरण के समक्ष क्लेम याचिका इन तथ्यों के साथ प्रस्तुत की कि दिनांक 12 सितम्बर, 2006 को राजपूताना होटल, पीपलखेड़ा के पास रोड के साइड में जे.सी.बी. खड़ी थी, हेल्पर मुरुगन उक्त जे.सी.बी. मशीन के पास काम कर रहा था । समय करीब 3.30 पी.एम. पर जयपुर की तरफ से एक बस नम्बर आर जे 05 पी 1299 को उसका चालक बहुत तेज गति, गफलत व लापरवाही से चलाकर लाया और जे.सी.बी. के पास साइड में हेल्पर के फुटपाथ पर साइड दबाकर टक्कर मारी, जिससे मुरुगन के शरीर पर जगह-जगह गंभीर चोटें आईं और दौराने इलाज दिनांक 13 सितम्बर, 2006 को उसकी एम.एम.एस. अस्पताल, जयपुर में मृत्यु हो गई । इसकी प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 252/2006 पुलिस थाना महवा पर दर्ज कराई गई, जिसमें चालान पेश किया गया । क्लेमेन्ट्स ने क्षतिपूर्ति स्वरूप 32,71,000/- रुपए दिलाए जाने की प्रार्थना की ।

3. प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स द्वारा प्रस्तुत क्लेम याचिका के नोटिस याचिका के विपक्षीगण को जारी किए गए । विपक्षीगण की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें क्लेम याचिका के तथ्यों से इनकार करते हुए याचिका खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर पांच विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान्

मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश फास्ट ट्रेक), दौसा द्वारा पारित निर्णय दिनांक 3 मार्च, 2008 के द्वारा प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 4,57,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से यह सिविल विविध अपील इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर अपीलाधीन निर्णय को अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई है ।

4. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं पर ध्यान नहीं दिया । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं कर अपना निर्णय पारित किया है । उनका कथन है कि मृतक मुरुगन हेल्पर की मृत्यु जे.सी.बी के पास काम करते हुए रोडवेज से दुर्घटना में मृत्यु होना अंकित किया गया है जो बिल्कुल गलत है । उक्त व्यक्ति की मृत्यु आई.जे.एम. कम्पनी के ही किसी मशीनी उपकरण से हुई है और रोडवेज वाहन बिल्कुल गलत तरीके से फंसाया गया है ।

5. इसके विपरीत प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है । उनका तर्क है कि क्लेमेन्ट्स को जो क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई है वह उपयुक्त है ।

6. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्ता के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण करने के उपरान्त अपना निर्णय पारित किया है, जो पूर्णतया विधिसम्मत है एवं जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का मैं कोई आधार नहीं पाता हूं ।

7. अतः अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत यह सिविल विविध अपील निरस्त की जाती है । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण (अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश फास्ट ट्रेक), दौसा द्वारा पारित निर्णय दिनांक 3 मार्च, 2008 की पुष्टि की जाती है । अपील के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र भी निरस्त किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

मेहर सिंह

बनाम

प्रकाश देवी और अन्य

तारीख 21 मार्च, 2011

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 – द्वितीय अपील – अपील के लंबन के दौरान पक्षकार की मृत्यु – विधिक प्रतिनिधि को पक्षकार न बनाया जाना – प्रभाव – ऐसी अपील उपशमित किए जाने योग्य होगी ।

प्रत्यर्थियों ने यह आवेदन फाइल किया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 राजिन्दर सिंह की वर्ष 2002 में मृत्यु हो गई थी और उसने अपने पीछे विधवा पत्नी और पांच पुत्रियां छोड़ी हैं, जो मृतक राजिन्दर सिंह की उत्तराधिकारी हैं । तारीख 17 अक्तूबर, 2010 को, राजिन्दर सिंह का नाम अपीलार्थियों की ओर से किए गए इस कथन के आधार पर हटा दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 3 गुरचरण सिंह और प्रत्यर्थी सं. 4 दिलबाग सिंह जो प्रत्यर्थी सं. 2 राजिन्दर सिंह के भाई हैं, पहले से ही अभिलेख पर दर्ज हैं और इसलिए राजिन्दर सिंह के हक को पर्याप्ततः प्रतिनिधित्व मिल रहा है । राजिन्दर सिंह का नाम उचित कारणों के आधार पर हटा दिया गया था । प्रत्यर्थी सं 1,3 और 4 की ओर से यह दलील दी गई है कि चूंकि मृतक राजिन्दर सिंह के विधिक प्रतिनिधियों को नियत अवधि के भीतर अभिलेख पर पक्षकार नहीं बना गया है इसलिए अपील उपशमित हो गई है । आवेदन मंजूर करके अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मृतक-प्रत्यर्थी राजिन्दर सिंह ने अपने पीछे अपनी विधवा और पांच पुत्रियां छोड़ी हैं । गुरचरण सिंह और दिलबाग सिंह मृतक राजिन्दर सिंह के भाई हैं किन्तु वे राजिन्दर सिंह की विधवा और पुत्रियों के रहते राजिन्दर सिंह के कैसे वारिस हो सकते हैं । अपीलार्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि गुरचरण सिंह और दिलबाग सिंह राजिन्दर सिंह की संपदा में सहभागी हैं । इस प्रकार किसी भी दृष्टि से राजिन्दर सिंह की विधवा और पुत्रियों के होते हुए गुरचरण सिंह और दिलबाग सिंह अपील में

राजिन्दर सिंह की संपदा के लिए दावा नहीं कर सकते । मृतक राजिन्दर सिंह की जीवित विधवा और पुत्रियों को अभिलेख पर पक्षकार नहीं बनाया गया है । जहां तक मृतक राजिन्दर सिंह का संबंध है, तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल के संबंध में दोनों निचले न्यायालयों के निष्कर्ष अभिलेख पर राजिन्दर सिंह के विधिक प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में अंतिमता प्राप्त कर चुके हैं । इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि यदि द्वितीय अपील गुण-दोष पर सुनी जाती है तो तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल की विधिमान्यता को द्वितीय अपील में कायम रखने से विरोधाभासी निर्णय की संभावना हो सकती है जो कि संभव नहीं है क्योंकि मृतक राजिन्दर सिंह की विधवा और पुत्रियों को अभिलेख पर पक्षकार नहीं बनाया गया है । मृतक राजिन्दर सिंह के विधिक प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में अपील चलने योग्य नहीं है । अपील का स्वयं ही उपशमन हो जाता है । इससे इनकार नहीं किया गया है कि राजिन्दर सिंह की वर्ष 2002 में मृत्यु हुई थी और उसके वारिसों अर्थात् जीवित विधवा और पुत्रियों को अभिलेख पर पक्षकार नहीं बनाया गया है । उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए, आवेदन स्वीकार किया जाता है और अपील उपशमित होने के रूप में खारिज की जाती है । (पैरा 6, 7 और 8)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 145 और 2011 की नियमित द्वितीय अपील सं. 188.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन नियमित द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एन. के. ठाकुर

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री रजनीश मानिकलाला

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह – प्रत्यर्थियों ने यह आवेदन फाइल किया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 राजिन्दर सिंह की वर्ष 2002 में मृत्यु हो गई थी और उसने अपने पीछे विधवा पत्नी और पांच पुत्रियां छोड़ी हैं, जो मृतक राजिन्दर सिंह की उत्तराधिकारी हैं । तारीख 17 अक्तूबर, 2010 को राजिन्दर सिंह का नाम अपीलार्थियों की ओर से किए गए इस कथन के आधार पर हटा दिया गया कि प्रत्यर्थी सं. 3 गुरचरण सिंह और प्रत्यर्थी सं. 4 दिलबाग सिंह जो प्रत्यर्थी सं. 2 राजिन्दर सिंह के भाई हैं, पहले से ही अभिलेख पर दर्ज हैं और इसलिए राजिन्दर सिंह के हक को पर्याप्ततः

प्रतिनिधित्व मिल रहा है । राजिन्दर सिंह का नाम उचित कारणों के आधार पर हटा दिया गया था । प्रत्यर्थी सं 1, 3 और 4 की ओर से यह दलील दी गई है कि चूंकि मृतक राजिन्दर सिंह के विधिक प्रतिनिधियों को नियत अवधि के भीतर अभिलेख पर पक्षकार नहीं बना गया है इसलिए अपील उपशमित हो गई है ।

2. अपीलार्थी ने कोई उत्तर फाइल नहीं किया है किन्तु मौखिक रूप से अपीलार्थी ने यह अभिकथन किया है कि मृतक राजिन्दर सिंह के हक का उसके भाइयों गुरचरण सिंह और दिलबाग सिंह द्वारा प्रतिनिधित्व किया जा रहा है इसलिए अपील उपशमित नहीं हुई है ।

3. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया । अपील के उपशमन के प्रश्न के बारे में मूल्यांकन करने के लिए यह उपदर्शित करना सुसंगत है कि प्रकाश देवी, राजिन्दर सिंह, गुरचरण सिंह और दिलबाग सिंह ने तारीख 30 मार्च, 1988 की विल के आधार पर प्रथम वादी के पिता मृतक प्रीतम सिंह और शेष वादियों के दादा की संपदा पर दावा करते हुए वाद फाइल किया था । वाद मेहर सिंह और मुख्तयार देवी के विरुद्ध फाइल किया गया था । मेहर सिंह ने वाद का विरोध किया और तारीख 30 मार्च, 1988 की विल के निष्पादन से इनकार किया तथा प्रीतम सिंह द्वारा अपने पक्ष में तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल का निष्पादन करने का अभिवाक् किया ।

4. विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि तारीख 30 मार्च, 1988 की विल को तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल द्वारा रद्द कर दिया गया था तथापि, तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल असली और विधिमान्य विल नहीं है । विचारण न्यायालय ने तारीख 8 जून, 1993 को वाद खारिज कर दिया । प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 22 फरवरी, 2000 को तारीख 8 जून, 1993 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की । अतः प्रतिवादी सं. 1 मेहर सिंह ने द्वितीय अपील फाइल की है ।

5. वादी के रूप में मृतक राजिन्दर सिंह का पक्षकथन यह था कि तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल अस्वाभाविक थी और धोखे से तथा अनुचित प्रभाव के कारण कराई गई थी । अपीलार्थी/प्रतिवादी सं. 1 मेहर सिंह का वाद संपत्ति में कोई अधिकार, हक या हित नहीं है । मेहर सिंह ने अपने पक्ष में प्रीतम सिंह की तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल प्रस्तुत की है । इस विल को दोनों निचले न्यायालयों द्वारा असली नहीं ठहराया

गया है और दोनों निचले न्यायालयों के ये निष्कर्ष विद्यमान हैं ।

6. मृतक-प्रत्यर्थी राजिन्दर सिंह ने अपने पीछे अपनी विधवा और पांच पुत्रियां छोड़ी हैं । गुरचरण सिंह और दिलबाग सिंह मृतक राजिन्दर सिंह के भाई हैं किन्तु वे राजिन्दर सिंह की विधवा और पुत्रियों के रहते राजिन्दर सिंह के कैसे वारिस हो सकते हैं । अपीलार्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि गुरचरण सिंह और दिलबाग सिंह राजिन्दर सिंह की संपदा में सहभागी हैं । इस प्रकार किसी भी दृष्टि से राजिन्दर सिंह की विधवा और पुत्रियों के होते हुए गुरचरण सिंह और दिलबाग सिंह अपील में राजिन्दर सिंह की संपदा के लिए दावा नहीं कर सकते । मृतक राजिन्दर सिंह की जीवित विधवा और पुत्रियों को अभिलेख पर पक्षकार नहीं बनाया गया है ।

7. जहां तक मृतक राजिन्दर सिंह का संबंध है, तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल के संबंध में दोनों निचले न्यायालयों के निष्कर्ष अभिलेख पर राजिन्दर सिंह के विधिक प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में अंतिमता प्राप्त कर चुके हैं । इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि यदि द्वितीय अपील गुण-दोष पर सुनी जाती है तो तारीख 22 सितम्बर, 1989 की विल की विधिमान्यता को द्वितीय अपील में कायम रखने से विरोधाभासी निर्णय की संभावना हो सकती है जो कि संभव नहीं है क्योंकि मृतक राजिन्दर सिंह की विधवा और पुत्रियों को अभिलेख पर पक्षकार नहीं बनाया गया है । मृतक राजिन्दर सिंह के विधिक प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में अपील चलने योग्य नहीं है । अपील का स्वयं ही उपशमन हो जाता है । इससे इनकार नहीं किया गया है कि राजिन्दर सिंह की वर्ष 2002 में मृत्यु हुई थी और उसके वारिसों अर्थात् जीवित विधवा और पुत्रियां को अभिलेख पर पक्षकार नहीं बनाया गया है ।

8. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए, आवेदन स्वीकार किया जाता है और अपील उपशमित होने के रूप में खारिज की जाती है ।

आवेदन मंजूर करके अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

लेख राम

बनाम

सुन्दर राम और अन्य

तारीख 12 मई, 2011

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(1)(2)] – द्वितीय अपील – विवादित सम्पत्ति में उत्तराधिकार द्वारा पूर्ण स्वामित्व प्राप्त करना – समझौते द्वारा उस स्वामित्व से वंचित करना – बिना स्वामित्व के विवादित सम्पत्ति का दान-विलेख निष्पादित करना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि तत्समय प्रवृत्त संबंधित अधिनियम के अधीन वादी ने विवादित सम्पत्ति में स्वामित्व अर्जित कर लिया है तो पक्षकारों के बीच समझौते द्वारा उसे उस स्वामित्व से वंचित नहीं किया जा सकता है और बिना स्वामित्व के अन्य व्यक्ति द्वारा उस सम्पत्ति के बारे में दान-विलेख निष्पादित करना आमुख पर ही शून्य और अविधिमान्य होगा ।

वर्तमान मामले में, श्रीमती हरदेई, प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 की हित-पूर्वाधिकारी ने घोषणा, स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश और वैकल्पिक रूप में, उस भूमि के संबंध में, जिसका सविस्तार वर्णन वादपत्र में किया गया है, अपीलार्थी, प्रत्यर्थी सं. 4 आदि के विरुद्ध कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । यह अभिवाक् किया गया कि पूर्व में भूमि संसारु प्रत्यर्थी सं. 4 श्रीमती लक्ष्मी, माता श्रीमती हरदेई, जिसका विवाह संसारु के साथ हुआ था, द्वारा धारित थी और उनके संबंधों से श्रीमती हरदेई का जन्म हुआ था । तारीख 15 दिसम्बर, 1975 को संसारु ने सुखराम के पक्ष में रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा 10 बीघा जमीन विक्रय की थी और इस प्रभाव के नामांतरण की मंजूरी तारीख 22 जून, 1977 को ली गई थी । संसारु ने पुनः 3 बीघा 6 बिस्वा भूमि रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा तारीख 9 जनवरी, 1976 को कुतबुद्दीन के पक्ष में विक्रय की । उसने 34 बीघा 2 बिस्वा भूमि, जिसका वर्णन वादपत्र में किया गया है, जो वाद भूमि है, के संबंध में अपीलार्थी के पक्ष में एक रजिस्ट्रीकृत दान-विलेख भी निष्पादित की । श्रीमती हरदेई ने यह दावा करते हुए एक वाद फाइल किया कि वह

वाद भूमि में 11 बीघा 17 बिस्वा भूमि के संयुक्त कब्जे सहित स्वामी है । संसारु, वाद भूमि में 22 बीघा 5 बिस्वा तक की भूमि में संयुक्त कब्जे सहित स्वामी था । उसने दान को इस आधार पर चुनौती दी कि उसकी माता (श्रीमती लक्ष्मी) संसारु की वैधतः विवाहित पत्नी थी । श्रीमती लक्ष्मी ने संसारु के विरुद्ध भरणपोषण के लिए एक आवेदन फाइल किया था जिसमें न्याय पंचायत के समक्ष एक समझौता हुआ था । संसारु ने श्रीमती लक्ष्मी के पूर्व मौजूद भरणपोषण के अधिकार के बदले में 2 कमरे वाले कच्चे मकान के साथ वाद भूमि में कब्जे को भी विभाजित किया था । श्रीमती लक्ष्मी की वाद भूमि पर पूर्ण स्वामित्व अर्जित करने के पश्चात् तारीख 24 जनवरी, 1977 को मृत्यु हो गई थी । यह अभिकथित किया गया कि श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती हरदेई, श्रीमती लक्ष्मी के हिस्से की सीमा तक वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी हो गई थी । यह अभिकथित किया गया कि वाद भूमि पर संसारु का कब्जा, यदि कोई था, तो वह मात्र एक अनुज्ञप्तिधारी के रूप में था और इसलिए, श्रीमती हरदेई ने घोषणा के लिए यह वाद फाइल किया था कि वह 34 बीघा 2 बिस्वा भूमि में से 11 बीघा 17 बिस्वा वाद भूमि की संयुक्त कब्जे सहित स्वामी है । उसने व्यादेश का पारिणामिक अनुतोष की भी प्रार्थना की थी । अपीलार्थी द्वारा वाद का विरोध किया गया था । उसने असंयोजन, परिसीमा अवधि, वाद कायम रखने, प्राग न्याय, वाद हेतुक का प्रारम्भिक आक्षेप उठाया । उसने इस बात से इनकार किया कि श्रीमती हरदेई का जन्म संसारु के साथ श्रीमती लक्ष्मी देवी के साथ संबंधों से हुआ था, इसके बजाय उसने यह आधार लिया कि संसारु द्वारा समझौते में श्रीमती लक्ष्मी को कोई भूमि नहीं दी गई थी । उसने यह पक्षकथन किया कि वह वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है । श्रीमती हरदेई ने पूर्व में भी एक वाद फाइल किया था जो प्रत्याहृत कर ली गई । प्रत्युत्तर फाइल किया गया था जिसमें अपीलार्थी की प्रतिरक्षा का विरोध किया गया था और वादपत्र में किए गए पक्षकथन को पुनः दोहराया गया था । पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर विवाद्यक विरचित किए गए थे । विवाद्यक सं. 1 अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित हुआ था । विवाद्यक सं. 2 से 6 नकारात्मक थे, विवाद्यक सं. 7 से 9 भी वादी के पक्ष में विनिश्चित हुआ था । विद्वान् ज्येष्ठ न्यायाधीश ने तारीख 9 अप्रैल, 1990 के निर्णय द्वारा यह घोषणा की थी कि श्रीमती हरदेई उस वाद भूमि के 34 बीघा 2 बिस्वा में से 5 बीघा 18 बिस्वा भूमि पर अपीलार्थी के साथ संयुक्त कब्जे सहित स्वामी थी जो प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा अपीलार्थी को दान दिया गया था । श्रीमती हरदेई के

शेष दावों को खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी ने 1990 की सिविल अपील सं. 27 फाइल की और श्रीमती हरदेई ने तारीख 9 अप्रैल, 1990 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध 1990 की सिविल अपील सं 44 फाइल की । विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 18 अगस्त, 1999 को दोनों अपीलें खारिज कर दी गईं । अपीलार्थी लेखराम ने 1990 की सिविल अपील सं. 27 में तारीख 18 अगस्त, 1999 के निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का भी परिशीलन किया । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि दोनों निचले न्यायालयों ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(1)(2) का निर्वचन करने के संबंध में विधिक प्रास्थिति का समुचित तौर पर विवेचन नहीं किया । विवादित भूमि अभिकथित तौर पर श्रीमती लक्ष्मी को समझौता प्रदर्श आर-23 द्वारा दिया गया था जो तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश प्रदर्श आर-22 में आमेलित हो गया था । प्रदर्श आर-22 और प्रदर्श आर-23 में, यह उपबंध किया गया है कि श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति प्रत्यर्थी सं. 4 को वापस लौट जाएगी । इन परिस्थितियों में, निचले न्यायालयों ने निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की है कि श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् उसकी पुत्री श्रीमती हरदेई 5 बीघा 18 बिस्वा भूमि की हकदार हो गई है । श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु तारीख 24 जनवरी, 1977 को हो गई थी जबकि वाद तारीख 31 मई, 1988 को फाइल किया गया था और इसलिए, वाद परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था । इसके विपरीत, प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि दोनों निचले न्यायालयों ने यह समवर्ती रूप से अभिनिर्धारित किया है कि श्रीमती लक्ष्मी की भरणपोषण के पूर्व मौजूद अधिकार थे जिसे समझौता प्रदर्श आर-23 और न्याय पंचायत के तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश प्रदर्श आर-22 में मान्यता प्रदान की गई थी । अधिनियम को ध्यान में रखते हुए, वाद भूमि में श्रीमती लक्ष्मी के सीमित अधिकार पूर्व स्वामित्व अधिकार में परिवर्तित हो गए थे और श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती हरदेई ने उन अधिकारों को उत्तराधिकार में प्राप्त कर लिया । प्रत्यर्थी सं. 4 को विवादित भूमि में लक्ष्मी देवी के हिस्से के बारे में जो बाद में श्रीमती हरदेई द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त कर लिया था, को अपीलार्थी के पक्ष में तारीख 5 मार्च, 1982 का दान-विलेख निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था । विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1, 2 और 4 पर

सुविधाजनक रूप से एक साथ विचार किया जा सकता है, इसलिए, इन विधि के सारवान् प्रश्नों पर विचार करने के लिए इन्हें एक साथ लिया जाता है । अभिलेख पर यह साबित किया गया है कि श्रीमती लक्ष्मी देवी का विवाह प्रत्यर्थी सं. 4 के साथ हुआ था और प्रत्यर्थी सं. 4 से संबंधों के कारण श्रीमती लक्ष्मी देवी से श्रीमती हरदेई का जन्म हुआ था । श्रीमती लक्ष्मी देवी ने प्रत्यर्थी सं. 4 के विरुद्ध भरणपोषण के लिए न्याय पंचायत के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था जिसमें प्रदर्श आर-23 द्वारा एक समझौता हुआ था और उस समझौते के आधार पर न्याय पंचायत ने तारीख 8 मार्च, 1961 को एक आदेश उपाबंध आर-22 पारित किया था । समझौता प्रदर्श आर-23 के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि श्रीमती लक्ष्मी के भरणपोषण के पूर्व मौजूद अधिकार को समझौते में मान्यता प्रदान की गई थी और उसके बाद प्रदर्श आर-22 के आधार पर तारीख 8 मार्च, 1961 को एक आदेश प्रदर्श आर-22 पारित किया गया था । निःसंदेह, समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश में यह अभिलिखित किया गया है श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् प्रश्नगत भूमि प्रत्यर्थी सं. 4 को वापस लौट जाएगी । किन्तु समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश में अभिलिखित इस शर्त का कोई परिणाम नहीं है जहां तक कि यह श्रीमती लक्ष्मी के अधिकारों से संबंधित है क्योंकि श्रीमती लक्ष्मी समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश के निष्पादन के तत्काल पश्चात् अधिनियम की धारा 14(1) के अधीन सम्पत्ति की पूर्ण स्वामी हो गई थी । वर्तमान मामले में, अभिलेख पर यह सिद्ध कर दिया गया है कि श्रीमती लक्ष्मी के पक्ष में अधिकार प्रथम बार समझौते या तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश द्वारा सृजित नहीं किए गए थे बल्कि श्रीमती लक्ष्मी के भरणपोषण के पूर्व-मौजूद अधिकार को समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश द्वारा मान्यता दी गई थी । प्रदर्श पी-25 की सुसंगतता के बारे में, वाद भूमि में श्रीमती लक्ष्मी के अधिकार को किसी भी पक्षकार द्वारा वर्णित नहीं किया गया है । इन परिस्थितियों में, समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश द्वारा श्रीमती लक्ष्मी के सीमित अधिकार, धारा 14(1) के अधीन पूर्ण अधिकार में परिवर्तित हो गए और इस मत में कोई त्रुटि नहीं पाई जा सकती है जिसे दोनों निचले न्यायालय द्वारा अपनाया है । प्रत्यर्थी सं. 4 को वाद भूमि में श्रीमती लक्ष्मी के हिस्से से संबंधित भूमि, जिसे बाद में श्रीमती हरदेई द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त किया गया था, को अपीलार्थी के पक्ष में तारीख 5 मार्च, 1982 का दान-विलेख निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था । यह प्रतीत होता है कि अनजाने में शीर्षक संसारु बनाम लेख राम

के अधीन 1984 के फाइल सं. 1/7 में आदेश 33 नियम (1) के अधीन आवेदन पर विचारण न्यायालय की फाइल पर प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए को रखा गया है । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए तारीख 5 मार्च, 1982 का दान-विलेख होना चाहिए । प्रतिवादी सं. 2 हरवंश के कथन में दान-विलेख प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए को अभिलेख पर लाया गया है । इसलिए, तारीख 5 मार्च, 1982 के दान-विलेख को इस निर्णय के प्रयोजन के लिए प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए के रूप में विचार किया गया । इन परिस्थितियों में, विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1, 2 और 4 अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित किए जाते हैं । वाद तारीख 31 मई, 1988 को फाइल किया गया था और यह हक पर आधारित है । वादी श्रीमती हरदेई ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा उसके हक में मंजूर अनुतोष की सीमा तक वाद भूमि पर अपना हक साबित कर दिया है । उसके लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह दान-विलेख को अपास्त करने के लिए किसी घोषणा की ईप्सा करे क्योंकि वाद में हरदेई का दावा यह है कि वह वाद भूमि में संयुक्त कब्जे सहित स्वामी है और तारीख 5 मार्च, 1982 का दान-विलेख उस पर बाध्यकारी नहीं है, क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 4 को अपीलार्थी के पक्ष में दान-विलेख निष्पादित करने का कोई अधिकार, हक या हित नहीं था । श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु तारीख 24 जनवरी, 1977 को हो गई थी, उसके बाद, वाद तारीख 31 मई, 1988 को फाइल किया गया है और इसलिए, वाद परिसीमा अवधि के भीतर है । इन परिस्थितियों में, विधि के सारवान् प्रश्न सं. 3 और 5 भी अपीलार्थियों के विरुद्ध विनिश्चित किए जाते हैं । (पैरा 7, 8, 12, 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1999]	1999 (1) एस. एल. जे. 958 : **श्रीमती बेनी बाई** बनाम **रघुबीर प्रसाद** ;	11
[1998]	(1998) 6 एस. सी. सी. 314 : **रघुबर सिंह और अन्य** बनाम **गुलाब सिंह और अन्य** ;	10
[1978]	[1978] 2 उम. नि. प. 921 = ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1944 : **वाद्देबोयिना तुलसम्मा और अन्य** बनाम **वाद्देबोयिना सेशा रेड्डी (मृत) उसके विधिक प्रतिनिधिगण** ।	9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1999 की नियमित द्वितीय अपील सं. 443.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री रमाकांत शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 की ओर से श्री ध्रुव सौनक, अधिवक्ता के साथ सुश्री रूमा कौशिक, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह – यह अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, बिलासपुर द्वारा 1990 की सिविल अपील सं. 27 में पारित तारीख 18 अगस्त, 1999 के निर्णय, डिक्री के विरुद्ध निदेशित की गई है जिसके द्वारा उन्होंने विद्वान् ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश, बिलासपुर द्वारा 1988 के वाद सं. 39/1 में पारित तारीख 9 अप्रैल, 1990 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी थी ।

2. संक्षिप्ततः तथ्य यह है कि श्रीमती हरदेई, प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 की हित-पूर्वाधिकारी ने घोषणा, स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश और वैकल्पिक रूप में, उस भूमि के संबंध में, जिसका सविस्तार वर्णन वादपत्र में किया गया है, अपीलार्थी, प्रत्यर्थी सं. 4 आदि के विरुद्ध कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । यह अभिवाक् किया गया कि पूर्व में भूमि संसारु प्रत्यर्थी सं. 4 श्रीमती लक्ष्मी, माता श्रीमती हरदेई, जिसका विवाह संसारु के साथ हुआ था, द्वारा धारित थी और उनके संबंधों से श्रीमती हरदेई का जन्म हुआ था । तारीख 15 दिसम्बर, 1975 को संसारु ने सुखराम के पक्ष में रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा 10 बीघा जमीन विक्रय की थी और इस प्रभाव के नामांतरण की मंजूरी तारीख 22 जून, 1977 को ली गई थी । संसारु ने पुनः 3 बीघा 6 बिस्वा भूमि रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा तारीख 9 जनवरी, 1976 को कुतबुद्दीन के पक्ष में विक्रय की । उसने 34 बीघा 2 बिस्वा भूमि, जिसका वर्णन वादपत्र में किया गया है, जो वाद भूमि है, के संबंध में अपीलार्थी के पक्ष में एक रजिस्ट्रीकृत दान-विलेख भी निष्पादित की ।

3. श्रीमती हरदेई ने यह दावा करते हुए एक वाद फाइल किया कि वह वाद भूमि में 11 बीघा 17 बिस्वा भूमि के संयुक्त कब्जे सहित स्वामी है । संसारु, वाद भूमि में 22 बीघा 5 बिस्वा तक की भूमि में संयुक्त कब्जे सहित स्वामी था । उसने दान को इस आधार पर चुनौती दी कि उसकी

माता (श्रीमती लक्ष्मी) संसारु की वैधतः विवाहित पत्नी थी । श्रीमती लक्ष्मी ने संसारु के विरुद्ध भरणपोषण के लिए एक आवेदन फाइल किया था जिसमें न्याय पंचायत के समक्ष एक समझौता हुआ था । संसारु ने श्रीमती लक्ष्मी के पूर्व मौजूद भरणपोषण के अधिकार के बदले में 2 कमरे वाले कच्चे मकान के साथ वाद भूमि में कब्जे को भी विभाजित किया था । श्रीमती लक्ष्मी की वाद भूमि पर पूर्ण स्वामित्व अर्जित करने के पश्चात् तारीख 24 जनवरी, 1977 को मृत्यु हो गई थी । यह अभिकथित किया गया कि श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती हरदेई, श्रीमती लक्ष्मी के हिस्से की सीमा तक वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी हो गई थी ।

4. यह अभिकथित किया गया कि वाद भूमि पर संसारु का कब्जा, यदि कोई था, तो वह मात्र एक अनुज्ञप्तिधारी के रूप में था और इसलिए, श्रीमती हरदेई ने घोषणा के लिए यह वाद फाइल किया था कि वह 34 बीघा 2 बिस्वा भूमि में से 11 बीघा 17 बिस्वा वाद भूमि की संयुक्त कब्जे सहित स्वामी है । उसने व्यादेश का पारिणामिक अनुतोष की भी प्रार्थना की थी ।

5. अपीलार्थी द्वारा वाद का विरोध किया गया था । उसने असंयोजन, परिसीमा अवधि, वाद कायम रखने, प्राग न्याय, वाद हेतुक का प्रारम्भिक आक्षेप उठाया । उसने इस बात से इनकार किया कि श्रीमती हरदेई का जन्म संसारु के साथ श्रीमती लक्ष्मी देवी के साथ संबंधों से हुआ था, इसके बजाय उसने यह आधार लिया कि संसारु द्वारा समझौते में श्रीमती लक्ष्मी को कोई भूमि नहीं दी गई थी । उसने यह पक्षकथन किया कि वह वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है । श्रीमती हरदेई ने पूर्व में भी एक वाद फाइल किया था जो प्रत्याहृत कर ली गई । प्रत्युत्तर फाइल किया गया था जिसमें अपीलार्थी की प्रतिरक्षा का विरोध किया गया था और वादपत्र में किए गए पक्षकथन को पुनः दोहराया गया था । पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

(1) क्या वाद यथाअभिकथित आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है ?

(2) क्या वादी यथाअभिकथित स्वयं अपने कार्य और आचरण द्वारा वर्तमान वाद संस्थित करने से वर्जित है ?

(3) क्या वादी को यथाअभिकथित वर्तमान वाद फाइल करने के लिए सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है ?

(4) क्या वाद वर्तमान प्ररूप में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

(5) क्या वाद प्राग न्याय के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है ?

(6) क्या वादी के पास वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं है ?

(7) क्या वाद परिसीमा अवधि के भीतर है ?

(8) क्या वादी यथाअभिकथित वाद भूमि के स्वामी के रूप में संयुक्त कब्जे में है ?

(9) क्या प्रतिवादी यथाअभिकथित तौर पर वाद भूमि में हस्तक्षेप कर रहे हैं ?

(10) अनुतोष ।

6. विवाद्यक सं. 1 अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित हुआ था । विवाद्यक सं. 2 से 6 नकारात्मक थे, विवाद्यक सं. 7 से 9 भी वादी के पक्ष में विनिश्चित हुआ था । विद्वान् ज्येष्ठ न्यायाधीश ने तारीख 9 अप्रैल, 1990 के निर्णय द्वारा यह घोषणा की थी कि श्रीमती हरदेई उस वाद भूमि के 34 बीघा 2 बिस्वा में से 5 बीघा 18 बिस्वा भूमि पर अपीलार्थी के साथ संयुक्त कब्जे सहित स्वामी थी जो प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा अपीलार्थी को दान दिया गया था । श्रीमती हरदेई के शेष दावों को खारिज कर दिया गया था । अपीलार्थी ने 1990 की सिविल अपील सं. 27 फाइल की और श्रीमती हरदेई ने तारीख 9 अप्रैल, 1990 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध 1990 की सिविल अपील सं. 44 फाइल की । विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 18 अगस्त, 1999 को दोनों अपीलें खारिज कर दी गईं । अपीलार्थी लेखराम ने 1990 की सिविल अपील सं. 27 में तारीख 18 अगस्त, 1999 के निर्णय और डिक्री को आक्षेपित किया जिसे निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्नों पर स्वीकार कर लिया गया :–

(1) क्या निचले न्यायालय द्वारा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(1) और 14(2) के क्षेत्र पर निर्वचन सही है और क्या निचले न्यायालय वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 14(1) के उपबंधों को लागू करने में सही थे ?

(2) क्या चुनौतिधीन निर्णय और डिक्री दस्तावेज प्रदर्श आर-22, आर-23 और आर-25 पर विचार नहीं करने के परिणामस्वरूप हैं ?

(3) क्या विचारण न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही था कि वाद परिसीमा अवधि के भीतर है और वादी के पास वाद हेतुक था, विनिर्दिष्टतः जब श्रीमती लक्ष्मी, श्रीमती हरदेई की माता की मृत्यु तारीख 24 जनवरी, 1977 को हो गई थी और वाद तारीख 31 मई, 1988 को फाइल किया गया था ?

(4) क्या निर्णय और डिक्री निचले अपील न्यायालय द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य के साथ ही मौखिक साक्ष्य पर विचार नहीं करने की परिणामस्वरूप थीं ?

(5) क्या निचला अपील न्यायालय, अपीलार्थी के पक्ष में निष्पादित तारीख 5 मार्च, 1982 के दान-विलेख दस्तावेज प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए पर विचार नहीं करने में सही है और यह तथ्य कि क्या तारीख 31 मई, 1988 को फाइल वाद आमुख पर ही परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था ?

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का भी परिशीलन किया । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि दोनों निचले न्यायालयों ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 14(1)(2) का निर्वचन करने के संबंध में विधिक प्रास्थिति का समुचित तौर पर विवेचन नहीं किया । विवादित भूमि अभिकथित तौर पर श्रीमती लक्ष्मी को समझौता प्रदर्श आर-23 द्वारा दिया गया था जो तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश प्रदर्श आर-22 में आमेलित हो गया था । प्रदर्श आर-22 और प्रदर्श आर-23 में, यह उपबंध किया गया है कि श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति प्रत्यर्थी सं. 4 को वापस लौट जाएगी । इन परिस्थितियों में, निचले न्यायालयों ने निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की है कि श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् उसकी पुत्री श्रीमती हरदेई 5 बीघा 18 बिस्वा भूमि की हकदार हो गई है । श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु तारीख 24 जनवरी, 1977 को हो गई थी जबकि वाद तारीख 31 मई, 1988 को फाइल किया गया था और इसलिए, वाद परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था । इसके विपरीत, प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि दोनों निचले न्यायालयों ने यह समवर्ती रूप से अभिनिर्धारित किया है कि श्रीमती लक्ष्मी की भरण-पोषण के पूर्व मौजूद अधिकार थे जिसे समझौता प्रदर्श आर-23 और न्याय पंचायत के तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश प्रदर्श आर-22 में मान्यता प्रदान की गई थी । अधिनियम को ध्यान में रखते हुए, वाद भूमि में

श्रीमती लक्ष्मी के सीमित अधिकार पूर्व स्वामित्व अधिकार में परिवर्तित हो गए थे और श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती हरदेई ने उन अधिकारों को उत्तराधिकार में प्राप्त कर लिया । प्रत्यर्थी सं. 4 को विवादित भूमि में लक्ष्मी देवी के हिस्से के बारे में जो बाद में श्रीमती हरदेई द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त कर लिया था, को अपीलार्थी के पक्ष में तारीख 5 मार्च, 1982 का दान-विलेख निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था ।

8. विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1, 2 और 4 पर सुविधाजनक रूप से एक साथ विचार किया जा सकता है, इसलिए, इन विधि के सारवान् प्रश्नों पर विचार करने के लिए इन्हें एक साथ लिया जाता है । अभिलेख पर यह साबित किया गया है कि श्रीमती लक्ष्मी देवी का विवाह प्रत्यर्थी सं. 4 के साथ हुआ था और प्रत्यर्थी सं. 4 से संबंधों के कारण श्रीमती लक्ष्मी देवी से श्रीमती हरदेई का जन्म हुआ था । श्रीमती लक्ष्मी देवी ने प्रत्यर्थी सं. 4 के विरुद्ध भरणपोषण के लिए न्याय पंचायत के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था जिसमें प्रदर्श आर-23 द्वारा एक समझौता हुआ था और उस समझौते के आधार पर न्याय पंचायत ने तारीख 8 मार्च, 1961 को एक आदेश उपाबंध आर-22 पारित किया था । समझौता प्रदर्श आर-23 के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि श्रीमती लक्ष्मी के भरणपोषण के पूर्व मौजूद अधिकार को समझौते में मान्यता प्रदान की गई थी और उसके बाद प्रदर्श आर-22 के आधार पर तारीख 8 मार्च, 1961 को एक आदेश प्रदर्श आर-22 पारित किया गया था । निःसंदेह, समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश में यह अभिलिखित किया गया है श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् प्रश्नगत भूमि प्रत्यर्थी सं. 4 को वापस लौट जाएगी । किन्तु समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश में अभिलिखित इस शर्त का कोई परिणाम नहीं है जहां तक कि यह श्रीमती लक्ष्मी के अधिकारों से संबंधित है क्योंकि श्रीमती लक्ष्मी समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश के निष्पादन के तत्काल पश्चात् अधिनियम की धारा 14(1) के अधीन सम्पत्ति की पूर्ण स्वामी हो गई थी ।

9. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **वाद्देबोयिना तुलसम्मा और अन्य** बनाम **वाद्देबोयिना सेशा रेड्डी (मृत) उसके विधिक प्रतिनिधिगण**[1] वाले मामले में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(1)(2) के निर्वचन के बारे में निम्नलिखित संक्षिप्त निष्कर्ष निकाला है :–

---

[1] [1978] 2 उम. नि. प. 921 = ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1944.

"70. अब हम उन विधिक निष्कर्षों का सारांश देंगे जिन पर हम इस अपील में अन्तर्वलित विधि संबंधी प्रश्न पर ऊपर वर्णित नजीरों पर विस्तारपूर्वक विचार करने के पश्चात् पहुंचे हैं और जिनका संबंध 1956 वाले अधिनियम की धारा 14(1) और (2) के निर्वचन से है । इन निष्कर्षों को यहां इस प्रकार दिया जा सकता है –

(1) भरणपोषण के संबंध में हिन्दू नारी का अधिकार औपचारिकता मात्र नहीं है और न ही कोई भ्रामक दावा है जिसे सौजन्य और उदारता की दृष्टि से स्वीकार किया जा रहा है बल्कि वह एक वास्तविक अधिकार है जो सम्पत्ति के बारे में माना गया है और जो कि पति और पत्नी के बीच नैतिक संबंध से उद्भूत होता है और शुद्ध शास्त्रीय हिन्दू विधि द्वारा अनुज्ञात तथा व्यादिष्ट किया गया है और जिस पर पूर्वतर हिन्दू विधि शास्त्रीयों, याज्ञवलक्य से लेकर मनु तक द्वारा भी जोर दिया जाता रहा है । हो सकता है कि ऐसा अधिकार सम्पत्ति के संबंध में अधिकार न हो किन्तु यह सम्पत्ति के विरुद्ध अधिकार है और पति को यह वैयक्तिक बाध्यता है कि वह अपनी पत्नी का भरणपोषण करे और यदि उसके पास या उसके कुटुम्ब के पास कोई सम्पत्ति है तो नारी को यह विधिक अधिकार प्राप्त है कि उसका भरणपोषण उसमें से किया जाए । यदि किसी नारी के भरणपोषण के लिए किसी प्रभार की सृष्टि की जाती है तो उक्त अधिकार विधिक रूप से प्रवर्तनीय बन जाता है । चाहे जो भी हो प्रभार के बिना भी भरणपोषण के लिए दावा निस्संदेह एक पूर्व विद्यमान अधिकार है इसलिए कोई भी अन्तरण, जिसमें यह घोषणा या अभिज्ञान किया गया हो कि ऐसा अधिकार विद्यमान है, किसी नए हक को प्रदान नहीं करता है बल्कि वह केवल पूर्व विद्यमान अधिकार को स्वीकार या अभिपुष्ट करता है ।

(2) धारा 14(1) और उसका स्पष्टीकरण अधिकतम व्यापक शब्दों में लिखे गए हैं और उनका अर्थान्वयन नारी के पक्ष में उदारता से किया जाना चाहिए ताकि 1956 वाले अधिनियम के उद्देश्य को अग्रसर किया जा सके और उन सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को अग्रसर किया जा सके जिन्हें प्राप्त करना इस चिर प्रतीक्षित विधान का कार्य है ।

(3) धारा 14 की उपधारा (2) एक परन्तुक के रूप में है और इसका स्वयं अपना क्षेत्र है और तात्विक रूप से धारा 14(1) के

प्रवर्तन पर इसका कोई हस्तक्षेप नहीं है । परन्तुक का अर्थान्वयन ऐसी रीति में नहीं किया जाना चाहिए कि उससे मुख्य उपबंध का प्रभाव अथवा धारा 14(1) द्वारा प्रदत्त रक्षोपाय विनष्ट हो जाए अथवा निर्वचन किसी ऐसी रीति में भी नहीं किया जाना चाहिए कि वह सर्वथा मुख्य उपबंध के विसंगत हो जाए ।

(4) धारा 14 की उपधारा (2) ऐसी लिखतों, डिक्रियों, पंचाटों, दानों आदि को लागू होती हैं जो पहली बार नारी के पक्ष में स्वतंत्र तथा नए हक सृष्ट करते हैं और यह वहां लागू नहीं होती है जहां कि संबद्ध लिखत पूर्व विद्यमान अधिकारों की पुष्टि, समर्थन, घोषणा या अभिज्ञान मात्र करती हो । ऐसे मामलों में किसी नारी के पक्ष में कोई निर्बंधित सम्पदा विधिक रूप से अनुज्ञेय है और धारा 14(1) इस क्षेत्र में लागू नहीं होगी । किन्तु जहां कोई लिखत केवल किसी पूर्व विद्यमान अधिकार की घोषणा करती है या उसे अभिज्ञात करती है जैसा कि भरणपोषण के लिए दावा या विभाजन या हिस्सा, जिसके बारे में नारी हकदार है, वहां यह उपधारा बिल्कुल लागू नहीं होती और नारी का सीमित हित स्वतः धारा 14(1) के बल पर आत्यन्तिक रूप धारण कर लेगा और यदि कोई निर्बंधन दस्तावेज के अधीन अधिरोपित किए गए हों तो उन्हें नजर-अंदाज करना होगा । इस प्रकार जहां कोई सम्पत्ति किसी नारी को भरणपोषण के बदले में आबंटित या अन्तरित की जाती है या विभाजन पर उसे कोई हिस्सा दिया जाता है वहां लिखत को उपधारा (2) की परिधि से बाहर रखा जाएगा और अन्तरिती की शक्तियों पर अधिरोपित किन्हीं निर्बंधनों के बावजूद धारा 14(1) द्वारा वह शासित होगी ।

(5) धारा 14(1) के स्पष्टीकरण और 'विभाजन के समय हिन्दू नारी द्वारा अर्जित सम्पत्ति' या 'भरणपोषण के बदले में' या 'भरणपोषण की बकाया' इत्यादि अभिव्यक्त निर्बंधनों का प्रयोग स्पष्ट रूप से उपधारा (2) को इन कोटियों को लागू नहीं रहने देता है जो कि अभिव्यक्त रूप से उपधारा (2) के प्रवर्तन से निकाल दी गई हैं ।

(6) धारा 14(1) में विधान-मण्डल द्वारा प्रयुक्त 'के कब्जे में की' (पजेस्ड बाई) शब्दों का अत्यन्त व्यापक विस्तार है और उनके अन्तर्गत सम्पत्ति का स्वामित्व रखने की अवस्था भी आती है भले ही स्वामी का उस पर नैसर्गिक या वास्तविक कब्जा न हो । इस प्रकार जहां कोई विधवा 1956 वाले अधिनियम के पारित किए जाने से पूर्व

या तत्समय आरम्भिक डिक्री के अधीन सम्पत्ति का कब्जा प्राप्त करती है किन्तु उसे अन्त में डिक्री के अधीन वास्तविक कब्जा नहीं दिया गया है वहां सम्पत्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि वह उसके कब्जे में है और धारा 14(1) के बल स्वरूप वह सम्पत्ति पर पूर्ण हित धारण करेगी । यह भी सुस्थिर है कि विधवा का कब्जा किसी दावे के अधिकार या हक के आधार पर ही होना चाहिए क्योंकि इस आधार में यह अनुध्यात नहीं है कि कोई भी व्यक्ति किसी अधिकार या हक के बिना अतिचारी के रूप में कब्जा धारण कर सकता है ।

(7) धारा 14(2) में प्रयुक्त 'निर्बंधित संपदा' शब्द 'सीमित हित' शब्दों से अधिक व्यापक है जैसा कि धारा 14(1) में उपदर्शित किया गया है और उनमें न केवल सीमित हित आता है बल्कि किसी प्रकार की ऐसी परिसीमा भी आ जाती है जो कि अन्तरिती पर अधिरोपित की जाए ।"

10. **रघुबर सिंह और अन्य** बनाम **गुलाब सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"24. तद्नुसार, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि एक हिन्दू स्त्री के भरणपोषण का अधिकार पति और पत्नी के बीच सामाजिक और सांसारिक संबंधों पर निर्भर करता है और विधवा के मामले में यह अधिकार एक पूर्व मौजूद अधिकार होता है जो 1937 और 1946 के अधिनियमों को पारित करने के काफी समय पूर्व से शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन मौजूद है । उन अधिनियमों में मात्र उन्हीं प्रास्थितियों को मान्यता दी गई है जो शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन थीं और इन्हें 'कानूनी' बल दिया गया । जहां हिन्दू विधवा अपने पति की सम्पत्ति के कब्जे में है वहां उसे इसका रख-रखाव करने का अधिकार होता है और वह भरणपोषण के अपने अधिकार के बदले में उस सम्पत्ति का कब्जा बनाए रखने की हकदार होती है ।"

माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि :–

"26. अधिनियम की धारा 14(1) के प्रवर्तन द्वारा हिन्दू विधवा का सीमित हित, किसी दस्तावेज या लिखत के अधीन किसी निर्बंधन के होते हुए भी स्वतः पूर्व अधिकार में परिवर्तित हो जाता है । जहां

---

[1] (1998) 6 एस. सी. सी. 314.

तक धारा 14 की उपधारा (2) का संबंध है, यह उन लिखितों, डिक्रियों, अधिनिर्णयों, दानों आदि को लागू होता है जिसे प्रथम बार स्त्री के पक्ष में स्वतंत्र रूप से या नए हित के लिए सृजित किया जाता है । यह उन मामलों में लागू नहीं होता है जहां लिखित/ दस्तावेज में उस सम्पत्ति में उसके हिस्से या भरणपोषण के उसके पूर्व मौजूद अधिकार को या तो घोषित किया जाता है या मान्यता दिया जाता है या उसकी पुष्टि की जाती है । जैसा कि, **तुलसम्मा** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 14 की उपधारा (2) परन्तुक की प्रकृति का है और अधिनियम की धारा 14(1) के प्रवर्तन में हस्तक्षेप किए बिना इसका अपना क्षेत्र है ।"

11. **श्रीमती बेनी बाई** बनाम **रघुबीर प्रसाद**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि :–

".....धारा 14 की उपधारा (1) उन मामलों में लागू होती है जहां हिन्दू विधवा के अधिकार की पुष्टि भरणपोषण के बदले में की जाती है या उसके पूर्व मौजूद अधिकार को मान्यता दी जाती है जैसा कि शास्त्रीय हिन्दू विधि के अधीन और हिन्दू स्त्री का सम्पत्ति में अधिकार अधिनियम के अधीन उपबंधित हैं । अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (2) मात्र ऐसे मामलों में ही लागू होती है जहां प्रथम बार के लिए नए अधिकार या हक की पुष्टि मंजूर की जाती है और उक्त अधिकार की पुष्टि करते समय मंजूरी या अन्तरण द्वारा कतिपय निर्बंधन अधिरोपित किए जाते हैं ।"

12. वर्तमान मामले में, अभिलेख पर यह सिद्ध कर दिया गया है कि श्रीमती लक्ष्मी के पक्ष में अधिकार प्रथम बार समझौते या तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश द्वारा सृजित नहीं किए गए थे बल्कि श्रीमती लक्ष्मी के भरणपोषण के पूर्व-मौजूद अधिकार को समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश द्वारा मान्यता दी गई थी ।

13. प्रदर्श पी-25 की सुसंगतता के बारे में, वाद भूमि में श्रीमती लक्ष्मी के अधिकार को किसी भी पक्षकार द्वारा वर्णित नहीं किया गया है । इन परिस्थितियों में, समझौते और तारीख 8 मार्च, 1961 के आदेश द्वारा श्रीमती लक्ष्मी के सीमित अधिकार, धारा 14(1) के अधीन पूर्ण अधिकार में

---

[1] 1999 (1) एस. एल. जे. 958.

परिवर्तित हो गए और इस मत में कोई त्रुटि नहीं पाई जा सकती है जिसे दोनों निचले न्यायालय द्वारा अपनाया है । प्रत्यर्थी सं. 4 को वाद भूमि में श्रीमती लक्ष्मी के हिस्से से संबंधित भूमि, जिसे बाद में श्रीमती हरदेई द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त किया गया था, को अपीलार्थी के पक्ष में तारीख 5 मार्च, 1982 का दान-विलेख निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था । यह प्रतीत होता है कि अनजाने में शीर्षक संसारु बनाम लेख राम के अधीन 1984 के फाइल सं. 1/7 में आदेश 33 नियम (1) के अधीन आवेदन पर विचारण न्यायालय की फाइल पर प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए को रखा गया है । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए तारीख 5 मार्च, 1982 का दान-विलेख होना चाहिए । प्रतिवादी सं. 2 हरवंश के कथन में दान-विलेख प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए को अभिलेख पर लाया गया है । इसलिए, तारीख 5 मार्च, 1982 के दान-विलेख को इस निर्णय के प्रयोजन के लिए प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए के रूप में विचार किया गया । इन परिस्थितियों में, विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1, 2 और 4 अपीलार्थी के विरुद्ध विनिश्चित किए जाते हैं ।

14. वाद तारीख 31 मई, 1988 को फाइल किया गया था और यह हक पर आधारित है । वादी श्रीमती हरदेई ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा उसके हक में मंजूर अनुतोष की सीमा तक वाद भूमि पर अपना हक साबित कर दिया है । उसके लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह दान-विलेख को अपास्त करने के लिए किसी घोषणा की ईप्सा करे क्योंकि वाद में हरदेई का दावा यह है कि वह वाद भूमि में संयुक्त कब्जे सहित स्वामी है और तारीख 5 मार्च, 1982 का दान-विलेख उस पर बाध्यकारी नहीं है, क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 4 को अपीलार्थी के पक्ष में दान-विलेख निष्पादित करने का कोई अधिकार, हक या हित नहीं था । श्रीमती लक्ष्मी की मृत्यु तारीख 24 जनवरी, 1977 को हो गई थी, उसके बाद, वाद तारीख 31 मई, 1988 को फाइल किया गया है और इसलिए, वाद परिसीमा अवधि के भीतर है । इन परिस्थितियों में, विधि के सारवान् प्रश्न सं. 3 और 5 भी अपीलार्थियों के विरुद्ध विनिश्चित किए जाते हैं ।

15. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील में कोई गुणागुण नहीं है और इसे खर्चे रहित खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

न्यायालय स्वप्रेरणा से

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 14 जून, 2011

मुख्य न्यायमूर्ति कुरियन जोसफ़ और न्यायमूर्ति संजय करोल

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 17, 25 और 26 – धार्मिक स्थल – अनुसूचित जातियों, जनजातियों आदि को मंदिरों में जाने और पूजा करने का अधिकार – कथित बाबा द्वारा चलाए जा रहे बोर्ड द्वारा प्रतिषेध – चूंकि संविधान ने सभी व्यक्तियों को धर्म को मानने, पूजा आदि करने का समान रूप से अधिकार प्रदत्त किया है अतः ऐसे किसी बोर्ड द्वारा प्रतिषेध विधिविरुद्ध है – किसी व्यक्ति को उसके संवैधानिक अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता ।

यह बात न्यायालय की जानकारी में लाए जाने पर कि हिमाचल प्रदेश राज्य में एक शिव मंदिर में अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों के प्रवेश पर प्रतिषेध है, न्यायालय ने स्वप्रेरणा से वर्तमान रिट दर्ज की । तद्नुसार रिट याचिका निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – हम इक्कीसवीं शताब्दी में जी रहे हैं और प्राचीन काल से मानव जाति का लंबा सफर तय कर चुके हैं । हम एक स्वतंत्र संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष और लोकतंत्रात्मक गणराज्य में रह रहे हैं । भारत के लोगों ने संविधान को अंगीकृत किया है । भारत के लोगों ने अपने संविधान को आत्मार्पित किया है । उन्होंने सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता और समता प्राप्त करने हेतु संकल्प लिया था तथापि, हमारे समाज के कुछ सदस्य उसी पुरानी मानसिकता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं । भारत के संविधान का भाग-3 सभी के लिए अपनी श्रद्धा से धर्म को मानने के संबंध में समानता का उपबंध करता है । अनुच्छेद 17 विनिर्दिष्ट रूप से अस्पृश्यता का अंत और उसे निषिद्ध करता है तथा किसी भी रूप में ऐसे व्यवहार को निषिद्ध करता है । इसको जारी रखना एक दंडनीय अपराध है । कतिपय निर्बंधनों के अधीन अनुच्छेद 25 और 26 विनिर्दिष्ट रूप से किसी धर्म को मानने और प्रचार करने का समान रूप से अधिकार देता है । भारत के सभी व्यक्तियों को धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी दी गई

है । तथापि, हमें स्वतंत्रता प्राप्त किए 64 वर्ष हो गए हैं । एक ऐसी घटना हमारे सम्मुख लाई गई है । तथापि, हम इस बात से स्तब्ध और निराश हैं कि हमारे समक्ष ऐसी घटना लाई गई है, जैसा कि श्री कर्मचन्द भाटिया, प्रधान संत श्री रविदास धर्म सभा, शिमला द्वारा तारीख 19 अप्रैल, 2011 को लिखे पत्र द्वारा हमें यह सूचित किया गया कि एक ऐसे राज्य में जो कि "देव-भूमि" के नाम से ज्ञात है, शिव मंदिर में अनुसूचित जातियों का प्रवेश प्रतिषिद्ध है । पत्र के साथ तारीख 16 अप्रैल, 2011 को प्रकाशित शिमला भास्कर में प्रकाशित वह समाचार भी है जिसमें यह कहा गया है कि बिलासपुर जिले के मार्कंडा मंदिर में एक बोर्ड (पट्ट) लगाया गया है जिस पर यह दर्शाया गया है कि वहां अनुसूचित जातियों का प्रवेश प्रतिषिद्ध है । प्रत्यर्थी सं. 6 मंदिर की प्रबंध समिति ने अपने उत्तर में यह स्पष्ट किया है कि वस्तुतः शिव मंदिर में अनुसूचित जातियों का प्रवेश, किसी बाबा केवल पुरी ने जिससे उनका कोई संबंध नहीं है, प्रतिषिद्ध किया था, जो बोर्ड चलाता है । वह एक अभ्यस्त अपराधी है और यह पहली बार नहीं हुआ है कि इस प्रकार का बोर्ड ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जाता है । इससे पहले भी एक अवसर पर जब वह बोर्ड से संयोजित हुआ था, पुलिस ने कार्रवाई की थी और तारीख 30 अप्रैल, 2004 को 2004 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 139 रजिस्टर की थी । अभिकथित रूप से यह व्यक्ति सामुदायिक सौहार्दता को विछुब्ध करता है । इस समय जब बाबा केवल पुरी द्वारा प्रश्नगत बोर्ड चलाया जा रहा है, मामला तत्परता से लिखित सूचना उपाबंध आर. 6-सी द्वारा उपायुक्त (प्रत्यर्थी सं. 3) और पुलिस अधीक्षक (प्रत्यर्थी सं. 4) की जानकारी में लाया गया था । प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा फाइल किए गए शपथपत्र से यह स्पष्ट होता है कि विवादित बोर्ड को विघटित कर दिया गया है और 2011 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 78 रजिस्टर कर ली गई है जिसके संबंध में जांच पूर्ण कर ली गई है और शीघ्र ही चालान सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा । तथापि, अभियुक्त जमानत पर छोड़ा जा चुका है । यह कहा गया है कि प्रथम रिपोर्ट के संबंध में मामला विशेष न्यायाधीश (जिला और सेशन न्यायाधीश), बिलासपुर के समक्ष विचारण के लिए लंबित है । न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि प्रत्यर्थियों ने तत्परता बरतते हुए मंदिर में बना बोर्ड विघटित कर दिया है । प्रत्यर्थियों के अनुसार बाबा केवल पुरी अभ्यस्त अपराधी है । ऐसा प्रतीत होता है कि वह विधि का सम्मान नहीं करता है । तथापि, पुलिस और अभियोजन ऐसी परिस्थितियों से निपटने में असहाय नहीं है । बाबा केवल पुरी को सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़ा गया है ।

यह अभियोजन का कर्तव्य है कि समुचित निदेशों के लिए उसके बार-बार दोहराए गए आचरण को संबंधित न्यायालय की जानकारी में लाए । चूंकि यह मामला अधिकारिता रखने वाले सक्षम न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए लंबित है इसलिए न्यायालय बाबा केवल पुरी के आचरण के संबंध में कोई अन्य मत व्यक्त नहीं कर रहा है । तथापि, संबद्ध परिस्थितियों में न्यायालय विशेष न्यायाधीश (जिला और सत्र न्यायाधीश), बिलासपुर को यह निदेश देता है कि वह तारीख 13 अप्रैल, 2004 की प्रथम इत्तिला सं. 13/2004 के संबंध में अभियोजन आगे बढ़ाए और यह सुनिश्चित करे कि तीन मासों में इसका निपटान हो जाए । न्यायालय प्रत्यर्थी सं. 3, 4 और 6 को भी यह सुनिश्चित करने का निदेश देता है कि वे भविष्य में मंदिर को दीवारों पर ऐसा कोई बोर्ड होने की सूचना प्रदर्शित न करें । जहां तक प्रत्यर्थी सं. 6 द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि बाबा केवल पुरी को मंदिर की प्रबंध समिति के कार्यों में कोई अधिकार या हित न होने पर भी वह मंदिर के सुचारु कार्यकरण और प्रबंध में लगातार विघ्न डालता रहेगा, न्यायालय यह सपष्ट कर देना चाहता है कि प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 को यह स्वतंत्रता होगी कि वे कोई भी विधिसम्मत समुचित या सख्त कार्रवाई करें । (पैरा 1, 3, 5, 8, 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 106 : **एन. आदित्यन** बनाम **ट्रावनकोर देवासम बोर्ड और अन्य;**	7
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 255 : **श्री वेंकटरमण देवारू और अन्य** बनाम **मैसूर राज्य और अन्य** ।	6

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2011 की सी. डब्ल्यू. पी. आई. एल. सं. 14.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से कोई नहीं

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री आर. के. बावा महाधिवक्ता, जे. के. वर्मा, उप-महाधिवक्ता,

प्रत्यर्थी सं. 6 की ओर से श्री टी. एस. चौहान, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संजय करोल ने दिया ।

न्या. करोल – हम इक्कीसवीं शताब्दी में जी रहे हैं और प्राचीन काल से मानव जाति का लंबा सफर तय कर चुके हैं । हम एक स्वतंत्र संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष और लोकतंत्रात्मक गणराज्य में रह रहे हैं । भारत के लोगों ने संविधान को अंगीकृत किया है । भारत के लोगों ने अपने संविधान को आत्मार्पित किया है । उन्होंने सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता और समता प्राप्त करने हेतु संकल्प लिया था तथापि, हमारे समाज के कुछ सदस्य उसी पुरानी मानसिकता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं ।

2. यहां सुविधा के लिए भारत के संविधान का अनुच्छेद 17, 25 और 26 उद्धृत किया जा रहा है :–

> "17. **अस्पृश्यता का अंत** – अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है । "अस्पृश्यता" से उपज किसी भी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा ।"
>
> "25. **अंतःकरण की और धर्म की अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता** – (1) लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा ।
>
> (2) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो ?
>
> > (क) धार्मिक आचरण से संबद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन या निर्बन्धन करती है ;
> >
> > (ख) सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिंदुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करती

है ।

स्पष्टीकरण 1 – कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिख धर्म के मानने का अंग समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण 2 – खंड (2) के उपखंड (ख) में हिंदुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत सिख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ तद्नुसार लगाया जाएगा ।

26. **धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता** – लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग को –

(क) धार्मिक और पूर्व प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का,

(ख) अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का,

(ग) जंगम और स्थावर संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का, और

(घ) ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का, अधिकार होगा ।"

3. भारत के संविधान का भाग-3 सभी के लिए श्रद्धा और धर्म मानने के संबंध में समानता का उपबंध करता है । अनुच्छेद 17 विनिर्दिष्ट रूप से अस्पृश्यता का अंत और उसे निषिद्ध करता है तथा किसी भी रूप में ऐसे व्यवहार को निषिद्ध करता है । इसको जारी रखना एक दंडनीय अपराध है । कतिपय निर्बंधनों के अधीन अनुच्छेद 25 और 26 विनिर्दिष्ट रूप से किसी धर्म को मानने और प्रचार करने का समान रूप से अधिकार देता है । भारत के सभी व्यक्तियों को धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है । इस संवैधानिक आज्ञा को देखते हुए विधान-मंडल ने किसी भी रूप में अस्पृश्यता और असमानता को रोकने और दंडनीय बनाने के लिए निम्नलिखित विधियां अधिनियमित की हैं :–

– सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955

– अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार

निवारण) अधिनियम, 1989

– मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

4. अतः किसी भी सभ्य समाज में अस्पृश्यता और असमानता किसी भी रूप में अस्वीकार्य है ।

5. तथापि, हमें स्वतंत्रता प्राप्त किए 64 वर्ष हो गए हैं । एक ऐसी घटना हमारे सम्मुख लाई गई है । तथापि, हम इस बात से स्तब्ध और निराश हैं कि हमारे समक्ष ऐसी घटना लाई गई है, जैसा कि श्री कर्मचन्द भाटिया, प्रधान संत श्री रविदास धर्म सभा, शिमला द्वारा तारीख 19 अप्रैल, 2011 को लिखे पत्र द्वारा हमें यह सूचित किया गया कि एक ऐसे राज्य में जो कि "देव-भूमि" के नाम से ज्ञात है, शिव मंदिर में अनुसूचित जातियों का प्रवेश प्रतिषिद्ध है । पत्र के साथ तारीख 16 अप्रैल, 2011 को प्रकाशित शिमला भास्कर में प्रकाशित वह समाचार भी है जिसमें यह कहा गया है कि बिलासपुर जिले के मार्कंडा मंदिर में एक बोर्ड लगाया गया है जिस पर यह दर्शाया गया है कि वहां अनुसूचित जातियों का प्रवेश प्रतिषिद्ध है ।

6. उच्चतम न्यायालय ने **श्री वेंकटरमण देवारू और अन्य** बनाम **मैसूर राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में, लगभग ऐसी ही स्थिति पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 25(2)(ख) द्वारा संरक्षित अधिकार में पूजा के प्रयोजन से मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार सम्मिलित है और इसका जनता के पक्ष में उदारतापूर्वक अर्थ लगाया जाना चाहिए । तथापि, यह अधिकार आत्यंतिक और असीमित प्रकृति का नहीं है । अनुच्छेद 25 का खंड (1) सभी व्यक्तियों के लिए अंतःकरण की और धर्म को अबाध रूप से मानने और प्रचार करने की स्वतंत्रता की घोषणा करता है । यह वह अधिकार है जो कि अनुच्छेद 25(2) की उपबंधित परिसीमा के अध्यधीन है । अनुच्छेद 25(2)(ख) के अधीन प्रदत्त अधिकार हिंदुओं के सभी वर्गों और प्रवर्गों को इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना कि क्या ऐसे अधिकार का अनुच्छेद 25(1) के अधीन प्रयोग किया गया है, अनुच्छेद 25(2)(ख) में की परिधि के भीतर लोक मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार देता है ।

7. उच्चतम न्यायालय द्वारा **एन. आदित्यन** बनाम **ट्रावनकोर देवासम**

---

[1] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 255.

बोर्ड और अन्य[1] वाले मामले में रूढ़ि और परिपाटी के विरुद्ध एक गैर-ब्राह्मण व्यक्ति को पूजा करने की स्वीकृति दी गई थी । इस मामले में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "गीता में किए गए स्पष्ट रहस्योद्घाटनों और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के स्वपनों को ध्यान रखते हुए जातियों और पंथ पर आधारित सभी विभेदों को समाप्त किया जाना चाहिए और व्यक्ति की जाति जिसमें उसने जन्म लिया है, विचार में लाए बिना उसे अपने कार्यों से जाना और पहचाना जाना चाहिए । इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए संविधान में एक सकारात्मक कदम उठाया गया है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 से 17 और 21 से यह संदेश मिलता है तथा इस संबंध में सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 अधिनियमित किया गया ।"

> "भारत के संविधान का अनुच्छेद 25 लोक व्यवस्था, सदाचार, स्वास्थ्य और नैतिकता तथा भाग-3 के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक़ देता है जिसके अंतर्गत अनुच्छेद 17 के अधीन अपने कृत्यों द्वारा ऐसी धार्मिक भावना का प्रसार और प्रचार करना भी है जिससे उनके विचार या अंतःकरण द्वारा अन्य लोगों की नैतिक उन्नति हो सकती है । राज्य को यह अधिकार है कि वह ऐसे प्रतिबंध अधिरोपित करें जो अनुच्छेद 25 और 26 में दिए गए हैं तथा जिन्हें वह लोक व्यवस्था, स्वास्थ्य और नैतिकता के लिए आवश्यक समझते हैं । अनुच्छेद 25(2)(ख) यह उपबंध करता है कि राज्य का यह अधिकार है कि वह सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखते हुए विधि बनाए तथा हिन्दुओं के सभी प्रवर्गों के लिए लोक प्रकृति की हिन्दू धार्मिक संस्थाओं को खोलने के लिए सुधारात्मक कार्य करे, तथा राज्य समुदाय या समाज के वर्गों के ऐसे किसी अधिकार पर विभिन्न अधिकारों को एक साथ रखने की प्रक्रिया में सम्यक् विनियम बनाने की आवश्यकता पर विचार करे । संविधान के निर्माताओं ने अनुच्छेद 17

---

[1] (2002) 8 एस. सी. सी. 106.

के रूप में यह अभिव्यक्त किया है कि समाज को बिना कारण या अतर्कसंगत आधार वाले अंधविश्वासों, कर्मकाण्डों से मुक्त करना है । अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन दिया गया संरक्षण धार्मिक कृत्यों और उनको मानने, अनुष्ठानों और पूजा की उन रीतियों तक विस्तारित है जो धर्म के अभिन्न अंग हैं तथा जो वास्तव में धर्म या धार्मिक आचरण के एक अभिन्न भाग को गठित करते हैं और जिन्हें अदालतों द्वारा निर्णय लेने के लिए किसी विशिष्ट धर्म के या धर्म के भाग से संबंधित प्रथाओं के सिद्धांत के रूप में विनिश्चित किया गया है ।"

8. प्रत्यर्थी सं. 6 मंदिर की प्रबंध समिति ने अपने उत्तर में यह स्पष्ट किया कि वस्तुतः शिव मंदिर में अनुसूचित जातियों का प्रवेश, किसी बाबा केवल पुरी ने जो बोर्ड चलाता है जिससे उनका कोई संबंध नहीं है, प्रतिषिद्ध किया था । वह एक अभ्यस्त अपराधी है और यह पहली बार नहीं हुआ है कि इस प्रकार का बोर्ड ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जाता है । इससे पहले भी एक अवसर पर जब वह बोर्ड से संयोजित हुआ था, पुलिस ने कार्रवाई की थी और तारीख 30 अप्रैल, 2004 को 2004 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 139 रजिस्टर की गई थी । अभिकथित रूप से यह व्यक्ति सामुदायिक सौहार्दता को विछुब्ध करता है । इस समय जब बाबा केवल पुरी द्वारा प्रश्नगत बोर्ड चलाया जा रहा है, मामला तत्परता से लिखित सूचना उपाबंध आर. 6-सी द्वारा उपायुक्त (प्रत्यर्थी सं. 3) और पुलिस अधीक्षक (प्रत्यर्थी सं. 4) की जानकारी में लाया गया था ।

9. प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा फाइल किए गए शपथपत्र से यह स्पष्ट होता है कि विवादित बोर्ड को विघटित कर दिया गया है और 2011 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 78 रजिस्टर कर ली गई है जिसके संबंध में जांच पूर्ण कर ली गई है और शीघ्र ही चालान सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा । तथापि, अभियुक्त जमानत पर छोड़ा जा चुका है । यह कहा गया है कि प्रथम रिपोर्ट के संबंध में मामला विशेष न्यायाधीश (जिला और सेशन न्यायाधीश), बिलासपुर के समक्ष विचारण हेतु लंबित है ।

10. हमारा यह समाधान हो गया है कि प्रत्यर्थियों ने तत्परता बरतते हुए मंदिर में बना बोर्ड विघटित कर दिया है । प्रत्यर्थियों के अनुसार बाबा केवल पुरी अभ्यस्त अपराधी है । ऐसा प्रतीत होता है कि वह विधि का सम्मान नहीं करता है । तथापि, पुलिस और अभियोजन ऐसी परिस्थितियों

से निपटने में असहाय नहीं है । बाबा केवल पुरी को सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़ा गया है । यह अभियोजन का कर्तव्य है कि समुचित निदेशों के लिए उसके बार-बार दोहराए गए आचरण को संबंधित न्यायालय की जानकारी में लाए ।

11. चूंकि यह मामला अधिकारिता रखने वाले सक्षम न्यायालय के समक्ष विचारण हेतु लंबित है इसलिए हम बाबा केवल पुरी के आचरण के संबंध में कोई अन्य मत व्यक्त नहीं कर रहे हैं । तथापि, संबद्ध परिस्थितियों में हम विशेष न्यायाधीश (जिला और सत्र न्यायाधीश), बिलासपुर को यह निदेश देते हैं कि वह तारीख 13 अप्रैल, 2004 की प्रथम इत्तिला सं. 13/2004 के संबंध में अभियोजन आगे बढ़ाए और यह सुनिश्चित करे कि तीन मासों में इसका निपटान हो जाए । हम प्रत्यर्थी सं. 3, 4 और 6 को भी यह सुनिश्चित करने का निदेश देते हैं कि वे भविष्य में मंदिर की दीवारों पर ऐसा कोई बोर्ड होने की सूचना प्रदर्शित न करें । जहां तक प्रत्यर्थी सं. 6 द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि बाबा केवल पुरी को मंदिर की प्रबंध समिति के कार्यों में कोई अधिकार या हित न होने पर भी वह मंदिर के सुचारू कार्यकरण और प्रबंध में लगातार विघ्न डालता रहेगा, हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि प्रत्यर्थी सं. 4 और 5 को यह स्वतत्रंता होगी कि वे कोई भी विधिसम्मत समुचित या सख्त कार्रवाई करें ।

12. उपरोक्त संप्रेक्षण के साथ हम इस पूर्ण आशा और विश्वास के साथ इस रिट याचिका का निपटान कर रहे हैं कि भविष्य में इस प्रकार की घटनाएं घटित नहीं होंगी । इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय को भी भेजी जाए ।

रिट याचिका तद्नुसार निपटाई गई ।

भट./मह.

भूमि अर्जन कलक्टर- II और एक अन्य

बनाम

विमल गांधी और एक अन्य

तारीख 22 जून, 2011

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1) – धारा 4 और 18 – भूमि अर्जन – अधिसूचना – निर्देश न्यायालय द्वारा अधिसूचित भूमि से अधिक के लिए इस आधार पर अधिक प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाना कि विभाग द्वारा अधिसूचित भूमि से अधिक का उपयोग किया गया है – भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंध केवल उसी भूमि को लागू होते हैं जिसके बारे में अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी की गई है – जहां विभाग द्वारा अधिसूचित भूमि के सिवाय कोई अर्जन किया गया हो वहां पक्षकार सिविल न्यायालय में उपचार प्राप्त कर सकता है ।

अपीलार्थियों द्वारा इस अपील में तारीख 29 अप्रैल, 1996 को 1992/90 के निर्देश सं. 25-एस./4 में विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय/पंचाट को संक्षिप्ततः इस आधार पर आक्षेपित किया गया है कि विद्वान् निर्देश न्यायालय ने अपीलार्थियों की 6 बिसवा भूमि के प्रतिकर की राशि के स्थान पर 12 बिसवा के लिए प्रतिकर अधिनिर्णीत किया है जिसे भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचित किया गया था । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृततः उपर्युक्त अधिनियम की धारा 4 के अधीन जारी अधिसूचना द्वारा दो खसरों के भाग को, जो कि 6 बिसवा भूमि थी, अर्जित किया गया था । भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंध केवल उसी भूमि को लागू होते हैं जिसके बारे में अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी की गई हो न कि अन्य भूमि को । ऐसा कोई व्यक्ति जो कलक्टर द्वारा दिए गए प्रतिकर से संतुष्ट नहीं है, अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपनी सभी असंतुष्टियों की शिकायतों को सिविल न्यायालय के समक्ष रखने का हकदार होगा । अधिसूचित की गई भूमि के सिवाय भूमि का प्रयोग और अधिभोग निर्दिष्ट प्रश्न के अवधारण के अन्तर्गत नहीं आता ।

उसके लिए व्यथित पक्षकार को सिविल उपचार उपलब्ध है, इसलिए विद्वान् निर्देश न्यायालय का इस आशय का निष्कर्ष कि चूंकि विभाग ने अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचित 6 बिसवा के स्थान पर 12 बिसवा भूमि का अर्जन और उपयोग किया था और इसलिए धारा 4 के अधीन अधिसूचित भूमि के लिए अधिक प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए, गलत और अवैध है और इसलिए आक्षेपित पंचाट उपरोक्त सीमा तक अपास्त किए जाने योग्य है । उपरोक्त कारणों से न्यायालय अपील स्वीकार करता है । प्रत्यर्थी विद्वान् निर्देश न्यायालय द्वारा दिए गए खसरा सं. 204/1 और 243/1 में आने वाली उस 6 बिसवा भूमि के प्रतिकर के साथ-साथ अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना की तारीख से कानूनी ब्याज के भी हकदार हैं जो वास्तविक रूप से अधिसूचित और अर्जित की गई थी तथा उस भूमि के लिए नहीं जो कि अधिसूचित नहीं की गई थी किंतु अर्जन करने वाले विभाग ने अभिकथित रूप में अधिक अर्जित कर ली थी और उसके लिए प्रत्यर्थी इस बात के लिए स्वतंत्र होंगे कि वे विधि में उपलब्ध अन्य उपचार अर्थात् नुकसानी या कब्जे के लिए वाद फाइल करें । (पैरा 6 और 7)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2001 की आर. एफ. ए. सं. 337.

विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 29 अप्रैल, 1996 को पारित निर्णय/पंचाट के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	श्री ए. के. बंसल, अपर महाधिवक्ता
प्रत्यर्थियों की ओर से	प्रत्यर्थी सं. 1 और 2(क) से 2(घ) की ओर से श्री के. डी. सूद और प्रत्यर्थी सं. 3, 4(क) से 4(ग), 5(क) और 5(ख) की ओर से कोई नहीं

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह – अपीलार्थियों द्वारा इस अपील में तारीख 29 अप्रैल, 1996 को 1992/90 के भूमि निर्देश सं. 25-एस./4 में विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय/पंचाट के संक्षिप्ततः इस आधार पर आक्षेपित किया है कि विद्वान् निर्देश न्यायालय ने अपीलार्थियों की 6 बिसवा भूमि के प्रतिकर की राशि के स्थान पर 12 बिसवा के लिए प्रतिकर अधिनिर्णीत किया है जिसे भूमि अर्जन अधिनियम (जिसे संक्षेप में

'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 4 के अधीन अधिसूचित किया गया था ।

2. सुना गया और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया गया ।

3. संक्षेप में इस मामले के तथ्यों को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है । तारीख 16 सितंबर, 1988 को अधिनियम की धारा 4 के अधीन एक अधिसूचना खसरा सं. 240 और 243 की 6 बिसवा भूमि के अर्जन के लिए जारी की गई थी, जिसका प्रयोजन सिंचाई और लोक स्वास्थ्य विभाग (आई. एंड. पी. एच.) द्वारा पानी के पाइप डालना था जो कि तारीख 24 जून, 1989 को प्रकाशित की गई थी । इस भूमि के अर्जन का आशय उक्त लोक प्रयोजन के लिए अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप भूमि का अर्जन करना था । भूमि अर्जन कलक्टर द्वारा तारीख 23 अक्तूबर, 1989 को 1988 का पंचाट सं. 1 पारित किया गया था । चूंकि प्रत्यर्थी आक्षेपित पंचाट से संतुष्ट नहीं थे इसलिए उन्होंने अधिनियम की धारा 18 के अधीन सिविल न्यायालय को प्रतिकर के अवधारणार्थ निर्देशित करने के लिए आवेदन किया था ।

4. विद्वान् जिला न्यायाधीश ने निर्देश प्राप्त होने पर उसके अवधारण के लिए कार्यवाही आरंभ की और साक्ष्य समाप्त होने पर तथा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करते हुए 6 बिसवा के स्थान पर 12 बिसवा भूमि के लिए कानूनी ब्याज सहित प्रतिकर की राशि बढ़ाकर 8000/- रुपए प्रति बिसवा कर दी । अधिनियम की धारा 4 के अधीन आरंभ में 6 बिसवे का अर्जन अधिसूचित किया गया था । ऐसा पी. डब्ल्यू. 2 श्री बी. आर. लखनपाल और मंगत राम, कानूनगो के कथनों का अवलंब लेकर किया गया था जिन्होंने निरीक्षण किया था और यह सूचना दी थी कि वास्तविक रूप में अर्जन करने वाले विभाग ने प्रदर्श पी. 6 में दी गई गणना के अनुसार पाइप लाइनें डालने के लिए 12 बिसवा भूमि का उपयोग किया था, जबकि 6 बिसवा अर्थात् खसरा सं. 240/1 और 243/1 में से तीन-तीन बिसवा भूमि अर्जित की गई थी ।

5. मामले में सुलह का भी प्रयास किया गया था किंतु यह असफल रहा था क्योंकि अपीलार्थी समझौता करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं थे, अतः अंततः मामले में सुनवाई की गई थी ।

6. स्वीकृततः उपर्युक्त अधिनियम की धारा 4 के अधीन जारी

अधिसूचना द्वारा दो खसरों के भाग को, जो कि 6 बिसवा भूमि थी, अर्जित किया गया था । भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंध केवल उसी भूमि को लागू होते हैं जिसके बारे में अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी की गई हो न कि अन्य भूमि को । ऐसा कोई व्यक्ति जो कलक्टर द्वारा दिए गए प्रतिकर से संतुष्ट नहीं है, अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपनी सभी असंतुष्टियों की शिकायतों को सिविल न्यायालय के समक्ष रखने का हकदार होगा । अधिसूचित की गई भूमि के सिवाय भूमि का प्रयोग और अधिभोग निर्दिष्ट प्रश्न के अवधारणा के अन्तर्गत नहीं आता । उसके लिए व्यथित पक्षकार को सिविल उपचार उपलब्ध है इसलिए विद्वान् निर्देश न्यायालय का इस आशय का निष्कर्ष कि चूंकि विभाग ने अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचित 6 बिसवा के स्थान पर 12 बिसवा भूमि का अर्जन और उपयोग किया था और इसलिए धारा 4 के अधीन अधिसूचित भूमि के लिए अधिक प्रतिकर अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए, गलत और अवैध है और इसलिए आक्षेपित पंचाट उपरोक्त सीमा तक अपास्त किए जाने योग्य है ।

7. उपरोक्त कारणों से मैं अपील स्वीकार करता हूं । प्रत्यर्थी विद्वान् निर्देश न्यायालय द्वारा दिए गए खसरा सं. 204/1 और 243/1 में आने वाली उस 6 बिसवा भूमि के प्रतिकर के साथ-साथ अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना की तारीख से कानूनी ब्याज के भी हकदार हैं जो वास्तविक रूप से अधिसूचित और अर्जित की गई थी तथा उस भूमि के लिए नहीं जो कि अधिसूचित नहीं की गई थी किंतु अर्जन करने वाले विभाग ने अभिकथित रूप में अधिक भूमि अर्जित कर ली थी और इसलिए प्रत्यर्थी इस बात के लिए स्वतंत्र होंगे कि वे विधि में उपलब्ध अन्य उपचार अर्थात् नुकसानी या कब्जे के लिए वाद फाइल करें । अपील का निपटान किया जाता है ।

8. पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

भट./मह.

प्रभु देवी (श्रीमती) और अन्य

बनाम

विजयलक्ष्मी (श्रीमती) और अन्य

तारीख 28 फरवरी, 2012

न्यायमूर्ति संजय करोल

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 54, 107, 123 तथा भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 और 49 एवं भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 58, 91 और 92] – अविभाजित सम्पत्ति का दान-विलेख द्वारा अन्तरण – अन्तरण, हिस्से से अधिक सम्पत्ति का होना – दान-विलेख की वैधता को चुनौती देना – चुनौती खारिज होना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि प्रश्नगत दान-विलेख युक्तियुक्त और वैध है तो ऐसे दान-विलेख के माध्यम से सम्पत्ति का अन्तरण विधिमान्य होगा बावजूद इसके कि दान-विलेख हिस्से की सम्पत्ति से ज्यादा भाग का किया गया था क्योंकि विधिमान्य हिस्से तक दान-विलेख के माध्यम से अन्तरण वैध होता है ।

वर्तमान मामले में, श्री जीत सिंह की राजस्व संपदा, शिमला में कतिपय कृषि भूमि थी । उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका एकमात्र पुत्र श्री जय सिंह ने उसे उत्तराधिकार में प्राप्त किया । श्री जय सिंह का श्रीमती मोहनी देवी के साथ विवाह हुआ और उनके विवाह से तीन बच्चे अर्थात् पुत्र श्री कृष्ण सिंह और श्री नरेन्द्र सिंह तथा पुत्री सुश्री मउली देवी उत्पन्न हुए । अभिकथित तौर पर अपने जीवनकाल के दौरान ही श्री जय सिंह ने अपनी सम्पत्तियों का विभाजन अपने पुत्रों श्री कृष्ण सिंह और श्री नरेन्द्र सिंह के बीच श्रीमती मोहनी देवी और सुश्री मउली देवी को उनके उत्तराधिकार से अपवर्जित करते हुए, कर दिया । वाद सम्पत्तियां ग्राम पतियोग में स्थित थीं, तारीख 20 जून, 1971 के अभिकथित विभाजन को ध्यान में रखते हुए, उसके छोटे पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह ने अपने हिस्से में आने वाले भाग को संयोग से अपने दामाद को कतिपय अचल सम्पत्तियों का प्रबंध करने के लिए दे दिया और इस प्रकार, वह दूसरे ग्राम राही में अपने कुटुम्ब के साथ रहने लगा जो ग्राम पतियोग से काफी दूर था । जय सिंह

की तारीख 30 जून, 1977 को मृत्यु हो गई । ग्राम पतियोग में कृषि भूमि के ऊपर चार कमरे वाले आवासीय मकान निर्मित किया गया था । श्री नरेन्द्र सिंह ने उक्त मकान में अपनी माता श्रीमती मोहनी देवी को रहने की इजाजत दी थी । उसने उक्त आवासीय मकान के कमरों में से एक कमरे में किराएदार के रूप में श्री उमा दत्त को रख लिया था । तारीख 26 अप्रैल, 1982 को श्री नरेन्द्र सिंह की मृत्यु हो गई जब वह मात्र 45 वर्ष का था । यह प्रतीत होता है कि उसका कुटुम्ब ग्राम राही में निरन्तर रुका रहा । श्री कृष्ण सिंह भी अपनी माता के साथ नहीं रहता था जिसका अपने पिता के समय से ही निवास और रसोईघर भी अलग था । श्रीमती मोहनी देवी ने श्री उमा दत्त के पक्ष में तारीख 10 अक्तूबर, 1984 और तारीख 24 दिसम्बर, 1985 के दो दान-विलेख निष्पादित किए जो उप-रजिस्ट्रार कार्यालय में विभिन्न तारीखों पर पृथक्तः रजिस्ट्रीकृत किए गए । तारीख 10 अक्तूबर, 1984 को दान-विलेख उस सम्पूर्ण आवासीय मकान से संबंधित था जिसमें वह रह रही थी और उसमें किराए पर दिए गए भाग भी सम्मिलित थे तथा तारीख 24 दिसम्बर, 1985 को दान-विलेख ग्राम पतियोग में स्थित शेष कृषि भूमि से संबंधित थे । इन तीनों दान-विलेखों के निष्पादन को श्री जय सिंह/नरेन्द्र के विधिक उत्तराधिकारियों/हित उत्तराधिकारियों के नोटिस में लाया गया जिन्होंने शिमला में सिविल न्यायालय के समक्ष पृथक् कार्यवाहियां संस्थित की थीं । 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 शीर्षक श्रीमती विजयलक्ष्मी और अन्य बनाम श्रीमती सरजू देवी और अन्य को स्वर्गीय श्री नरेन्द्र सिंह की मात्र पत्नी और बच्चों द्वारा ही श्री उमा दत्त (प्रतिवादी सं. 1), श्रीमती मोहनी देवी (प्रतिवादी सं. 2), श्री कृष्ण सिंह (प्रतिवादी सं. 3) और सुश्री मउली देवी (प्रतिवादी सं. 4) के विरुद्ध तारीख 20 मई, 1985 को संस्थित किया गया था । जबकि तारीख 12 जून, 1986 को व्यक्तिगत रूप से श्रीमती मोहनी देवी ने 1986 की सिविल वाद सं. 86-1, शीर्षक श्रीमती मोहनी देवी और अन्य बनाम श्रीमती सरजू देवी और अन्य को श्री उमा दत्त प्रतिवादी सं. 1, सुश्री मउली देवी प्रतिवादी सं. 2, श्री कृष्ण सिंह प्रतिवादी सं. 3 और श्री नरेन्द्र सिंह के विधिक उत्तराधिकारियों (1985 की सिविल वाद सं. 108/1 के वादियों) प्रतिवादी सं. 4 से 7 के विरुद्ध फाइल किया गया था । इन दोनों वादों का प्राथमिक तौर पर श्री उमा दत्त द्वारा विरोध किया गया जिसकी विचारण के दौरान मृत्यु हो गई और तत्पश्चात् उसके विधिक प्रतिनिधियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् लड़ने वाले प्रतिवादियों के रूप में कहा गया है) को अभिलेख पर लाया गया । विचारण न्यायालय ने तारीख 24 मई, 1993 के निर्णय

और डिक्री द्वारा 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 को डिक्री कर दिया, जिसकी विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला ने 1993 की सिविल अपील सं. 69-एस/13, शीर्षक श्रीमती सरजू देवी और अन्य बनाम श्रीमती विजयलक्ष्मी और अन्य में पारित तारीख 4 मई, 1995 के निर्णय और डिक्री द्वारा पुष्टि कर दी । 1986 की सिविल वाद सं. 86-1 को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 31 अगस्त, 1992 के निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसमें वादियों की अपील को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 1992 की सिविल अपील सं. 75-एस/13 शीर्षक सुश्री मउली देवी और अन्य बनाम श्रीमती सरजू देवी और अन्य में पारित तारीख 24 अक्तूबर, 1997 के निर्णय और डिक्री द्वारा उलट दिया गया । इनसे व्यथित होकर वर्तमान द्वितीय अपीलें फाइल की गईं । न्यायालय द्वारा दोनों अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि यह दर्शित करने के लिए इस मामले के अभिलेख पर कुछ नहीं है कि श्री जय सिंह ने अपने जीवनकाल के दौरान ही अपनी संपत्तियों का विभाजन कर दिया था ताकि श्री नरेन्द्र सिंह वाद संपत्ति का अनन्य स्वामी बन सके । विभाजन विलेख के निष्पादन के 6 वर्षों पश्चात् श्री जय सिंह की मृत्यु हो गई थी । यह दर्शित करने के लिए कोई भी दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है कि या तो अपने जीवनकाल के दौरान या श्री नरेन्द्र सिंह के जीवनकाल के दौरान प्रभावी कुटुम्ब विभाजन की प्रविष्टियां कहीं भी अभिलिखित की गई हैं यहां तक कि राजस्व अभिलेखों में भी इनकी प्रविष्टियां नहीं हैं । इस मामले के प्रत्यक्ष साक्ष्य पर विचार करते हैं, वादी श्रीमती विजयलक्ष्मी (अभि. सा. 1) ने यह स्वीकार किया है कि कौटुम्बिक विभाजन रजिस्ट्रीकृत नहीं था । उसने यह कथन किया है कि विभाजन के समय पर भी श्री जय सिंह ने कुटुम्ब खर्चों पर दो कमरों का निर्माण कराया था । उसने यह स्वीकार किया है कि उसके पति और उसकी सास के जीवनकाल के दौरान भी श्री उमा दत्त ने किराएदार के रूप में दो कमरों पर कब्जा कर लिया था । इससे विभाजन का अभिवाक् पूर्णतया मिथ्या होता है । स्वीकृततः उमा दत्त को किराएदार के रूप में श्रीमती मोहनी देवी द्वारा रखा गया था न कि श्री जय सिंह या श्री नरेन्द्र सिंह द्वारा रखा गया था । महत्वपूर्ण तौर पर, दान-विलेख को मात्र विधि में प्रतिषेध/एक बाहरी व्यक्ति में संपत्ति के अन्यसंक्रामण नहीं करने के प्रथागत अधिकार मौजूद नहीं रहने के आधार पर चुनौती दी गई थी । उसके कथन के अलावा ऐसे किसी प्रथा को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं लाया गया है । यहां तक कि कोई

कानूनी विधि भी नहीं है जो उमा दत्त के पक्ष में अन्तरण को प्रतिषिद्ध करती हो । महत्वपूर्ण तौर पर, इस मामले में श्रीमती मोहनी देवी स्वयं या अपने मुख्तारनामे के माध्यम से साक्षी कठघरे में नहीं आई और इस साक्षी ने भी उमा दत्त की ओर से किए गए किसी कपट/असम्यक् प्रभाव/सिखाए जाने के बारे में भी कुछ नहीं कहा है । दी गई परिस्थितियों में, श्रीमती मोहनी देवी पर यह निर्भर करता था कि वह अपने संयुक्त लिखित कथन द्वारा की गई स्वीकृति के बारे में स्पष्टीकरण करती । महत्वपूर्ण तौर पर, ऐसी स्वीकृतियां भी प्रत्याहरण नहीं की गई थीं । इस साक्षी ने यह भी स्वीकार किया है कि मात्र श्रीमती मोहनी देवी ही ग्राम पतियोग में रहती थी जबकि वह अपने पति और कुटुम्ब के साथ एक अन्य ग्राम राही में रहती थी । यह मात्र मूल संयुक्त लिखित कथन में लिए गए अभिवाक् के विश्वास को दर्शित करता है । यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि न तो सुश्री मउली देवी न ही श्री कृष्ण सिंह ने वाद का विरोध किया है अथवा न ही उन्होंने लड़ने वाले पक्षकारों के पक्ष में अथवा विरोध में अभिसाक्ष्य दिया है । श्री अनोखी राम (अभि. सा. 2) विभाजन विलेख का एक साक्षी है, किन्तु उसके साक्ष्य से यह सिद्ध नहीं होता है कि उसने कभी भी श्री नरेश्वर सिंह (अभि. सा. 3) के इस साक्ष्य पर कार्य किया है कि कौटुम्बिक विभाजन उसकी उपस्थिति में नहीं किया गया है किन्तु उसके बाद यह कहते हुए उसके बयान को सही माना गया है कि उसने अपने बड़ों से ही उसके बारे में सुना है । श्रीमती शांति देवी (अभि. सा. 4) के साक्ष्य से भी यह कथन सिद्ध नहीं होता है कि संपत्ति का वस्तुतः विलेख के निबंधनों में विभाजन हुआ था । जैसा कि पूर्व में उल्लिखित किया जा चुका है, वर्तमान मामले में, यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर प्रथमदृष्ट्या कुछ नहीं है कि विभाजन, वस्तुतः विभाजन विलेख निष्पादित होने के पूर्व किया गया था । यह दर्शित करने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि पक्षकारों ने उसके आधार पर कार्य किया । अतएव, यह नहीं कहा जा सकता है कि वादी यह साबित करने में सफल रहा है कि प्रश्नगत संपत्ति का कभी भी जय सिंह द्वारा अपने पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह के पक्ष में विभाजन किया गया था । (पैरा 22, 23, 24, 25 और 28)

दान-विलेख (प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए) को श्री उमा दत्त की पत्नी श्रीमती प्रभु देवी के विशेष मुख्तारनामे श्री गणेश नन्द (प्रतिवादी साक्षी 2) के माध्यम से साबित किया गया है । स्वीकृततः इस दस्तावेज के निष्पादन के समय पर न तो यह साक्षी न ही श्रीमती प्रभु देवी उपस्थित थी । तथापि, इस साक्षी ने यह कथन किया है कि इस विलेख को श्री कृष्ण और

श्रीमती मोहनी देवी के अन्य कुटुम्ब सदस्यों की उपस्थिति में श्री गोपाल चन्द और श्री नन्द लाल गर्ग द्वारा साक्षीकृत किया गया था । मात्र श्री नन्द लाल गर्ग (प्रतिवादी साक्षी 4) की ही न्यायालय में परीक्षा की गई है जिसने सुस्पष्टतः यह कथन किया है कि दान-विलेख को चौधरी कांगू राम द्वारा लिखा गया था और वह उसका साक्षी है । वादी भी यह दर्शित करने में प्रथमदृष्ट्या असफल रहे हैं कि प्रश्नगत दान-विलेख या तो असम्यक् प्रभाव/कपट का प्रयोग करते हुए या किसी अन्य अवैध तरीके से निष्पादित किया गया था । श्रीमती मोहनी देवी भी अपनी द्वितीय लिखित कथन में किए गए अभिवाक् को प्रथमदृष्ट्या सिद्ध करने के लिए विचारणीय समय के पश्चात् भी साक्षी कठघरे में आने में असफल रही । दान-विलेख को मात्र इस आधार पर अवैध नहीं कहा जा सकता कि हिस्सा जो दाता के हिस्से से अधिक था, जिसका वह वैध तौर पर हकदार था, को दाता के पक्ष में अन्तरित करने की ईप्सा की गई थी । कम से कम दाता के हिस्से के संबंध में वह लागू होता है । संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के उपबंधों से यह सुव्यक्ततः स्पष्ट होता है । दान-विलेख रजिस्ट्रीकृत किया गया था और उसे विधि के अनुसरण में प्रमाणित किया गया था । अदाता ने उसे स्वीकार किया था । दाता का आधार यह है कि दस्तावेज को असम्यक् प्रभाव/कपट का प्रयोग करते हुए निष्पादित किया गया था जिसे न तो साबित किया गया है न ही तथ्यों और विधि में मान्य अभिनिर्धारित किया गया है । परिणामतः, निचले अपील न्यायालय ने इस प्रभाव का निष्कर्ष निकालने में अनुचित रूप से त्रुटि कारित की है कि दान मात्र इस कारण अवैध है कि वह दाता के हिस्से से अधिक अधिकारों के अंतरण में है । किसी भी दशा में, पक्षकारों का पक्षकथन यह नहीं है कि श्रीमती मोहनी देवी श्री नरेन्द्र सिंह की संपदा में उत्तराधिकार के रूप में वैध उत्तराधिकारी होने के नाते एक सीमित सीमा में संपत्ति प्राप्त कर सकती थी । दान-विलेख भी श्री नरेन्द्र सिंह की मृत्यु के पश्चात् निष्पादित किया गया था जिस तारीख को किसी भी दशा में वह एक हित-उत्तराधिकारी के रूप में सह-स्वामी थे जैसा कि निचले अपील न्यायालय द्वारा सही ही अभिनिर्धारित किया गया है । इस प्रकार, निचले अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित और अवैध होने के नाते अपास्त किए जाने अपेक्षित हैं । निचले न्यायालय ने न तो सही तौर पर विधि के उपबंधों को लागू किया है न ही इसने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कतिपय न्यायिक उद्घोषणाओं द्वारा अधिकथित सिद्धांतों का समुचित तौर पर मूल्यांकन किया है । 1986 की सिविल वाद सं. 86-1 में श्रीमती मोहनी देवी ने यह

अभिवाक् किया है कि उसने अपने पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह को अपने आवास के रूप में ग्राम पतियोग की कृषि भूमि के ऊपर भवन निर्माण करने की मंजूरी दी थी । वह भरणपोषण और सहारे के लिए अपने पुत्र पर निर्भर थी । तारीख 26 अप्रैल, 1982 को नरेन्द्र सिंह की मृत्यु होने के पश्चात्, उसने श्री उमा दत्त को एक कमरा किराए पर दे दिया । शेष कुटुम्ब सदस्यों के साथ उसके कुटुम्ब के संबंध तनावपूर्ण होने के कारण जिसे श्री उमा दत्त द्वारा दर्शित किया गया है, उसने उसके दिमाग को निष्क्रिय और विषाक्त कर दिया था । इसके परिणामस्वरूप, स्वयं उसके रक्त संबंधियों और परिचितों के विरुद्ध उसके मन में घृणा भर गई और वह मानसिक तौर पर हतोत्साहित और दुखी हो गई और यह सोचा कि उसके अपने बच्चे और पोते भी उसके विरुद्ध हो गए हैं । श्री उमा दत्त ने असम्यक् प्रभाव और कपट करते हुए, इस बहाने से कि कतिपय दस्तावेज उसके पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह की मृत्यु से संबंधित दावे के व्यवस्थापन के संबंध में और उसकी किराएदारी के संबंध में निष्पादित करने के लिए अपेक्षित हैं, तारीख 10 अक्तूबर, 1984 तथा 24 दिसम्बर, 1985 को निष्पादित दान-विलेख प्राप्त कर लिया और उप-रजिस्ट्रार, शिमला में रजिस्ट्रीकृत करवा लिया । महत्वपूर्ण तौर पर, औपचारिक प्रतिवादियों ने उक्त कार्यवाहियों में कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया किन्तु श्री उमा दत्त ने वाद का विरोध किया और ऐसे प्रकथनों को स्पष्टतः इनकार करते हुए लिखित कथन फाइल किया और सुस्पष्टतः यह अभिवाक् किया कि पक्षकारों के बीच मुकदमेबाजी आरम्भ होने तक वह वादी की देखभाल करता रहा था जिसने स्नेह और प्रेम के वशीभूत होकर स्वेच्छयापूर्वक उसके पक्ष में दान-विलेख निष्पादित किया । विचारण न्यायालय ने प्रत्यक्ष और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि वादी, श्री उमा दत्त द्वारा किए गए अभिकथित कपट और असम्यक् प्रभाव को साबित करने में असफल रहे हैं । परिणामतः, वाद खारिज कर दिया । (पैरा 34, 35, 38, 42, 43 और 45)

तथापि, निचले अपील न्यायालय के समक्ष कुछ अज्ञात कारणों से पक्षकारों ने यह स्वीकार किया था कि दान-विलेख की वैधता के बारे में प्रश्न जिसे वाद में आक्षेपित किया गया है, की परीक्षा नहीं की गई और उसे इस न्यायालय के समक्ष लम्बित अपील (1995 की नियमित द्वितीय अपील सं. 250) की विषयवस्तु के रूप में विनिश्चित किया गया । अब यह स्थिति वस्तुतः गलत है । उक्त नियमित द्वितीय अपील वस्तुतः 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 से उद्भूत हुआ था जिसमें मात्र तारीख 10

अक्तूबर, 1984 के दान-विलेख की वैधता की ही चुनौती दी गई थी न कि तारीख 24 दिसम्बर, 1985 के द्वितीय दान-विलेख की वैधता को चुनौती दी गई थी । वादी की अपील को निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप किए बिना डिक्री कर दिया । इस न्यायालय ने मात्र इस एक आधार पर ही निचले अपील न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं समझा । न्यायालय इस संबंध में विधिक प्रास्थिति के प्रति सचेत है । महत्वपूर्ण तौर पर, निचले अपील न्यायालय ने वाद डिक्री कर दिया था मात्र इस एक आधार पर कि दान-विलेख वादी के हिस्से से अधिक होने के नाते अवैध थे । वर्तमान मामले में, अविवादित तौर पर लड़ने वाला प्रतिवादी साक्षी कठघरे में नहीं आया क्योंकि उसके साक्ष्य को न्यायालय द्वारा बन्द कर दिया गया था । किन्तु, महत्वपूर्ण तौर पर वादी भी असम्यक् प्रभाव, कपट या सिखाने-पढ़ाने के तथ्य को साबित करने के लिए स्वयं को साक्षी कठघरे में नहीं लाया । श्री नरेन्द्र सिंह की विधिक उत्तराधिकारी सुश्री मउली देवी भी उसके पक्षकथन के समर्थन में साक्षी कठघरे में नहीं आई । श्री कृष्ण सिंह रोहल (अभि. सा. 1) मूल प्रतिवादी साक्षी 3, अपनी माता श्रीमती मोहनी देवी की साधारण मुख्तारनामा के रूप में साक्षी कठघरे में आया । उसने यह कथन किया कि उसकी माता 86-87 वर्ष आयु की है और उसका पिछले 3-4 वर्षों से स्वास्थ्य ठीक नहीं है और उसकी याददाश्त भी कमजोर हो गई है । किन्तु, उसके बाद इस सुस्पष्ट कथन के सिवाय इस तथ्य को सिद्ध/साबित करने के लिए कुछ नहीं लाया गया । यद्यपि इस पहलू पर, मेरा यह निष्कर्ष है कि स्वयं उसके ही तत्पश्चात् इस बयान में विरोधाभास है कि उसकी माता वृद्ध होने के कारण अधिक चल-फिर नहीं सकती थी और वह ठीक थी और उसकी किसी बीमारी का उपचार नहीं हो रहा था । वादी स्थानीय आयुक्त के माध्यम से अपना कथन अभिलिखित करा सकती थी जो इस मामले में उसकी व्यक्तिगत जानकारी में कपट, असम्यक् प्रभाव और सिखाने-पढ़ाने के अभिवाक् के रूप में वर्तमान मामले में किया जाना था । न्यायालय में उसकी परीक्षा पूर्णरूपेण आवश्यक थी विशिष्टतया तब जब इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि स्वयं उसकी अपनी माता के साथ अच्छे संबंध नहीं थे । उसकी माता ने यह अभिवाक् किया था कि उसके कुटुम्ब सदस्यों के बीच संबंध अच्छे नहीं थे । महत्वपूर्ण तौर पर, इस मामले में वादी (श्रीमती मोहनी देवी) ने उस विभाजन का अभिवाक् नहीं लिया जिसे ध्यान में रखते हुए, उसका पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह उन संपत्तियों का अनन्य स्वामी हो गया था जो दोनों वादों की विषयवस्तु थी ।

वादी द्वारा वर्तमान मामले में लिया गया अभिवाक् वस्तुतः 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 में लिए गए अभिवाक् के प्रतिकूल है । यह प्रतीत होता है कि दोनों दान-विलेखों के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के बीच विचारणीय समय अन्तराल था । प्रथम वाद फाइल करने की तारीख, श्रीमती मोहनी देवी द्वारा फाइल दोनों लिखित कथनों और उसके द्वारा वर्तमान वाद फाइल करने के बीच भी काफी समय का अन्तराल था । 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 को तारीख 20 मई, 1985 को फाइल किया गया था जिसमें संयुक्त लिखित कथन तारीख 9 सितम्बर, 1985 को फाइल किए गए थे और वर्तमान वाद 12 जून, 1986 को फाइल किया गया था । महत्वपूर्ण तौर पर, वर्तमान वाद में उसने वाद हेतुक के बारे में मिथ्या प्रकथन किया था । दान-विलेख तारीख 10 अक्तूबर, 1984 तथा तारीख 24 दिसम्बर, 1985 के हैं । यह प्रकथन किया गया है कि उसे माह जून, 1986 में ही असम्यक् प्रभाव कारित करते हुए, उसके निष्पादन के तथ्य के बारे में बताया गया था किंतु वह आसानी से यह भूल गई कि इसी समय ही वह पूर्ववर्ती वाद में पहले ही संयुक्त लिखित कथन फाइल कर चुकी है । न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि वर्तमान वाद स्वयं उसके कुटुम्ब सदस्यों की दुरभिसंधि में फाइल किया गया है क्योंकि वादी श्रीमती विजय-लक्ष्मी ने स्वयं ही माह मई, 1985 में तारीख 10 अक्तूबर, 1984 के दान-विलेख को पहले ही चुनौती दे चुकी थी । पक्षकारों का यह पक्षकथन नहीं है कि श्रीमती मोहनी देवी और श्रीमती विजयलक्ष्मी के बीच इसी समय पर ही संबंध तनावपूर्ण हो गए थे । वस्तुतः उसका विनिर्दिष्ट पक्षकथन यह है कि संबंध, उसके पुत्र कृष्ण सिंह के साथ तनावपूर्ण हो गए थे । यह विवादित नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वयं उसका यह पक्षकथन है कि 1986 के पूर्व उसकी देखभाल श्री उमा दत्त द्वारा की जा रही थी । वस्तुतः, उसने उसी काउंसेल द्वारा अपना प्रतिनिधित्व किया है । अब अभि. सा. 1 के परिसाक्ष्य पर विचार करते हैं, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि कपट/असम्यक् प्रभाव/सिखाने-पढ़ाने के अभिवाक् को प्रथमदृष्ट्या स्थापित/साबित/सिद्ध करने के लिए भी अभिलेख पर कुछ नहीं है जिससे प्रश्नगत दान-विलेखों को विवादित किया गया है । इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि लम्बे समय से उसके और उसकी माता के बीच बोलचाल नहीं थी । उसने यह स्वीकार किया है कि पहली बार उसकी माता ने उसके पक्ष में मुख्तारनामा (प्रदर्श पी ए) निष्पादित किया था । यदि ऐसा था तो उसने वादपत्र में किए गए प्रकथनों के बारे में क्यों अभिसाक्ष्य नहीं दे सकी । उसका परिसाक्ष्य यह है कि श्री उमा दत्त ने कभी भी

उसकी माता की देखभाल नहीं की थी यह वादपत्र में किए गए प्रकथनों के विरोधाभास में है । उसने यह स्वीकार किया है कि उसे उसके पिता ने वर्ष 1969 में अलग कर दिया था और तभी से वह अलग रह रहा था । यह प्रतीत होता है कि वह भी संपत्ति के बारे में तथ्यात्मक पहलू को नहीं जानता था और वास्तविक स्थिति के बारे में भी वह स्पष्ट, सही और सत्यतापूर्वक अभिसाक्ष्य देने की स्थिति में नहीं था । उसने यह स्वीकार किया है कि जब दान-विलेख तैयार किए गए थे तब उसकी माता उसके साथ नहीं रह रही थी । वह उस घटना के बारे में नहीं जानता है जिसमें दान-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण हुआ था । यद्यपि, वह समय और स्थान के बारे में विनिर्दिष्ट जानकारी नहीं होने के बावजूद यह उल्लेख किया है कि उसकी माता ने उसे बताया था कि श्री उमा दत्त ने उस दुर्घटना के प्रतिकर के दावे के बारे में उसके कतिपय हस्ताक्षर लिए हैं जिसमें श्री नरेन्द्र सिंह की मृत्यु हो गई थी किन्तु, उसके बाद यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं लाया गया कि ऐसा दस्तावेज वस्तुतः उसके द्वारा निष्पादित किया जाना अपेक्षित था । श्रीमती विजयलक्ष्मी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि श्रीमती मोहनी देवी ऐसा प्रतिकर पाने के लिए अर्ह/हकदार थी । क्या वह एक आश्रित थी या नहीं, इसे साबित नहीं किया गया है । क्या किसी प्रतिकर का दावा किया गया है या नहीं इसे भी सिद्ध नहीं किया गया है । यह साक्षी ईमानदार व्यक्ति प्रतीत नहीं होता है और इस प्रकार, उसके परिसाक्ष्य का अवलंब वादी के मामले को सिद्ध करने के लिए नहीं लिया जा सकता है । प्रश्नगत भूमि 107 बीघा है । उसके एक भाग को राज्य सरकार द्वारा भी अर्जित किया गया है और प्रतिकर की रकम बहुत बड़ी है । श्री उमा दत्त का यह कथन भी अभिलेख पर है कि उसे वापस नहीं लिया जाएगा । किसी भी दशा में उसका खर्च वर्तमान अपील के निष्कर्षों पर निर्भर करेगा । यह प्रतीत होता है कि वर्ष 1986 में इस साक्षी ने पतियोग स्थित आवासीय मकान से अपनी माता को लाया था और उसके बाद अपने पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित करा लिया था । यह दर्शित करने के लिए कि भूमि का कब्जा वस्तुतः श्री उमा दत्त को नहीं सौंपा गया था, वादी ने श्री बस्ती राम (अभि. सा. 2) और श्री सानिया राम (अभि. सा. 3) की परीक्षा की है किन्तु इन दोनों साक्षियों का परिसाक्ष्य, न्यायालय के सुविचारित मत में, विश्वास पैदा नहीं करता है यह किसी भी दशा में उक्त तथ्य को सिद्ध नहीं करता है । श्री बस्ती राम ने यह कथन किया है कि भूमि श्रीमती मोहनी देवी के कब्जे में है किन्तु वह उसके विस्तार या विशिष्टियों के बारे में नहीं जानता है । वह यह भी नहीं जानता

है कि श्री उमा दत्त उस भूमि पर बने कमरों में से एक कमरे में रहता था । श्री सानिया राम ने इससे भिन्न बयान दिया है । उसके अनुसार, भूमि मात्र मोहनी देवी और उसके पुत्रों के कब्जे में थी । आश्चर्यजनक रूप से यद्यपि उसने श्रीमती मोहनी देवी के घर जाने का दावा किया है फिर भी वह यह नहीं जानता था कि क्या वह एक किराएदार थी या नहीं । उसने यह भी कथन किया है कि श्रीमती मोहनी देवी की मानसिक दशा ठीक नहीं थी जिसका किसी भी व्यक्ति ने पक्षकथन नहीं किया है । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, श्री उमा दत्त पश्चात्वर्ती वाद में साक्षी कठघरे में नहीं आया और श्रीमती मोहनी देवी भी अपनी स्वीकृति के स्पष्टीकरण देने के लिए प्रथम वाद में साक्षी कठघरे में नहीं आई । महत्वपूर्ण तौर पर, श्री कृष्ण सिंह भी कपट, दुर्व्यपदेशन और सिखाने-पढ़ाने की परिस्थितियों का स्पष्टीकरण देने के लिए प्रथम वाद में साक्षी के रूप में हाजिर नहीं हुआ, यद्यपि, असफल रूप से वह पश्चात्वर्ती वाद में अपनी माता का साधारण मुख्तारनामे के रूप में उपस्थित हुआ । सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा वादी और उसके कुटुम्ब सदस्यों के आचरण पर विचार करते हुए, यह प्रतीत होता है कि वाद दुरभिसंधि प्रकृति के थे और इसे मात्र प्रश्नगत दान-विलेखों के अधीन श्री उमा दत्त को मिलने वाले फायदों से वंचित करने के लिए ही फाइल किया गया था । जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है, निचले अपील न्यायालय ने निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष से असहमति जताने के लिए कोई कारण अभिलिखित नहीं किया है, वस्तुतः, इससे भी उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । निचले न्यायालय ने अनुमानों और कल्पनाओं के अधार पर वाद डिक्री करते हुए, आक्षेपित आदेश पारित किया जो अनुचित और अवैध है । दान-विलेखों को मात्र इस आधार पर अवैध नहीं कहा जा सकता कि वे दाता के हिस्से से अधिक थे । कम से कम दाता के हिस्से तक वे वैध हैं । वर्तमान मामले में, यह नहीं कहा जा सकता है कि वादी अशिक्षित और ग्रामीण होने के नाते असम्यक् प्रभाव/कपट या यह कि श्री उमा दत्त द्वारा उसे सिखाया-पढ़ाया गया था, के अधीन दस्तावेजों को निष्पादित की थी । यह नहीं कहा जा सकता कि विचारण न्यायालय ने गलत तौर पर प्रतिवादी का साक्ष्य बन्द किया था । उक्त आदेश को वापस मंगाने के लिए आवेदन को नामंजूर करना सही था क्योंकि अभिलेख से यह प्रकट होता है कि उसे प्रस्तुत करने के लिए प्रतिवादियों को पर्याप्त अवसर दिया गया था । (पैरा 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55 और 57)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	एच. एल. जे. 2011 (हि. प्र.) 428 : **श्री पवन कुमार और अन्य** बनाम **श्री तिलक राज और एक अन्य ;**	56
[2010]	(2010) 2 एस. सी. सी. 77 : **नरेन्द्र कान्ते** बनाम **अनुराधा कान्ते और अन्य ;**	32
[2009]	(2009) 7 एस. सी. सी. 363 : **सूरज लैंप एण्ड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड** मार्फत **इसके निदेशक** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य ;**	16
[2009]	(2009) 12 एस. सी. सी. 101 : **विश्वनाथ बापूराव साबले** बनाम **शालनी बाई नागप्पा साबले और अन्य ;**	27
[2009]	(2009) 3 एस. सी. सी. 287 : **नरेन्द्र गोपाल विद्यार्थी** बनाम **रजत विद्यार्थी ;**	19
[2008]	(2008) 8 एस. सी. सी. 564 : **के. बी. शाह एण्ड सन्स प्रा. लि.** बनाम **डेवलपमेंट कन्सलटेंट लिमिटेड ;**	26
[2007]	(2007) 6 एस. सी. सी. 401 : **एम. वेंकटरमण हेब्बर** बनाम **एम. राजगोपाल हेब्बर और अन्य ;**	31
[2006]	(2006) 4 एस. सी. सी. 658 : **हरिशंकर सिंघानिया और अन्य** बनाम **गौर हरि सिंघानिया और अन्य ;**	33
[2004]	(2004) 12 एस. सी. सी. 189 : **के. जी. शिवलिंगप्पा और अन्य** बनाम **जी. एस. ईश्वरप्पा और अन्य ;**	17
[2004]	ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1913 : **थियागराजन और अन्य** बनाम **वेणुगोपालस्वामी बी. कौल और अन्य ;**	36

[2000] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1828 :
हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य बनाम
अक्षरा नन्द ; 36

[1999] (1999) 4 एस. सी. सी. 350 :
अरुमुघम बनाम **सुन्दरम्बल और एक अन्य** ; 36

[1999] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3331 :
सुश्री लबन्या नियोगी बनाम **मैसर्स डब्ल्यू. बी. इंजीनियरिंग कम्पनी** ; 36

[1999] (1999) 7 एस. सी. सी. 431 :
लबन्या नियोगी (सुश्री) मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण, मुख्तारनामाधारक श्री डी. आर. सुभाषिश नियोगी** बनाम **डब्ल्यू. बी. इंजीनियरिंग कम्पनी** ; 39

[1986] आई. एल. आर. 1986 एच. पी. (खंड xv) 190 :
भगवत प्रसाद बनाम **मुकत लाल और अन्य** ; 18

[1982] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 679 :
महबूब साहेब बनाम **एन. सब्बरयान चौधरी और अन्य** ; 36

[1976] (1976) 3 एस. सी. सी. 119 :
काले और अन्य बनाम **चकबंदी उप निदेशक और अन्य** ; 18

[1969] 1969 (1) यू. जे. एस. सी. 86 :
राणा विद्याभूषण सिंह बनाम **रति राम** ; 20

[1968] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1299 :
शिरोमणी बनाम **हेम कुमार और अन्य** ; 17

[1961] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1655 :
जावेर चन्द और अन्य बनाम **पुखराज सुरना** ; 30

[1958] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 706 :
नानी बाई बनाम **गीता बाई कोमरामा गुंगे** ; 17

[1952] ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 153 :
काशीनाथ भास्कर दातर बनाम **भास्कर बिशेश्वर** । 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1995 की नियमित द्वितीय अपील सं. 250 के साथ 1998 की नियमित अपील सं. 117.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन नियमित द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से (दोनों अपीलों में)	सर्वश्री भूपिन्दर गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ जनेश गुप्ता, अधिवक्ता
प्रत्यर्थियों की ओर से (1995 की नियमित द्वितीय अपील सं. 250 में प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 4 की ओर से तथा 1998 की नियमित द्वितीय अपील सं. 117 में प्रत्यर्थी सं. 2(क) से 2(ङ) की ओर से)	सर्वश्री जी. डी. वर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ बी. सी. वर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति संजय करोल – श्री जीत सिंह की राजस्व संपदा, शिमला में कतिपय कृषि भूमि थी । उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका एकमात्र पुत्र श्री जय सिंह ने उसे उत्तराधिकार में प्राप्त किया । श्री जय सिंह का श्रीमती मोहनी देवी के साथ विवाह हुआ और उनके विवाह से तीन बच्चे अर्थात् पुत्र श्री कृष्ण सिंह और श्री नरेन्द्र सिंह तथा पुत्री सुश्री मउली देवी उत्पन्न हुए । अभिकथित तौर पर अपने जीवनकाल के दौरान ही श्री जय सिंह ने अपनी सम्पत्तियों का विभाजन अपने पुत्रों श्री कृष्ण सिंह और श्री नरेन्द्र सिंह के बीच श्रीमती मोहनी देवी और सुश्री मउली देवी को उनके उत्तराधिकार से अपवर्जित करते हुए, कर दिया । वाद सम्पत्तियां ग्राम पतियोग में स्थित थीं, तारीख 20 जून, 1971 के अभिकथित विभाजन को ध्यान में रखते हुए, उसके छोटे पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह ने अपने हिस्से में आने वाले भाग को संयोग से अपने दामाद को कतिपय अचल सम्पत्तियों का प्रबंध करने के लिए दे दिया और इस प्रकार, वह दूसरे ग्राम राही में अपने कुटुम्ब के साथ रहने लगा जो ग्राम पतियोग से काफी दूर था । जय सिंह की तारीख 30 जून, 1977 को मृत्यु हो गई । ग्राम पतियोग में कृषि भूमि के ऊपर चार कमरे वाले आवासीय मकान निर्मित किया गया था । श्री नरेन्द्र सिंह ने उक्त मकान में अपनी माता श्रीमती मोहनी देवी को रहने की इजाजत दी थी । उसने उक्त आवासीय मकान के कमरों में से एक कमरे में किराएदार के रूप में श्री उमा दत्त को रख लिया था । तारीख 26 अप्रैल, 1982 को श्री नरेन्द्र सिंह की मृत्यु हो गई जब वह मात्र 45 वर्ष का था । यह प्रतीत होता है कि उसका कुटुम्ब ग्राम राही में निरन्तर रुका रहा । श्री कृष्ण सिंह भी अपनी माता के साथ नहीं रहता था जिसका अपने पिता के समय से ही निवास और रसोईघर भी अलग था । श्रीमती मोहनी देवी ने

श्री उमा दत्त के पक्ष में तारीख 10 अक्तूबर, 1984 और तारीख 24 दिसम्बर, 1985 के दो दान-विलेख निष्पादित किए जो उप-रजिस्ट्रार कार्यालय में विभिन्न तारीखों पर पृथक्तः रजिस्ट्रीकृत किए गए । तारीख 10 अक्तूबर, 1984 का दान-विलेख उस सम्पूर्ण आवासीय मकान से संबंधित था जिसमें वह रह रही थी और उसमें किराए पर दिए गए भाग भी सम्मिलित थे तथा तारीख 24 दिसम्बर, 1985 का दान-विलेख ग्राम पतियोग में स्थित शेष कृषिय भूमि से संबंधित थे । इन तीनों दान-विलेखों के निष्पादन को श्री जय सिंह/नरेन्द्र के विधिक उत्तराधिकारियों/हित उत्तराधिकारियों के नोटिस में लाया गया जिन्होंने शिमला में सिविल न्यायालय के समक्ष पृथक् कार्यवाहियां संस्थित की थीं ।

2. 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 शीर्षक श्रीमती विजयलक्ष्मी और अन्य बनाम श्रीमती सरजू देवी और अन्य को स्वर्गीय श्री नरेन्द्र सिंह की मात्र पत्नी और बच्चों द्वारा ही श्री उमा दत्त (प्रतिवादी सं. 1), श्रीमती मोहनी देवी (प्रतिवादी सं. 2), श्री कृष्ण सिंह (प्रतिवादी सं. 3) और सुश्री मउली देवी (प्रतिवादी सं. 4) के विरुद्ध तारीख 20 मई, 1985 को संस्थित किया गया था जिसमें वादियों ने निम्नलिखित अनुतोषों की प्रार्थना की थी :–

> "इसलिए, यह प्रार्थना की जाती है कि वादियों का वाद प्रतिवादियों के विरुद्ध निम्नलिखित आधारों पर डिक्री की जा सकती है –
>
> (i) प्रतिवादियों के विरुद्ध वादियों के पक्ष में यह घोषणात्मक डिक्री पारित की जा सकती है कि वादी, उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में रजिस्ट्रीकृत वाद में संबद्ध ततिमा (और तारीख 10 अक्तूबर, 1984 के दान-विलेख से भी संबद्ध) के अनुसार, खसरा सं. 19/1 में 6 बिस्वा भूमि पर स्थित क्षेत्र और भवन के स्वामी हैं तथा पारिणामिक अनुतोष के रूप में प्रतिवादी सं. 1 और 2 को किसी भी अन्य तरीके से वाद सम्पत्ति के संबंध में तारीख 10 अक्तूबर, 1984 के दान-विलेख सं. 33 का उपयोग करने से भी अवरुद्ध कर दिया जाए ।
>
> (ii) एक आज्ञापक व्यादेश की डिक्री वादियों के पक्ष में प्रतिवादी सं. 1 और 2 के विरुद्ध जारी किया जाए यह अपेक्षा करते हुए कि वे वर्ष 1978-79 के लिए जमाबंदी के अनुसार मौजा-पतियोग, तहसील और जिला-शिमला में स्थित खसरा सं.

19/1 के क्षेत्र पर मौजूद भवन तथा क्षेत्र का कब्जा वादियों को सौंप दें ।

(iii) वैकल्पिक रूप में, खसरा सं. 19/1 के क्षेत्र और भवन के स्वामियों के रूप में वादियों को घोषित करने के पश्चात् उसके कब्जे की डिक्री भी प्रतिवादियों के विरुद्ध पारित किया जाए ।"

3. जबकि तारीख 12 जून, 1986 को व्यक्तिगत रूप से श्रीमती मोहनी देवी ने 1986 की सिविल वाद सं. 86-1, शीर्षक श्रीमती मोहनी देवी और अन्य बनाम श्रीमती सरजू देवी और अन्य को श्री उमा दत्त प्रतिवादी सं. 1, सुश्री मउली देवी प्रतिवादी सं. 2, श्री कृष्ण सिंह प्रतिवादी सं. 3 और श्री नरेन्द्र सिंह के विधिक उत्तराधिकारियों (1985 की सिविल वाद सं. 108/1 के वादियों) प्रतिवादी सं. 4 से 7 के विरुद्ध निम्नलिखित अनुतोषों की प्रार्थना करते हुए फाइल की थी :–

"इसलिए, यह प्रार्थना की जाती है कि वादी के पक्ष में और प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध इस प्रभाव की घोषणा की जाएगी कि उप-रजिस्ट्रार, शिमला के कार्यालय में रजिस्ट्रीकृत क्रम सं. 584, पुस्तिका सं. 1, खंड 36, पृष्ठ सं. 120, 22 अक्तूबर, 1984 को रजिस्ट्रीकृत तारीख 10 अक्तूबर, 1984 के दान-विलेख, जो ग्राम पतियोग में खसरा सं. 19/1 में समाविष्ट 4 कमरों के मकान से संबंधित है और उप-रजिस्ट्रार, शिमला के कार्यालय में रजिस्ट्रीकृत क्रम सं. 689, पुस्तिका सं. 1, खंड 37, पृष्ठ 53, तारीख 3 दिसम्बर, 1985 को रजिस्ट्रीकृत तारीख 24 दिसम्बर, 1984 के दान-विलेख, जो ग्राम पतियोग, परगना जाजहट, तहसील और जिला शिमला में खसरा सं. 9, 43, 605/25, 603/25, 601/25, 600/25 और 602/25 में समाविष्ट भूमि से संबंधित है, को अवैध, अकृत और शून्य घोषित किया जाए और प्रतिवादी सं. 1 के किसी अधिकार की पुष्टि नहीं की जाए ।"

4. इन दोनों वादों का प्राथमिक तौर पर श्री उमा दत्त द्वारा विरोध किया गया जिसकी विचारण के दौरान मृत्यु हो गई और तत्पश्चात् उसके विधिक प्रतिनिधियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् लड़ने वाले प्रतिवादियों के रूप में कहा गया है) को अभिलेख पर लाया गया ।

5. विचारण न्यायालय ने तारीख 24 मई, 1993 के निर्णय और डिक्री

द्वारा 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 को डिक्री कर दिया, जिसकी विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला ने 1993 की सिविल अपील सं. 69-एस/13, शीर्षक श्रीमती सरजू देवी और अन्य बनाम श्रीमती विजयलक्ष्मी और अन्य में पारित तारीख 4 मई, 1995 के निर्णय और डिक्री द्वारा पुष्टि कर दी । अतएव, लड़ने वाले प्रतिवादियों ने वर्तमान 1995 की नियमित द्वितीय अपील सं. 250 फाइल की ।

6. 1986 की सिविल वाद सं. 86-1 को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 31 अगस्त, 1992 के निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसमें वादियों की अपील को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 1992 की सिविल अपील सं. 75-एस/13 शीर्षक सुश्री मउली देवी और अन्य बनाम श्रीमती सरजू देवी और अन्य में पारित तारीख 24 अक्तूबर, 1997 के निर्णय और डिक्री द्वारा उलट दिया गया । वही अब लड़ने वाले प्रतिवादियों द्वारा फाइल वर्तमान 1998 की नियमित द्वितीय अपील सं. 117 की विषय-वस्तु है ।

7. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन फाइल इन अपीलों को एक साथ सुना गया और तथापि, इन पर पृथकतः विचार करते हुए एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जाएगा ।

8. गुणागुणों पर अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री भूपिन्दर गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता तथा श्री जी. डी. वर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता और श्री अजय कुमार, ज्येष्ठ अधिवक्ता को सुना गया । मैं, सर्वप्रथम 1995 की नियमित द्वितीय अपील सं. 250 पर विचार करता हूं, जिसे निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्नों पर स्वीकार किया गया है :–

> "(1) क्या मामले की परिस्थितियों में जय सिंह अपनी पत्नी को हिस्सा दिए बिना अपने दोनों पुत्रों के साथ संपत्ति का विभाजन कराने का हकदार है ?
>
> (2) क्या विभाजन विलेख साक्ष्य में ग्राह्य योग्य है ?
>
> (3) क्या श्रीमती मोहनी देवी संपत्ति में 1/4 भाग उत्तराधिकार में अथवा विवादित संपत्ति में 1/3 भाग प्राप्त कर सकती है ?
>
> (4) क्या उक्त जय सिंह द्वारा कराया गया विभाजन विधिमान्य विभाजन है ? यदि नहीं तो इसका प्रभाव क्या है ?
>
> (5) क्या कब्जे की डिक्री इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए

पारित की जा सकती है कि स्वीकृततः अपीलार्थी आरम्भ में किराएदार के रूप में प्रवेश किया था और यदि विभाजन को शून्य या शून्यकरणीय घोषित किया जाता है तो क्या यथापूर्व स्थिति प्रभाव में नहीं आएगी और क्या कब्जे की डिक्री पारित की जा सकती है ?"

9. प्रश्नगत वाद अर्थात् 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 में वादियों द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि श्री जय सिंह ने तारीख 20 जून, 1971 को अपनी अचल संपत्तियों का विभाजन उक्त तारीख की विभाजन विलेख (चिह्न-एक्स/प्रदर्श सी. डब्ल्यू. 1/ए) द्वारा किया और वाद संपत्ति उसके पूर्व हिताधिकारी श्री नरेन्द्र सिंह के अनन्य हिस्से में आया । चूंकि श्रीमती मोहनी देवी का उसमें कोई अधिकार, हक या हित नहीं था इसलिए, वह तारीख 10 अक्तूबर, 1984 का दान-विलेख निष्पादित नहीं कर सकती थी । चुनौती सारतः प्रथा द्वारा विधि में प्रतिषेध के आधार पर की गई थी ।

10. उक्त वाद में महत्वपूर्ण यह था कि श्री उमा दत्त और श्रीमती मोहनी देवी ने वादियों द्वारा अभिकथित विभाजन के निष्पादन से इनकार करते हुए, तारीख 9 सितम्बर, 1985 को एक संयुक्त लिखित कथन फाइल किया । यह विनिर्दिष्टतः अभिवाक् किया गया कि चूंकि श्रीमती मोहनी देवी की देख-भाल श्री उमा दत्त द्वारा की गई थी, इसलिए, स्नेह और प्रेम के वशीभूत होकर उसने प्रश्नगत दान-विलेख को निष्पादित किया । अभिलेखों से यह प्रकट होता है कि तारीख 20 सितम्बर, 1986 को श्रीमती मोहनी देवी ने एक अन्य लिखित कथन फाइल करते हुए यह अभिवाक् किया कि वह एक अशिक्षित, ग्रामीण और गंवार महिला है और श्री उमा दत्त जो एक चालाक और शातिर व्यक्ति है, ने उसके तनावपूर्ण कुटुम्ब संबंधों का लाभ उठाते हुए उसका दिमाग विषाक्त कर दिया और उसे स्वयं उसके कुटुम्ब सदस्यों के विरुद्ध कर दिया । योजनाबद्ध तरीके से उसे पथभ्रष्ट कर दिया और उसने कपट /असम्यक् प्रभाव/प्रवंचनापूर्ण तरीके से विभिन्न दस्तावेजों पर उसका अंगूठा निशान ले लिया । इस बात की समझ होने पर वह अब उपचारात्मक उपायों को अपना रही है । अन्य प्रतिवादियों ने वाद का विरोध नहीं किया ।

11. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर विचारण न्यायालय ने विभिन्न विवाद्यक विरचित किए :–

"(1) क्या प्रतिवादी सं. 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में निष्पादित दान-विलेख अवैध, शून्य तथा वादियों के अधिकार, हक और हित के विरुद्ध अप्रवर्तनीय है ?

(2) क्या वादी, वाद-पत्र के पैरा 6 में यथाअभिकथित वाद संपत्ति के कब्जे सहित स्वामी है ?

(3) क्या वादी, यथाप्रार्थित आज्ञापक व्यादेश के अनुतोष को पाने के हकदार हैं ?

(4) क्या वादी वैकल्पिक रूप में, यथाप्रार्थित वाद संपत्ति के कब्जे के हकदार हैं ?

(5) क्या यथाअभिकथित रूप से वर्तमान प्ररूप में वाद सक्षम नहीं है, न ही यह कायम रखे जाने योग्य है ?

(6) क्या वादी यथाअभिकथित रूप से वर्तमान वाद फाइल करने से विबंधित हैं ?

(7) अनुतोष ।"

12. विचारण न्यायालय ने विचारण के पश्चात् वादियों का वाद डिक्री कर दिया । विचारण न्यायालय ने तारीख 20 जून, 1971 के विलेख (चिह्न-एक्स/प्रदर्श सी. डब्ल्यू. 1/ए) द्वारा वादियों की कुटुम्ब विभाजन की दलील को नामंजूर कर दिया क्योंकि उसने यह पाया कि वस्तुतः कोई विभाजन हुआ ही नहीं था । तथापि, तारीख 10 अक्तूबर, 1984 के दान-विलेख (प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए) को मात्र इस कारण से अविधिमान्य अभिनिर्धारित कर दिया कि यह श्रीमती मोहनी देवी के हिस्से के आधिक्य में है ।

13. तथापि, लड़ने वाले प्रतिवादियों की अपील में निचले अपील न्यायालय ने तथ्य के ऐसे निष्कर्षों को भागतः उलट दिया । यह अभिनिर्धारित किया कि श्री जय सिंह के जीवनकाल के दौरान ही उक्त विलेख के निबंधनों में संपत्ति का विभाजन हुआ था और इस प्रकार, श्री नरेन्द्र सिंह वाद संपत्ति का अनन्य स्वामी हो गया था । विनिर्दिष्टतः यह अभिनिर्धारित किया कि श्रीमती मोहनी देवी ने अपने पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह की संपदा में एक सीमित हिस्से को उत्तराधिकार में प्राप्त किया किन्तु, क्योंकि दान-विलेख उसके हिस्से से अधिक का किया गया था इसलिए, यह अवैध था ।

14. विभाजन के प्रश्न पर, निचले अपील न्यायालय का निष्कर्ष एकमात्र विभाजन विलेख (चिह्न-एक्स/प्रदर्श सी. डब्ल्यू. 1/ए) पर आधारित था । विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए तथ्य के निष्कर्ष विनिर्दिष्टतः इसके अनुसार नहीं थे ।

15. श्री जय सिंह ने अपनी पत्नी और पुत्री को अपवर्जित करते हुए अपने दोनों पुत्रों के बीच अपनी संपूर्ण संपत्ति का विभाजन किया था । किन्तु, प्रश्न यह है कि क्या उसने वस्तुतः ऐसा किया था । अब इस विभाजन विलेख का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि यह तात्सामयिक था । यह एक विभाजन लिखत था और उस विभाजन को अभिलिखित करने वाला ज्ञापन नहीं था जो इसके निष्पादन के पूर्व किया गया था । निःसंदेह रूप से यह दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत नहीं है । वर्तमान मामले में, दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण पूर्णरूपेण आवश्यक था क्योंकि यह विभाजन तात्सामयिक है और न कि यह उस विभाजन का ज्ञापन है जो इसके निष्पादन के पूर्व किया गया था । वर्तमान मामले में, यह दस्तावेज स्वयं ही अचल संपत्ति में हित सृजित करता है । इस पहलू पर, संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 54, 107, 123 के उपबंधों के साथ भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 और धारा 49 के उपबंध प्रकटतः स्पष्ट हैं ।

16. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सूरज लैंप एण्ड इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड** मार्फत **इसके निदेशक** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में, एक दस्तावेज की रजिस्ट्रीकरण के प्रयोजन, आवश्यकता और फायदों पर निम्नलिखित निबंधनों में जोर दिया है :–

> "रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908, अचल संपत्ति से संबंधित संव्यवहारों के बारे में क्रमबद्धतता, अनुशासन और लोक नोटिस उपबंधित करने तथा दस्तावेजों के अंतरण में कपट और कूटरचना से संरक्षण उपबंधित करने के आशय से अधिनियमित किया गया है । इसे कतिपय प्रकार के दस्तावेजों की अनिवार्य रजिस्ट्री की अपेक्षा और अरजिस्ट्रीकरण के परिणामों को उपबंधित करके प्राप्त किया जा सकता है । रजिस्ट्रीकरण अचल संपत्ति से संबंधित संव्यवहारों की सुरक्षा और सुनिश्चितता उपबंधित करता है, यदि दस्तावेज खो जाता है या नष्ट हो जाता है । यह दस्तावेजों के संव्यवहारों और निष्पादन

---

[1] (2009) 7 एस. सी. सी. 363.

के बारे में होने वाले कूटरचना और कपट को रोकने के लिए दस्तावेजों को लोकप्रियता और लोकप्रदर्शन उपबंधित कराता है । रजिस्ट्रीकरण उन लोगों को सूचना उपबंधित करता है जो संपत्ति के बारे में संव्यवहार करते हैं, उस संपत्ति की प्रकृति और अधिकारों की सीमा क्या है जो व्यक्ति उस संपत्ति से प्रभावित होते हैं । यह लोगों को यह पता लगाने के लिए समर्थ बनाता है कि क्या कोई विशिष्ट संपत्ति, जिससे वे संबंधित हो सकते हैं, किसी विधिक बाध्यता या दायित्व के अध्यधीन तो नहीं हैं और कौन या वे कौन से व्यक्ति वर्तमान रूप में उस संपत्ति में अधिकार, हक और हित रखते हैं । यह दस्तावेजों को एक समान प्ररूप और शास्वत बनाता है जिसका विधिक महत्व होता है या उन्हें अभिलिखित करते हुए सुसंगत बनाता है, जहां लोग अभिलेख को देख सकते हैं और उसके बारे में पूछताछ कर सकते हैं तथा यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि उसकी विशिष्टियां क्या हैं और जहां तक भूमि का संबंध है, उसके बारे में बाध्यताएं क्या हैं । यह सुनिश्चित करता है कि अचल संपत्ति का संव्यवहार करने वाला प्रत्येक व्यक्ति रजिस्टरों में समाविष्ट कथनों (उक्त अधिनियम के अधीन रखे गए) पर विश्वास करते हुए अवलंब ले सकता है क्योंकि यह सभी संव्यवहारों का पूर्ण और संपूर्ण दस्तावेज होता है जिसके द्वारा संपत्ति का हक प्रभावित हो सकता है और सम्यक् रूप से प्रमाणित उद्धरण/प्रतियां सुनिश्चित की जाती हैं ।"

17. **काशीनाथ भास्कर दातर** बनाम **भास्कर बिशेश्वर**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि दस्तावेज स्वयमेव ही अचल संपत्ति में हित सृजित करता है तो यह तथ्य कि यह एक अन्य दस्तावेज के निष्पादन में अनुध्यात है तो भी यह रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 के उपबंधों के अधीन रजिस्ट्रीकरण से छूट प्राप्त नहीं होगा । माननीय उच्चतम न्यायालय ने इसी प्रभाव का निर्णय पश्चात्वर्ती विनिश्चयों अर्थात् **नानी बाई** बनाम **गीता बाई कोमरामा गुंगे**[2], **शिरोमणी** बनाम **हेम कुमार और अन्य** तथा **शिरोमणी और एक अन्य** बनाम **दीनमणी**[3] और **के. जी. शिवलिंगप्पा और अन्य** बनाम **जी. एस.**

---

[1] ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 153.

[2] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 706.

[3] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1299.

ईश्वरप्पा और अन्य[1] में दिया ।

18. **काले और अन्य** बनाम **चकबंदी उप-निदेशक और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि कौटुम्बिक समझौता मौखिक भी हो सकता है जिसका रजिस्ट्रीकरण आवश्यक नहीं होता । तथापि, रजिस्ट्रीकरण तभी आवश्यक होगा यदि कौटुम्बिक समझौते के निबंधन लेखबद्ध हैं और विभाजन लिखत में है और कौटुम्बिक समझौते के पश्चात् यह मात्र ज्ञापन के रूप में नहीं है जिसे पहले ही किया जा चुका था । इस न्यायालय ने **भगवत प्रसाद** बनाम **मुकत लाल और अन्य**[3] वाले मामले में भी ऐसा ही अभिनिर्धारित किया है ।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नरेन्द्र गोपाल विद्यार्थी** बनाम **रजत विद्यार्थी**[4] वाले मामले में, दान/नकद दी गई संदान की रजिस्ट्रीकरण में विभेद किया है जिसमें रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं है ।

20. **राणा विद्याभूषण सिंह** बनाम **रति राम**[5] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "विधि द्वारा अपेक्षित दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण होना चाहिए, यदि यह अरजिस्ट्रीकृत है तो यह अचल संपत्ति को प्रभावित करने वाले संव्यवहारों के साक्ष्य के रूप में अग्राह्य है, किन्तु यह साम्पार्श्विक तथ्यों या किसी अन्य साम्पार्श्विक परियोजनों के साक्ष्य के रूप में स्वीकृत हो सकता है कि यह अचल संपत्ति में अधिकारों के सृजन, घोषणा, समनुदेशन, सीमा या निर्वापन के अलावा किसी अन्य प्रयोजन के लिए भी स्वीकृत हो सकता है ।"

21. अतएव, विभाजन विलेख की रजिस्ट्रीकरण के अभाव में, सिवाय साम्पार्श्विक प्रयोजनों के लिए, निचला अपील न्यायालय उस पर विचार नहीं कर सकता है क्योंकि यह साक्ष्य का विधिक भाग नहीं है और उसका एकमात्र अवलंब लेते हुए यह निष्कर्ष निकालना विधिक तौर पर त्रुटिपूर्ण है कि श्री जय सिंह अपने जीवनकाल के दौरान ही अपने दोनों पुत्रों के बीच अपनी संपत्तियों का विभाजन कर दिया था और इस प्रकार, वाद सम्पत्ति

---

[1] (2004) 12 एस. सी. सी. 189.

[2] (1976) 3 एस. सी. सी. 119.

[3] आई. एल. आर. 1986 एच. पी. (खंड xv) 190.

[4] (2009) 3 एस. सी. सी. 287.

[5] 1969 (1) यू. जे. एस. सी. 86.

अनन्य रूप से उसके छोटे पुत्र नरेन्द्र सिंह के हिस्से में आ गई थी । महत्वपूर्ण तौर पर निचले अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित नहीं किया है कि वाद संपत्ति की चौहद्दी और सीमांकन करते हुए, विभाजन किया गया था इस तथ्य को अन्य समकालीन सामग्रियों द्वारा भी साबित नहीं किया गया है । यह भी अभिनिर्धारित नहीं किया गया है कि दस्तावेज, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 में अन्तर्विष्ट अपवादों में से किसी के भी भीतर आता है और इस प्रकार, रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित नहीं है । यह भी अभिनिर्धारित नहीं किया है कि साम्पार्श्विक प्रयोजनों के लिए इस पर विचार किया जा सकता है ।

22. मेरा यह सुविचारित मत है कि यह दर्शित करने के लिए इस मामले के अभिलेख पर कुछ नहीं है कि श्री जय सिंह ने अपने जीवनकाल के दौरान ही अपनी संपत्तियों का विभाजन कर दिया था ताकि श्री नरेन्द्र सिंह वाद संपत्ति का अनन्य स्वामी बन सके । विभाजन विलेख के निष्पादन के 6 वर्षों पश्चात् श्री जय सिंह की मृत्यु हो गई थी । यह दर्शित करने के लिए कोई भी दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है कि या तो अपने जीवनकाल के दौरान या श्री नरेन्द्र सिंह के जीवनकाल के दौरान प्रभावी कुटुम्ब विभाजन की प्रविष्टियां कहीं भी अभिलिखित की गई हैं यहां तक कि राजस्व अभिलेखों में भी इनकी प्रविष्टियां नहीं हैं ।

23. इस मामले के प्रत्यक्ष साक्ष्य पर विचार करते हैं, वादी श्रीमती विजयलक्ष्मी (अभि. सा. 1) ने यह स्वीकार किया है कि कौटुम्बिक विभाजन रजिस्ट्रीकृत नहीं था । उसने यह कथन किया है कि विभाजन के समय पर भी श्री जय सिंह ने कुटुम्ब खर्चों पर दो कमरों का निर्माण कराया था । उसने यह स्वीकार किया है कि उसके पति और उसकी सास के जीवनकाल के दौरान भी श्री उमा दत्त ने किराएदार के रूप में दो कमरों पर कब्जा कर लिया था । इससे विभाजन का अभिवाक् पूर्णतया मिथ्या होता है । स्वीकृततः उमा दत्त को किराएदार के रूप में श्रीमती मोहनी देवी द्वारा रखा गया था न कि श्री जय सिंह या श्री नरेन्द्र सिंह द्वारा रखा गया था । महत्वपूर्ण तौर पर, दान-विलेख को मात्र विधि में प्रतिषेध/एक बाहरी व्यक्ति में संपत्ति के अन्यसंक्रामण नहीं करने के प्रथागत अधिकार मौजूद नहीं रहने के आधार पर चुनौती दी गई थी । उसके कथन के अलावा ऐसे किसी प्रथा को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं लाया गया है । यहां तक कि कोई कानूनी विधि भी नहीं है जो उमा दत्त के पक्ष में अन्तरण को प्रतिषिद्ध करती हो । महत्वपूर्ण तौर पर, इस मामले में श्रीमती मोहनी देवी

स्वयं या अपने मुख्तारनामे के माध्यम से साक्षी कटघरे में नहीं आई और इस साक्षी ने भी उमा दत्त की ओर से किए गए किसी कपट/असम्यक् प्रभाव/सिखाए जाने के बारे में भी कुछ नहीं कहा है । दी गई परिस्थितियों में, श्रीमती मोहनी देवी पर यह निर्भर करता था कि वह अपने संयुक्त लिखित कथन द्वारा की गई स्वीकृति के बारे में स्पष्टीकरण करती । महत्वपूर्ण तौर पर, ऐसी स्वीकृतियां भी प्रत्याहरण नहीं की गई थीं । इस साक्षी ने यह भी स्वीकार किया है कि मात्र श्रीमती मोहनी देवी ही ग्राम पतियोग में रहती थी जबकि वह अपने पति और कुटुम्ब के साथ एक अन्य ग्राम राही में रहती थी । यह मात्र मूल संयुक्त लिखित कथन में लिए गए अभिवाक् के विश्वास को दर्शित करता है । यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि न तो सुश्री मउली देवी न ही श्री कृष्ण सिंह ने वाद का विरोध किया है अथवा न ही उन्होंने लड़ने वाले पक्षकारों के पक्ष में अथवा विरोध में अभिसाक्ष्य दिया है ।

24. श्री अनोखी राम (अभि. सा. 2) विभाजन विलेख का एक साक्षी है, किन्तु उसके साक्ष्य से यह सिद्ध नहीं होता है कि उसने कभी भी श्री नरेश्वर सिंह (अभि. सा. 3) के इस साक्ष्य पर कार्य किया है कि कौटुम्बिक विभाजन उसकी उपस्थिति में नहीं किया गया है किन्तु उसके बाद यह कहते हुए उसके बयान को सही माना गया है कि उसने अपने बड़ों से ही उसके बारे में सुना है । श्रीमती शांति देवी (अभि. सा. 4) के साक्ष्य से भी यह कथन सिद्ध नहीं होता है कि संपत्ति का वस्तुतः विलेख के निबंधनों में विभाजन हुआ था ।

25. जैसा कि पूर्व में उल्लिखित किया जा चुका है, वर्तमान मामले में, यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर प्रथमदृष्ट्या कुछ नहीं है कि विभाजन, वस्तुतः विभाजन विलेख निष्पादित होने के पूर्व किया गया था । यह दर्शित करने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि पक्षकारों ने उसके आधार पर कार्य किया ।

26. **के. बी. शाह एण्ड सन्स प्रा. लि.** बनाम **डेवलपमेंट कन्सलटेंट लिमिटेड**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि (i) दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत होना अपेक्षित है, यदि यह अरजिस्ट्रीकृत है तो यह रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 के अधीन साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है । (ii) तथापि, ऐसा अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज, रजिस्ट्रीकरण

---

[1] (2008) 8 एस. सी. सी. 564.

अधिनियम, 1908 की धारा 49 के परन्तुक में यथाउपबंधित साम्पार्श्विक प्रयोजनों के लिए साक्ष्य के रूप में प्रयोग हो सकता है । (iii) एक साम्पार्श्विक संव्यवहार को स्वतंत्र होना चाहिए, या विभाज्य प्ररूप में होना चाहिए, संव्यवहार इस प्रभाव का होना चाहिए जैसा कि विधि के अधीन रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित होता है, (iv) एक साम्पार्श्विक संव्यवहार स्वयमेव ही रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज द्वारा अपेक्षित रूप से प्रभावित नहीं होता है, कि यह एक सौ रुपए या उससे अधिक के मूल्य की अचल संपत्ति में संव्यवहार आदि करते हुए किसी अधिकार, हक या हित सृजित करता है और (v) यदि एक दस्तावेज अपेक्षित रजिस्ट्रीकरण के लिए साक्ष्य में अग्राह्य है तो इसके निबंधनों में से कोई भी निबंधन साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हो सकता है और एक महत्वपूर्ण खंड को साबित करने के प्रयोजन के लिए दस्तावेज का प्रयोग एक साम्पार्श्विक प्रयोजन के लिए नहीं किया जा सकेगा ।

27. रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 के अधीन एक दस्तावेज के वैध निष्पादन की उपधारणा सृजित की गई है (**विश्वनाथ बापूराव साबले** बनाम **शालनी बाई नागप्पा साबले और अन्य**[1]) । तथापि, उक्त उपधारणा खंडनीय है और इस संबंध में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 91 और 92 सुव्यक्ततः स्पष्ट हैं । श्रीमती मोहनी देवी द्वारा श्री उमा दत्त के साथ फाइल संयुक्त अपने प्रथम लिखित कथन में की गई स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए, जिसमें श्री उमा दत्त का पक्षकथन विनिर्दिष्टतः और असंदिग्धतः स्वीकृत है और जिसमें उसने अपने द्वितीय लिखित कथन में उस स्वीकृति को वापस नहीं लिया है जो अत्यधिक स्पष्टीकरण की प्रकृति में है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 58 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, ऐसी स्वीकृतियों को प्रतिवादी श्री उमा दत्त द्वारा साबित किया जाना अपेक्षित नहीं था ।

28. अतएव, यह नहीं कहा जा सकता है कि वादी यह साबित करने में सफल रहा है कि प्रश्नगत संपत्ति का कभी भी जय सिंह द्वारा अपने पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह के पक्ष में विभाजन किया गया था ।

29. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री जी. डी. वर्मा ने विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिए गए विभिन्न विनिश्चयों के विनिश्चयाधार के प्रति मेरा ध्यान आकर्षित किया है, मैं इन्हें वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू होने योग्य नहीं पाता हूं ।

---

[1] (2009) 12 एस. सी. सी. 101.

30. **जावेर चन्द और अन्य** बनाम **पुखराज सुरना**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के चार न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय भी वादी की कोई सहायता नहीं करता है । न्यायालय ने रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के उपबंधों पर विचार नहीं किया था अपितु भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के उपबंधों पर विचार किया था । स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 36 में ही यह अनुध्यात है कि जहां एक लिखत जिस पर पर्याप्त तौर पर स्टाम्प नहीं लगाया गया है, वह उक्त अधिनियम की धारा 61 के अधीन यथाअनुध्यात कतिपय परिस्थितियों के सिवाय साक्ष्य, में स्वीकृत है, उसे तत्पश्चात् इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है कि लिखत पर सम्यक् रूप से स्टाम्प नहीं लगाया गया था ।

31. **एम. वेंकटरमण हेब्बर** बनाम **एम. राजगोपाल हेब्बर और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चमत न्यायालय ने दिए गए तथ्यों में यह अभिनिर्धारित किया कि कौटुम्बिक विभाजन के लिखत का रजिस्ट्रीकरण आवश्यक नहीं है क्योंकि यह उपधारणा की जाती है कि संपत्ति का त्यजन भविष्य की तारीख से प्रभाव में आता है ।

32. **नरेन्द्र कान्ते** बनाम **अनुराधा कान्ते और अन्य**[3] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने ऐसे मामले पर विचार किया जिसमें अन्तरिम व्यादेश एक अरजिस्ट्रीकृत कौटुम्बिक विभाजन के आधार पर मंजूर किया गया था । इसका उस कौटुम्बिक समझौते के बारे में प्रथमदृष्ट्या प्ररूप में ही अवलंब लिया गया था, जो विचारण के अधीन था ।

33. **हरिशंकर सिंघानिया और अन्य** बनाम **गौर हरि सिंघानिया और अन्य**[4] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने साधारणतः यह अभिनिर्धारित किया कि एक कौटुम्बिक समझौते को किसी अन्य औपचारिक वाणिज्यिक समझौते के प्ररूप से भिन्न समझा जाता है क्योंकि कौटुम्बिक समझौता कुटुम्ब सदस्यों के बीच शांति और सद्इच्छा को सुनिश्चित करता है । परिसीमा आदि की तकनीकियों को कुटुम्ब द्वारा किए गए समझौते को लागू करने पर थोपा नहीं जाना चाहिए । किन्तु, उसके बाद न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्टतः इस प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है कि क्या विभाजन का लिखत जैसे विभाजन का ज्ञापन रजिस्ट्रीकृत है या

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1655.

[2] (2007) 6 एस. सी. सी. 401.

[3] (2010) 2 एस. सी. सी. 77.

[4] (2006) 4 एस. सी. सी. 658.

नहीं ।

34. दान-विलेख (प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए) को श्री उमा दत्त की पत्नी श्रीमती प्रभु देवी के विशेष मुख्तारनामे श्री गणेश नन्द (प्रतिवादी साक्षी 2) के माध्यम से साबित किया गया है । स्वीकृततः इस दस्तावेज के निष्पादन के समय पर न तो यह साक्षी न ही श्रीमती प्रभु देवी उपस्थित थी । तथापि, इस साक्षी ने यह कथन किया है कि इस विलेख को श्री कृष्ण और श्रीमती मोहनी देवी के अन्य कुटुम्ब सदस्यों की उपस्थिति में श्री गोपाल चन्द और श्री नन्द लाल गर्ग द्वारा साक्षीकृत किया गया था । मात्र श्री नन्द लाल गर्ग (प्रतिवादी साक्षी 4) की ही न्यायालय में परीक्षा की गई है जिसने सुस्पष्टतः यह कथन किया है कि दान-विलेख को चौधरी कांगू राम द्वारा लिखा गया था और वह उसका साक्षी है ।

35. वादी भी यह दर्शित करने में प्रथमदृष्ट्या असफल रहे हैं कि प्रश्नगत दान-विलेख या तो असम्यक् प्रभाव/कपट का प्रयोग करते हुए या किसी अन्य अवैध तरीके से निष्पादित किया गया था । श्रीमती मोहनी देवी भी अपनी द्वितीय लिखित कथन में किए गए अभिवाक् को प्रथमदृष्ट्या सिद्ध करने के लिए विचारणीय समय के पश्चात् भी साक्षी कठघरे में आने में असफल रही । दान-विलेख को मात्र इस आधार पर अवैध नहीं कहा जा सकता कि हिस्सा जो दाता के हिस्से से अधिक था, जिसका वह वैध तौर पर हकदार था, को दाता के पक्ष में अन्तरित करने की ईप्सा की गई थी । कम से कम दाता के हिस्से के संबंध में वह लागू होता है । संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के उपबंधों से यह सुव्यक्ततः स्पष्ट होता है । दान-विलेख रजिस्ट्रीकृत किया गया था और उसे विधि के अनुसरण में प्रमाणित किया गया था । अदाता ने उसे स्वीकार किया था । दाता का आधार यह है कि दस्तावेज को असम्यक् प्रभाव/कपट का प्रयोग करते हुए निष्पादित किया गया था जिसे न तो साबित किया गया है न ही तथ्यों और विधि में मान्य अभिनिर्धारित किया गया है । परिणामतः, निचले अपील न्यायालय ने इस प्रभाव का निष्कर्ष निकालने में अनुचित रूप से त्रुटि कारित की है कि दान मात्र इस कारण अवैध है कि वह दाता के हिस्से से अधिक अधिकारों के अंतरण में है । किसी भी दशा में, पक्षकारों का पक्षकथन यह नहीं है कि श्रीमती मोहनी देवी श्री नरेन्द्र सिंह की संपदा में उत्तराधिकार के रूप में वैध उत्तराधिकारी होने के नाते एक सीमित सीमा में संपत्ति प्राप्त कर सकती थी । दान-विलेख भी श्री नरेन्द्र सिंह की मृत्यु के पश्चात् निष्पादित किया गया था जिस तारीख को किसी भी दशा में वह एक हित-उत्तराधिकारी के

रूप में सह-स्वामी थे जैसा कि निचले अपील न्यायालय द्वारा सही ही अभिनिर्धारित किया गया है ।

36. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री जी. डी. वर्मा ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और यह भी कि यह न्यायालय तब भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता है यदि निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों या दिए गए कारणों को उल्लिखित नहीं किया है । **हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य** बनाम **अक्षरा नन्द**[1], **महबूब साहेब** बनाम **एन. सब्बरयान चौधरी और अन्य**[2], **अरुमुघम** बनाम **सुन्दरम्बल और एक अन्य**[3], **थियागराजन और अन्य** बनाम **वेणुगोपालस्वामी बी. कौल और अन्य**[4] तथा **सुश्री लबन्या नियोगी** बनाम **मैसर्स डब्ल्यू. बी. इंजीनियरिंग कम्पनी**[5] ।

37. इनकी बारीकी से परीक्षा करने पर मैं इनमें अधिकथित विधि के विनिश्चयाधार को वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू करने से भयभीत हूं । वर्तमान मामले में, तथ्य के निष्कर्ष समवर्ती प्रकृति के नहीं हैं । दोनों मामलों में न्यायालय द्वारा अंगीकृत कारण भी विधि, साक्ष्य और पक्षकारों के अभिवचनों के पूर्ण और समुचित मूल्यांकन पर आधारित नहीं हैं । यह न्याय का उपहास करते हुए अनुचित परिणाम निकालते हैं जिसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अपेक्षित है ।

38. इस प्रकार, निचले अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित और अवैध होने के नाते अपास्त किए जाने अपेक्षित हैं । निचले न्यायालय ने न तो सही तौर पर विधि के उपबंधों को लागू किया है न ही इसने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कतिपय न्यायिक उद्घोषणाओं द्वारा अधिकथित सिद्धांतों का समुचित तौर पर मूल्यांकन किया है ।

39. निचले न्यायालयों ने कब्जे के अनुतोष के बारे में वादियों के वाद को डिक्री करने में भी त्रुटि कारित की है । श्री उमा दत्त किराएदार और

---

[1] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 1828.
[2] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 679.
[3] (1999) 4 एस. सी. सी. 350.
[4] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1913.
[5] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3331.

सह-स्वामी के रूप में परिसरों के कब्जे में था । क्या सह-स्वामी होने के पश्चात् उसकी किराएदारी समाप्त हो गई थी, इस प्रश्न को इन कार्यवाहियों में न तो तर्क दिया गया न ही उल्लेख किया गया है । किराएदार का स्वामित्व अधिकार अर्जित करने के पश्चात् किराएदारी समाप्त नहीं होती है **लबन्या नियोगी** (**सुश्री**) **मार्फत इसके विधिक प्रतिनिधिगण, मुख्तारनामाधारक श्री डी. आर. सुभाषिश नियोगी** बनाम **डब्ल्यू. बी. इंजीनियरिंग कम्पनी**[1] । क्या एक किराएदार की बेदखली हिमाचल प्रदेश किराया नियंत्रण अधिनियम के उपबंधों के अधीन की जा सकती है या नहीं, इस प्रश्न का भी इन कार्यवाहियों में भी विनिश्चय नहीं किया गया मात्र इस कारण से कि श्री उमा दत्त एक सह-स्वामी होने के नाते, विधि के अनुसरण के सिवाय अपने हिस्से के अधिक भाग से बेदखल नहीं किया जा सकता था ।

40. तद्नुसार, विधि के प्रश्नों का उत्तर दिया गया । अतएव, विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा पारित तारीख 4 मई, 1995 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है और वादियों द्वारा फाइल वाद को खारिज किया जाता है ।

41. अब मैं, नियमित द्वितीय अपील सं. 117/98 पर विचार करता हूं, मैं इसे निम्नलिखित सारवान् विधिक प्रश्नों पर स्वीकार करने योग्य पाता हूं :–

> "1. जब दाता द्वारा दान-विलेख को कपट और दुर्व्यपदेशन के आधार पर आक्षेपित किया जाता है तो दाता के लिए यह आवश्यक नहीं होता है कि वह ऐसे तथ्यों को साबित करने के लिए साक्षी कठघरे में आए जिनसे अभिकथित कपट और दुर्व्यपदेशन गठित होता है, वादी के मुख्तारनामा के कथन से ही संयोगों या अनुमानों के आधार मात्र पर ही दान को अवैध, अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किया जा सकता है ?
>
> 2. क्या वादी जिन्होंने कपट और दुर्व्यपदेशन के आधार पर दान-विलेख की वैधता को आक्षेपित किया है, वे विधि तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अनुसरण में अभिवचनों को बनाने के लिए विधिक बाध्यता के अधीन थे, ऐसे अभिवचनों के अभाव में क्या वादियों का वाद विशिष्ट सामग्रियों की अपेक्षा करते हुए खारिज किए जाने योग्य

---

[1] (1999) 7 एस. सी. सी. 431.

नहीं है ?

3. क्या विद्वान् विचारण न्यायालय ने गलत तौर पर प्रतिवादियों का साक्ष्य बन्द किया था और क्या प्रतिवादियों के साक्ष्य को बन्द करने के आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन को भी गलत तौर पर खारिज किया था ?

4. क्या वादी जिन्होंने दान-विलेख की वैधता को आक्षेपित किया है वे विधि के अनुसरण में अभिलेख पर दान-विलेख को साबित करने के लिए विधिक बाध्यता के अधीन थे जिन्हें आक्षेपित किया गया है, क्या ऐसे दस्तावेजों के अभाव में विक्रय के विरुद्ध दिया गया कोई भी निष्कर्ष अभिलेख पर साबित नहीं किया गया है ?

5. क्या वादी जो कब्जे के बाहर हैं, मात्र घोषणा की ईप्सा करते हुए वाद में सफल हो सकते हैं, क्या मात्र इस आधार पर कि वाद कायम रखे जाने योग्य नहीं है, वाद खारिज किया जा सकता है ?

6. क्या विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री, अभिवचनों और साक्ष्यों तथा अभिलेख पर के तात्विक दस्तावेजों के गलत परिशीलन के कारण दूषित है ?"

42. 1986 की सिविल वाद सं. 86-1 में श्रीमती मोहनी देवी ने यह अभिवाक् किया है कि उसने अपने पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह को अपने आवास के रूप में ग्राम पतियोग की कृषि भूमि के ऊपर भवन निर्माण करने की मंजूरी दी थी । वह भरणपोषण और सहारे के लिए अपने पुत्र पर निर्भर थी । तारीख 26 अप्रैल, 1982 को नरेन्द्र सिंह की मृत्यु होने के पश्चात्, उसने श्री उमा दत्त को एक कमरा किराए पर दे दिया । शेष कुटुम्ब सदस्यों के साथ उसके कुटुम्ब के संबंध तनावपूर्ण होने के कारण जिसे श्री उमा दत्त द्वारा दर्शित किया गया है, उसने उसके दिमाग को निष्क्रिय और विषाक्त कर दिया था । इसके परिणामस्वरूप, स्वयं उसके रक्त संबंधियों और परिचितों के विरुद्ध उसके मन में घृणा भर गई और वह मानसिक तौर पर हतोत्साहित और दुखी हो गई और यह सोचा कि उसके अपने बच्चे और पोते भी उसके विरुद्ध हो गए हैं । श्री उमा दत्त ने असम्यक् प्रभाव और कपट करते हुए, इस बहाने से कि कतिपय दस्तावेज उसके पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह की मृत्यु से संबंधित दावे के व्यवस्थापन के संबंध में और उसकी किराएदारी के संबंध में निष्पादित करने के लिए अपेक्षित हैं, तारीख 10 अक्तूबर, 1984 तथा 24 दिसम्बर, 1985 को निष्पादित दान-विलेख प्राप्त

कर लिया और उप-रजिस्ट्रार, शिमला में रजिस्ट्रीकृत करवा लिया ।

43. महत्वपूर्ण तौर पर, औपचारिक प्रतिवादियों ने उक्त कार्यवाहियों में कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया किन्तु श्री उमा दत्त ने वाद का विरोध किया और ऐसे प्रकथनों को स्पष्टतः इनकार करते हुए लिखित कथन फाइल किया और सुस्पष्टतः यह अभिवाक् किया कि पक्षकारों के बीच मुकदमेबाजी आरम्भ होने तक वह वादी की देखभाल करता रहा था जिसने स्नेह और प्रेम के वशीभूत होकर स्वेच्छयापूर्वक उसके पक्ष में दान-विलेख निष्पादित किया ।

44. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

> "विवाद्यक सं. 1 – क्या वादी घोषणा के लिए हकदार है जैसी कि प्रार्थना की गई है ?
>
> विवाद्यक सं. 2 – क्या वर्तमान प्ररूप में वादी का वाद कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?
>
> विवाद्यक सं. 3 – क्या वादी अपने स्वयं के कार्य, विलेख, आचरण और मौन सहमति के कारण वर्तमान वाद कायम रखने से विवंधित है ?
>
> विवाद्यक सं. 4 – क्या वादी का वाद परिसीमा अवधि के भीतर है ?
>
> विवाद्यक सं. 5 – अनुतोष ।"

45. विचारण न्यायालय ने प्रत्यक्ष और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि वादी, श्री उमा दत्त द्वारा किए गए अभिकथित कपट और असम्यक् प्रभाव को साबित करने में असफल रहे हैं । परिणामतः, वाद खारिज कर दिया ।

46. तथापि, निचले अपील न्यायालय के समक्ष कुछ अज्ञात कारणों से पक्षकारों ने यह स्वीकार किया था कि दान-विलेख की वैधता के बारे में प्रश्न जिसे वाद में आक्षेपित किया गया है, की परीक्षा नहीं की गई और उसे इस न्यायालय के समक्ष लम्बित अपील (1995 की नियमित द्वितीय अपील सं. 250) की विषयवस्तु के रूप में विनिश्चित किया गया । अब यह स्थिति वस्तुतः गलत है । उक्त नियमित द्वितीय अपील वस्तुतः 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 से उद्भूत हुआ था जिसमें मात्र तारीख 10

अक्तूबर, 1984 के दान-विलेख की वैधता को ही चुनौती दी गई थी न कि तारीख 24 दिसम्बर, 1985 के द्वितीय दान-विलेख की वैधता को चुनौती दी गई थी ।

47. वादी की अपील को निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप किए बिना डिक्री कर दिया । इस न्यायालय ने मात्र इस एक आधार पर ही निचले अपील न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं समझा । मैं इस संबंध में विधिक प्रास्थिति के प्रति सचेत हूं । महत्वपूर्ण तौर पर, निचले अपील न्यायालय ने वाद डिक्री कर दिया था मात्र इस एक आधार पर कि दान-विलेख वादी के हिस्से से अधिक होने के नाते अवैध थे ।

48. वर्तमान मामले में, अविवादित तौर पर लड़ने वाला प्रतिवादी साक्षी कठघरे में नहीं आया क्योंकि उसके साक्ष्य को न्यायालय द्वारा बन्द कर दिया गया था । किन्तु, महत्वपूर्ण तौर पर वादी भी असम्यक् प्रभाव, कपट या सिखाने-पढ़ाने के तथ्य को साबित करने के लिए स्वयं को साक्षी कठघरे में नहीं लाया । श्री नरेन्द्र सिंह की विधिक उत्तराधिकारी सुश्री मउली देवी भी उसके पक्षकथन के समर्थन में साक्षी कठघरे में नहीं आई ।

49. श्री कृष्ण सिंह रोहल (अभि. सा. 1) मूल प्रतिवादी 3, अपनी माता श्रीमती मोहनी देवी की साधारण मुख्तारनामा के रूप में साक्षी कठघरे में आया । उसने यह कथन किया कि उसकी माता 86-87 वर्ष आयु की है और उसका पिछले 3-4 वर्षों से स्वास्थ्य ठीक नहीं है और उसकी याददाश्त भी कमजोर हो गई है । किन्तु, उसके बाद इस सुस्पष्ट कथन के सिवाय इस तथ्य को सिद्ध/साबित करने के लिए कुछ नहीं लाया गया । यद्यपि इस पहलू पर, मेरा यह निष्कर्ष है कि स्वयं उसके ही तत्पश्चात् इस बयान में विरोधाभास है कि उसकी माता वृद्ध होने के कारण अधिक चल-फिर नहीं सकती थी और वह ठीक थी और उसकी किसी बीमारी का उपचार नहीं हो रहा था । वादी स्थानीय आयुक्त के माध्यम से अपना कथन अभिलिखित करा सकती थी जो इस मामले में उसकी व्यक्तिगत जानकारी में कपट, असम्यक् प्रभाव और सिखाने-पढ़ाने के अभिवाक् के रूप में वर्तमान मामले में किया जाना था । न्यायालय में उसकी परीक्षा पूर्णरूपेण आवश्यक थी विशिष्टतया तब जब इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि स्वयं उसकी अपनी माता के साथ अच्छे संबंध नहीं थे । उसकी माता ने यह अभिवाक् किया था कि उसके कुटुम्ब सदस्यों के बीच संबंध अच्छे नहीं थे ।

50. महत्वपूर्ण तौर पर, इस मामले में वादी (श्रीमती मोहनी देवी) ने उस विभाजन का अभिवाक् नहीं लिया जिसे ध्यान में रखते हुए, उसका पुत्र श्री नरेन्द्र सिंह उन संपत्तियों का अनन्य स्वामी हो गया था जो दोनों वादों की विषयवस्तु थी । वादी द्वारा वर्तमान मामले में लिया गया अभिवाक् वस्तुतः 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 में लिए गए अभिवाक् के प्रतिकूल है । यह प्रतीत होता है कि दोनों दान-विलेखों के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के बीच विचारणीय समय अन्तराल था । प्रथम वाद फाइल करने की तारीख, श्रीमती मोहनी देवी द्वारा फाइल दोनों लिखित कथनों और उसके द्वारा वर्तमान वाद फाइल करने के बीच भी काफी समय का अन्तराल था । 1985 की सिविल वाद सं. 108/1 को तारीख 20 मई, 1985 को फाइल किया गया था जिसमें संयुक्त लिखित कथन तारीख 9 सितम्बर, 1985 को फाइल किए गए थे और वर्तमान वाद 12 जून, 1986 को फाइल किया गया था । महत्वपूर्ण तौर पर, वर्तमान वाद में उसने वाद हेतुक के बारे में मिथ्या प्रकथन किया था । दान-विलेख तारीख 10 अक्तूबर, 1984 तथा तारीख 24 दिसम्बर, 1985 के हैं । यह प्रकथन किया गया है कि उसे माह जून, 1986 में ही असम्यक् प्रभाव कारित करते हुए, उसके निष्पादन के तथ्य के बारे में बताया गया था किंतु वह आसानी से यह भूल गई कि इसी समय ही वह पूर्ववर्ती वाद में पहले ही संयुक्त लिखित कथन फाइल कर चुकी है । मेरा यह सुविचारित मत है कि वर्तमान वाद स्वयं उसके कुटुम्ब सदस्यों की दुरभिसंधि में फाइल किया गया है क्योंकि वादी श्रीमती विजयलक्ष्मी ने स्वयं ही माह मई, 1985 में तारीख 10 अक्तूबर, 1984 के दान-विलेख को पहले ही चुनौती दे चुकी थी । पक्षकारों का यह पक्षकथन नहीं है कि श्रीमती मोहनी देवी और श्रीमती विजयलक्ष्मी के बीच इसी समय पर ही संबंध तनावपूर्ण हो गए थे । वस्तुतः उसका विनिर्दिष्ट पक्षकथन यह है कि संबंध, उसके पुत्र कृष्ण सिंह के साथ तनावपूर्ण हो गए थे । यह विवादित नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वयं उसका यह पक्षकथन है कि 1986 के पूर्व उसकी देख-भाल श्री उमा दत्त द्वारा की जा रही थी । वस्तुतः, उसने उसी काउंसेल द्वारा अपना प्रतिनिधित्व किया है ।

51. अब अभि. सा. 1 के परिसाक्ष्य पर विचार करते हैं, मेरा यह निष्कर्ष है कि कपट/असम्यक् प्रभाव/सिखाने-पढ़ाने के अभिवाक् को प्रथमदृष्ट्या स्थापित/साबित/सिद्ध करने के लिए भी अभिलेख पर कुछ नहीं है जिससे प्रश्नगत दान-विलेखों को विवादित किया गया है । इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि लम्बे समय से उसके और उसकी माता के बीच

बोलचाल नहीं थी । उसने यह स्वीकार किया है कि पहली बार उसकी माता ने उसके पक्ष में मुख्तारनामा (प्रदर्श पी ए) निष्पादित किया था । यदि ऐसा था तो उसने वादपत्र में किए गए प्रकथनों के बारे में क्यों अभिसाक्ष्य नहीं दे सकी । उसका परिसाक्ष्य यह है कि श्री उमा दत्त ने कभी भी उसकी माता की देखभाल नहीं की थी यह वादपत्र में किए गए प्रकथनों के विरोधाभास में है । उसने यह स्वीकार किया है कि उसे उसके पिता ने वर्ष 1969 में अलग कर दिया था और तभी से वह अलग रह रहा था । यह प्रतीत होता है कि वह भी संपत्ति के बारे में तथ्यात्मक पहलू को नहीं जानता था और वास्तविक स्थिति के बारे में भी वह स्पष्ट, सही और सत्यतापूर्वक अभिसाक्ष्य देने की स्थिति में नहीं था । उसने यह स्वीकार किया है कि जब दान-विलेख तैयार किए गए थे तब उसकी माता उसके साथ नहीं रह रही थी । वह उस घटना के बारे में नहीं जानता है जिसमें दान-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण हुआ था । यद्यपि, वह समय और स्थान के बारे में विनिर्दिष्ट जानकारी नहीं होने के बावजूद यह उल्लेख किया है कि उसकी माता ने उसे बताया था कि श्री उमा दत्त ने उस दुर्घटना के प्रतिकर के दावे के बारे में उसके कतिपय हस्ताक्षर लिए हैं जिसमें श्री नरेन्द्र सिंह की मृत्यु हो गई थी किन्तु, उसके बाद यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं लाया गया कि ऐसा दस्तावेज वस्तुतः उसके द्वारा निष्पादित किया जाना अपेक्षित था । श्रीमती विजयलक्ष्मी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि श्रीमती मोहनी देवी ऐसा प्रतिकर पाने के लिए अर्ह/हकदार थी । क्या वह एक आश्रित थी या नहीं, इसे साबित नहीं किया गया है । क्या किसी प्रतिकर का दावा किया गया है या नहीं इसे भी सिद्ध नहीं किया गया है । यह साक्षी ईमानदार व्यक्ति प्रतीत नहीं होता है और इस प्रकार, उसके परिसाक्ष्य का अवलंब वादी के मामले को सिद्ध करने के लिए नहीं लिया जा सकता है । प्रश्नगत भूमि 107 बीघा है । उसके एक भाग को राज्य सरकार द्वारा भी अर्जित किया गया है और प्रतिकर की रकम बहुत बड़ी है । श्री उमा दत्त का यह कथन भी अभिलेख पर है कि उसे वापस नहीं लिया जाएगा । किसी भी दशा में उसका खर्च वर्तमान अपील के निष्कर्षों पर निर्भर करेगा । यह प्रतीत होता है कि वर्ष 1986 में इस साक्षी ने पतियोग स्थित आवासीय मकान से अपनी माता को लाया था और उसके बाद अपने पक्ष में मुख्तारनामा निष्पादित करा लिया था ।

52. यह दर्शित करने के लिए कि भूमि का कब्जा वस्तुतः श्री उमा दत्त को नहीं सौंपा गया था, वादी ने श्री बस्ती राम (अभि. सा. 2) और श्री सानिया राम (अभि. सा. 3) की परीक्षा की है किन्तु इन दोनों साक्षियों का

परिसाक्ष्य, मेरे सुविचारित मत में, विश्वास पैदा नहीं करते हैं यह किसी भी दशा में उक्त तथ्य को सिद्ध नहीं करते हैं । श्री बस्ती राम ने यह कथन किया है कि भूमि श्रीमती मोहनी देवी के कब्जे में है किन्तु वह उसके विस्तार या विशिष्टियों के बारे में नहीं जानता है । वह यह भी नहीं जानता है कि श्री उमा दत्त उस भूमि पर बने कमरों में से एक कमरे में रहता था । श्री सानिया राम ने इससे भिन्न बयान दिया है । उसके अनुसार, भूमि मात्र मोहनी देवी और उसके पुत्रों के कब्जे में थी । आश्चर्यजनक रूप से यद्यपि उसने श्रीमती मोहनी देवी के घर जाने का दावा किया है फिर भी वह यह नहीं जानता था कि क्या वह एक किराएदार थी या नहीं । उसने यह भी कथन किया है कि श्रीमती मोहनी देवी की मानसिक दशा ठीक नहीं थी जिसका किसी भी व्यक्ति ने पक्षकथन नहीं किया है ।

53. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, श्री उमा दत्त पश्चात्वर्ती वाद में साक्षी कठघरे में नहीं आया और श्रीमती मोहनी देवी भी अपनी स्वीकृति के स्पष्टीकरण देने के लिए प्रथम वाद में साक्षी कठघरे में नहीं आई । महत्वपूर्ण तौर पर, श्री कृष्ण सिंह भी कपट, दुर्व्यपदेशन और सिखाने-पढ़ाने की परिस्थितियों का स्पष्टीकरण देने के लिए प्रथम वाद में साक्षी के रूप में हाजिर नहीं हुआ, यद्यपि, असफल रूप से वह पश्चात्वर्ती वाद में अपनी माता का साधारण मुख्तारनामे के रूप में उपस्थित हुआ । सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा वादी और उसके कुटुम्ब सदस्यों के आचरण पर विचार करते हुए, यह प्रतीत होता है कि वाद दुरभिसंधि प्रकृति के थे और इसे मात्र प्रश्नगत दान-विलेखों के अधीन श्री उमा दत्त को मिलने वाले फायदों से वंचित करने के लिए ही फाइल किया गया था ।

54. जैसा कि पहले ही मत व्यक्त किया जा चुका है, निचले अपील न्यायालय ने निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष से असहमति जताने के लिए कोई कारण अभिलिखित नहीं किया है, वस्तुतः, इससे भी उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । निचले न्यायालय ने अनुमानों और कल्पनाओं के आधार पर वाद डिक्री करते हुए, आक्षेपित आदेश पारित किया जो अनुचित और अवैध है । दान-विलेखों को मात्र इस आधार पर अवैध नहीं कहा जा सकता कि वे दाता के हिस्से से अधिक थे । कम से कम दाता के हिस्से तक वे वैध हैं ।

55. वर्तमान मामले में, यह नहीं कहा जा सकता है कि वादी ने अशिक्षित और ग्रामीण होने के नाते असम्यक् प्रभाव/कपट या यह कि श्री

उमा दत्त द्वारा उसे सिखाया-पढ़ाया गया था, के अधीन दस्तावेजों को निष्पादित किया था ।

56. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री जी. डी. वर्मा द्वारा निर्दिष्ट और अवलंब लिया गया मामला **श्री पवन कुमार और अन्य** बनाम **श्री तिलक राज और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए इस न्यायालय का विनिश्चय भी वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है । श्रीमती मोहनी देवी द्वारा की गई स्वीकृतियों की संतोषजनक रूप से स्पष्टीकरण नहीं किया गया है और यह भी नहीं कहा जा सकता कि वादी ने अपने पक्षकथन को प्रथमदृष्ट्या सिद्ध कर दिया है । दान-विलेखों को भी अभिलेख पर प्रदर्शित नहीं किया गया है ।

57. यह नहीं कहा जा सकता कि विचारण न्यायालय ने गलत तौर पर प्रतिवादी का साक्ष्य बन्द किया था । उक्त आदेश को वापस मंगाने के लिए आवेदन को नामंजूर करना सही था क्योंकि अभिलेख से यह प्रकट होता है कि उसे प्रस्तुत करने के लिए प्रतिवादियों को पर्याप्त अवसर दिया गया था ।

58. पूर्वोक्त सभी कारणों से, वादी का वाद खारिज किया जाना आवश्यक है । तद्नुसार, विधि के प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है ।

59. निचले अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित होने के नाते उलटा जाना आवश्यक है और आक्षेपित निर्णय तथा डिक्री अपास्त किए जाते हैं और विचारण न्यायालय का निर्णय कायम रखा जाता है ।

तद्नुसार, अपील निपटाई गई ।

क.

---

[1] एच. एल. जे. 2011 (हि. प्र.) 428.

संसद् के अधिनियम

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

(1994 का अधिनियम संख्यांक 10)

[8 जनवरी, 1994]

मानव अधिकारों के अधिक अच्छे संरक्षण के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्यों में राज्य मानव अधिकार आयोगों और मानव अधिकार न्यायालयों का गठन करने तथा उससे संसक्त या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के चवालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है :

परन्तु यह जम्मू-कश्मीर राज्य को केवल वहां तक लागू होगा जहां तक इसका संबंध उस राज्य को यथा लागू संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 या सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से संबंधित विषयों से है ।

(3) यह 28 सितंबर, 1993 को प्रवृत्त हुआ समझा जाएगा ।

2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) "सशस्त्र बल" से नौसेना, सेना और वायु सेना अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत संघ का कोई अन्य सशस्त्र बल है ;

(ख) "अध्यक्ष" से, यथास्थिति, आयोग का या राज्य आयोग का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(ग) "आयोग" से धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अभिप्रेत है ;

(घ) "मानव अधिकार" से प्राण, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए हैं या अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है ;

(ङ) "मानव अधिकार न्यायालय" से धारा 30 के अधीन विनिर्दिष्ट मानव अधिकार न्यायालय अभिप्रेत है ;

[1][(च) "अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा" से संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 16 दिसंबर, 1966 को अंगीकार की गई सिविल और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अंगीकार की गई ऐसी अन्य प्रसंविदा या अभिसमय, जो केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, अभिप्रेत है ;] ;

[1][(छ) "सदस्य" से, यथास्थिति, आयोग का या राज्य आयोग का सदस्य अभिप्रेत है,]

(ज) "राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग" से राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 (1992 का 19) की धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अभिप्रेत है ;

[1][(झ) "राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग" से संविधान के अनुच्छेद 338 में निर्दिष्ट राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग अभिप्रेत है ;

(झक) "राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग" से संविधान के अनुच्छेद 338क में निर्दिष्ट राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग अभिप्रेत है ।]

(ञ) "राष्ट्रीय महिला आयोग" से राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 (1990 का 20) की धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय महिला आयोग अभिप्रेत है ;

(ट) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है ;

(ठ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(ड) "लोक सेवक" का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 में है ;

(ढ) "राज्य आयोग" से धारा 21 के अधीन गठित राज्य मानव अधिकार आयोग अभिप्रेत है ।

(2) इस अधिनियम में किसी ऐसी विधि के, जो जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रवृत्त नहीं हैं, प्रति किसी निर्देश का उस राज्य के संबंध में यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में प्रवृत्त किसी तत्स्थानी विधि के, यदि कोई हो, प्रति निर्देश है ।

अध्याय 2
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

3. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार, एक निकाय का, जो राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के नाम से ज्ञात होगा, इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए, गठन करेगी ।

(2) आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति रहा है ;

(ख) एक सदस्य, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है ;

(ग) एक सदस्य, जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति है या रहा है ;

(घ) दो सदस्य, जो ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाएंगे जिन्हें मानव अधिकारों से संबंधित विषयों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है ।

(3) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, [1][राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग] और राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष धारा 12 के खंड (ख) से खंड (ञ) में विनिर्दिष्ट कृत्यों के निर्वहन के लिए आयोग के सदस्य समझे जाएंगे ।

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(4) एक महासचिव होगा, जो आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा और वह आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा, [1][(न्यायिक कृत्यों और धारा 40ख के अधीन विनियम बनाने की शक्ति के सिवाय) जो, यथास्थिति, आयोग या अध्यक्ष उसे प्रत्यायोजित करे]।

(5) आयोग का मुख्यालय दिल्ली में होगा और आयोग, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, भारत में अन्य स्थानों पर कार्यालय स्थापित कर सकेगा ।

4. अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति – (1) राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा अध्यक्ष और [2][सदस्यों] को नियुक्त करेगा :

परन्तु इस उपधारा के अधीन प्रत्येक नियुक्ति ऐसी समिति की सिफारिशें प्राप्त होने के पश्चात् की जाएगी जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी, अर्थात् :–

(क) प्रधान मंत्री	अध्यक्ष ;
(ख) लोक सभा का अध्यक्ष	सदस्य ;
(ग) भारत सरकार के गृह मंत्रालय का भारसाधक मंत्री	सदस्य ;
(घ) लोक सभा में विपक्ष का नेता	सदस्य ;
(ङ) राज्य सभा में विपक्ष का नेता	सदस्य ;
(च) राज्य सभा का उप सभापति	सदस्य :

परन्तु यह और कि उच्चतम न्यायालय का कोई आसीन न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का कोई आसीन मुख्य न्यायमूर्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् ही नियुक्त किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

(2) अध्यक्ष या किसी सदस्य की कोई नियुक्ति केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि [2][उपधारा (1) के पहले परन्तुक में निर्दिष्ट समिति में किसी सदस्य की कोई रिक्ति है]।

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[1][5. **अध्यक्ष और सदस्यों का त्यागपत्र और हटाया जाना** – (1) अध्यक्ष या कोई सदस्य, राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लिखित सूचना द्वारा अपना पद त्याग सकेगा ।

(2) उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए अध्यक्ष या किसी सदस्य को केवल साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर किए गए राष्ट्रपति के ऐसे आदेश से उसके पद से हटाया जाएगा, जो उच्चतम न्यायालय को, राष्ट्रपति द्वारा निर्देश किए जाने पर, उच्चतम न्यायालय द्वारा इस निमित्त विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई जांच पर यह रिपोर्ट किए जाने के पश्चात् किया गया है, कि, यथास्थिति, अध्यक्ष या ऐसे सदस्य को ऐसे किसी आधार पर हटा दिया जाए ।

(3) उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या कोई सदस्य,–

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है; या

(ख) अपनी पदावधि में अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगता है ; या

(ग) मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण अपने पद पर बने रहने के अयोग्य है ; या

(घ) विकृतचित्त का है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ; या

(ङ) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है और कारावास से दण्डादिष्ट किया जाता है जिसमें, राष्ट्रपति की राय में, नैतिक अधमता अंतर्वलित है,

तो राष्ट्रपति, अध्यक्ष या ऐसे सदस्य को, आदेश द्वारा, पद से हटा सकेगा ।]।

[2][6.(1) **अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि** – अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक या सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पहले हो, अपना पद धारण करेगा ।

(2) सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 5 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 6 द्वारा प्रतिस्थापित ।

ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक अपना पद धारण करेगा तथा पांच वर्ष की और अवधि के लिए पुनर्नियुक्ति का पात्र होगा :

परन्तु कोई भी सदस्य सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(3) अध्यक्ष या कोई सदस्य, अपने पद पर न रह जाने पर, भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी भी और नियोजन का पात्र नहीं होगा ।"।

7. कतिपय परिस्थितियों में सदस्य का अध्यक्ष के रूप में कार्य करना या उसके कृत्यों का निर्वहन – (1) अध्यक्ष की मृत्यु, पदत्याग या अन्य कारण से उसके पद में हुई रिक्ति की दशा में, राष्ट्रपति, अधिसूचना द्वारा, सदस्यों में से किसी एक सदस्य को अध्यक्ष के रूप में तब तक कार्य करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा जब तक ऐसी रिक्ति को भरने के लिए नए अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं हो जाती ।

(2) जब अध्यक्ष छुट्टी पर अनुपस्थिति के कारण या अन्य कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है तब सदस्यों में से एक ऐसा सदस्य, जिसे राष्ट्रपति, अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त प्राधिकृत करे, उस तारीख तक अध्यक्ष के कृत्यों का निर्वहन करेगा जिस तारीख को अध्यक्ष अपने कर्तव्यों को फिर से संभालता है ।

[1][**8. अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबन्धन और शर्तें ऐसी होंगी, जो विहित की जाएं :

परन्तु अध्यक्ष और किसी सदस्य के वेतन और भत्तों में तथा सेवा के अन्य निबन्धनों और शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।] ।

9. रिक्तियों आदि से आयोग की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – आयोग का कोई कार्य या कार्यवाही केवल इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी या अविधिमान्य नहीं होगी कि आयोग में कोई रिक्ति है या उसके पठन में कोई त्रुटि है ।

10. प्रक्रिया का आयोग द्वारा विनियमित किया जाना – (1) आयोग का अधिवेशन ऐसे समय और स्थान पर होगा, जो अध्यक्ष ठीक समझे ।

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 7 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[1][(2) इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए आयोग को अपनी प्रक्रिया के लिए विनियम अधिकथित करने की शक्ति होगी ।] ।

(3) आयोग के सभी आदेश और विनिश्चय महासचिव द्वारा या इस निमित्त अध्यक्ष द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत आयोग के किसी अन्य अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे ।

11. आयोग के अधिकारी और अन्य कर्मचारिवृन्द – (1) केन्द्रीय सरकार, आयोग को, –

(क) भारत सरकार के सचिव की पंक्ति का एक अधिकारी, जो आयोग का महासचिव होगा ; और

(ख) ऐसे अधिकारी के अधीन, जो पुलिस महानिदेशक की पंक्ति से नीचे का न हो, ऐसे पुलिस और अन्वेषण कर्मचारिवृन्द तथा ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारिवृन्द, जो आयोग के कृत्यों का दक्षतापूर्ण पालन करने के लिए आवश्यक हो,

उपलब्ध कराएगी ।

(2) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, आयोग ऐसे, अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारिवृन्द नियुक्त कर सकेगा, जो वह आवश्यक समझे ।

(3) उपधारा (2) के अधीन नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द के वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तें ऐसी होंगी, जो विहित की जाएं ।

अध्याय 3
आयोग के कृत्य और शक्तियां

12. आयोग के कृत्य – आयोग निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का पालन करेगा, अर्थात् :–

(क) स्वप्रेरणा से या किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा [2][या उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के निदेश पर], उसको प्रस्तुत की गई अर्जी पर, –

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 8 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 9 द्वारा अंत:स्थापित ।

(i) मानव अधिकारों का किसी लोक सेवक द्वारा अतिक्रमण या दुष्प्रेरण किए जाने की; या

(ii) ऐसे अतिक्रमण के निवारण में किसी लोक सेवक द्वारा उपेक्षा की,

शिकायत के बारे में जांच करना ;

(ख) किसी न्यायालय के समक्ष लंबित किसी कार्यवाही में जिसमें मानव अधिकारों के अतिक्रमण का कोई अभिकथन अंतर्वलित है, उस न्यायालय के अनुमोदन से मध्यक्षेप करना ;

[1][(ग) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी राज्य सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी जेल या किसी अन्य संस्था का, जहां व्यक्ति उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनों के लिए निरुद्ध या दाखिल किए जाते हैं, वहां के निवासियों के जीवन की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए, निरीक्षण करना और उन पर सरकार को सिफारिश करना ;] ।

(घ) संविधान या मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित रक्षोपायों का पुनर्विलोकन करना और उनके प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना ;

(ङ) ऐसी बातों का, जिनके अंतर्गत आतंकवाद के कार्य हैं, और जो मानव अधिकारों के उपभोग में विघ्न डालती हैं, पुनर्विलोकन करना और समुचित उपचारी उपायों की सिफारिश करना ;

(च) मानव अधिकारों से संबंधित संधियों और अन्य अन्तरराष्ट्रीय लिखतों का अध्ययन करना और उनके प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए सिफारिशें करना ;

(छ) मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसका संवर्धन करना ;

(ज) समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकारों संबंधी जानकारी का प्रसार करना और प्रकाशनों, संचार विचार, माध्यमों गोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध रक्षोपायों के प्रति जागरूकता का संवर्धन करना ;

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 9 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(झ) मानव अधिकारों के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयासों को उत्साहित करना ;

(ञ) ऐसे अन्य कृत्य करना, जो मानव अधिकारों के संवर्धन के लिए आवश्यक समझे जाएं ।

13. जांच से संबंधित शक्तियां – (1) आयोग को, इस अधिनियम के अधीन शिकायतों के बारे में जांच करते समय और विशिष्ट तथा निम्नलिखित विषयों के संबंध में वे सभी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को है, अर्थात् :–

(क) साक्षियों को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उनकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से कोई लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि अपेक्षित करना ;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ;

(च) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए ।

(2) आयोग को किसी व्यक्ति से, ऐसे किसी विशेषाधिकार के अधीन रहते हुए, जिसका उस व्यक्ति द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन दावा किया जाए, ऐसी बातों या विषयों पर इत्तिला देने की अपेक्षा करने की शक्ति होगी, जो आयोग की राय में जांच की विषयवस्तु के लिए उपयोगी हों, या उससे सुसंगत हों और जिस व्यक्ति से, ऐसी अपेक्षा की जाए वह भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 176 और धारा 177 के अर्थ में ऐसी इत्तिला देने के लिए वैध रूप से आबद्ध समझा जाएगा ।

(3) आयोग या आयोग द्वारा इस निमित्त विशेषतया प्राधिकृत कोई ऐसा अन्य अधिकारी, जो राजपत्रित अधिकारी की पंक्ति से नीचे का न हो, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 100 के उपबंधों के, जहां तक वे लागू हों, अधीन रहते हुए किसी ऐसे भवन या स्थान में, जिसकी बाबत आयोग के पास यह विश्वास करने का कारण है कि जांच

की विषयवस्तु से संबंधित कोई दस्तावेज वहां पाया जा सकता है, प्रवेश कर सकेगा और किसी ऐसे दस्तावेज को अभिगृहीत कर सकेगा अथवा उससे उद्धरण या उसकी प्रतिलिपियां ले सकेगा ।

(4) आयोग को सिविल न्यायालय समझा जाएगा और जब कोई ऐसा अपराध, जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 175, धारा 178, धारा 179, धारा 180 या धारा 228 में वर्णित है, आयोग की दृष्टिगोचरता में या उपस्थिति में किया जाता है तब आयोग, अपराध गठित करने वाले तथ्यों तथा अभियुक्त के कथन को अभिलिखित करने के पश्चात्, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में उपबंधित है, उस मामले को ऐसे मजिस्ट्रेट को भेज सकेगा जिसे उसका विचारण करने की अधिकारिता है और वह मजिस्ट्रेट जिसे कोई ऐसा मामला भेजा जाता है, अभियुक्त के विरुद्ध शिकायत सुनने के लिए इस प्रकार अग्रसर होगा मानो वह मामला दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 346 के अधीन उसको भेजा गया हो ।

(5) आयोग के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और धारा 228 के अर्थ में तथा धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाही समझा जाएगा और आयोग को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

[1][(6) जहां आयोग ऐसा करना आवश्यक और समीचीन समझता है, वहां वह आदेश द्वारा, उसके समक्ष फाइल की गई या लंबित किसी शिकायत को उस राज्य के राज्य आयोग को, जिससे इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार निपटारे के लिए शिकायत उद्भूत होती है, अन्तरित कर सकेगा :

परन्तु ऐसी कोई शिकायत तब तक अन्तरित नहीं की जाएगी जब तक कि वह शिकायत ऐसी न हो जिसके संबंध में राज्य आयोग को उसे ग्रहण करने की अधिकारिता न हो ।

(7) उपधारा (6) के अधीन अन्तरित की गई प्रत्येक शिकायत पर राज्य आयोग द्वारा ऐसे कार्रवाई की जाएगी और उसका निपटारा किया जाएगा मानो वह शिकायत आरंभ में उसके समक्ष फाइल की गई हो ।] ।

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 10 द्वारा प्रतिस्थापित ।

14. अन्वेषण – (1) आयोग, जांच से संबंधित कोई अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार की सहमति से केन्द्रीय सरकार या उस राज्य सरकार के किसी अधिकारी या अन्वेषण अभिकरण की सेवाओं का उपयोग कर सकेगा ।

(2) जांच से संबंधित किसी विषय का अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए कोई ऐसा अधिकारी या अभिकरण, जिसकी सेवाओं का उपधारा (1) के अधीन उपयोग किया जाता है, आयोग के निदेशन और नियंत्रण के अधीन रहते हुए, –

(क) किसी व्यक्ति को समन कर सकेगा और हाजिर करा सकेगा तथा उसकी परीक्षा कर सकेगा ;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश किए जाने की अपेक्षा कर सकेगा ; और

(ग) किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अपेक्षा कर सकेगा ।

(3) धारा 15 के उपबंध किसी ऐसे अधिकारी या अभिकरण के समक्ष जिसकी सेवाओं का उपधारा (1) के अधीन उपयोग किया जाता है किसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी कथन के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे आयोग के समक्ष साक्ष्य देने के अनुक्रम में किसी व्यक्ति द्वारा किए गए किसी कथन के संबंध में लागू होते हैं ।

(4) जिस अधिकारी या अभिकरण की सेवाओं का उपयोग उपधारा (1) के अधीन किया जाता है वह जांच से संबंधित किसी विषय का अन्वेषण करेगा और उस पर आयोग को ऐसी अवधि के भीतर, जो आयोग द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट की जाए, रिपोर्ट देगा ।

(5) आयोग, उपधारा (4) के अधीन उसे दी गई रिपोर्ट में कथित तथ्यों के और निकाले गए निष्कर्षों के, यदि कोई हों, सही होने के बारे में अपना समाधान करेगा और इस प्रयोजन के लिए आयोग ऐसी जांच जिसके अंतर्गत उस व्यक्ति की या उन व्यक्तियों की परीक्षा है, जिसने या जिन्होंने अन्वेषण किया हो या उसमें सहायता की हो, कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

15. आयोग के समक्ष व्यक्तियों द्वारा किए गए कथन – आयोग के समक्ष साक्ष्य देने के अनुक्रम में किसी व्यक्ति द्वारा किया गया कोई कथन,

ऐसे कथन द्वारा मिथ्या साक्ष्य देने के लिए अभियोजन के सिवाय, उसे किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही के अधीन नहीं करेगा या उसमें उसके विरुद्ध प्रयुक्त नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह तब जब कि ऐसा कथन –

(क) ऐसे प्रश्न के उत्तर में किया जाता है जिसका उत्तर देने के लिए उससे आयोग द्वारा अपेक्षा की जाए ; या

(ख) जांच की विषयवस्तु से सुसंगत है ।

16. उन व्यक्तियों की सुनवाई जिन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है – यदि जांच के किसी अनुक्रम में,–

(क) आयोग किसी व्यक्ति के आचरण की जांच करना आवश्यक समझता है ; या

(ख) आयोग की यह राय है कि जांच से किसी व्यक्ति की ख्याति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है,

तो वह उस व्यक्ति को जांच में सुनवाई और अपनी प्रतिरक्षा में साक्ष्य प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर देगा :

परन्तु इस धारा की कोई बात वहां लागू नहीं होगी जहां किसी साक्षी की विश्वसनीयता पर अधिक्षेप किया जा रहा है ।

अध्याय 4
प्रक्रिया

17. शिकायतों की जांच – आयोग, मानव अधिकारों के अतिक्रमण की शिकायतों की जांच करते समय, –

(i) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार अथवा उसके अधीनस्थ किसी अन्य प्राधिकारी या संगठन से ऐसे समय के भीतर, जो आयोग द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, जानकारी या रिपोर्ट मांग सकेगा :

परन्तु, –

(क) यदि आयोग को नियत समय के भीतर जानकारी या रिपोर्ट प्राप्त नहीं होती है तो वह शिकायत के बारे में स्वयं जांच कर सकेगा ;

(ख) यदि जानकारी या रिपोर्ट की प्राप्ति पर, आयोग का यह समाधान हो जाता है कि कोई और जांच अपेक्षित नहीं है

अथवा अपेक्षित कार्रवाई संबंधित सरकार या प्राधिकारी द्वारा आरंभ कर दी गई है या की जा चुकी है तो वह शिकायत के बारे में कार्यवाही नहीं कर सकेगा और शिकायतकर्ता को तद्नुसार सूचित कर सकेगा ;

(ii) खंड (i) में अंतर्विष्ट किसी बात पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यदि आयोग, शिकायत की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक समझता है तो जांच आरंभ कर सकेगा ।

[1][**18. जांच के दौरान और जांच के पश्चात् कार्रवाई** – आयोग, इस अधिनियम के अधीन की गई किसी जांच के दौरान और उसके पूरा होने पर निम्नलिखित कार्रवाई कर सकेगा, अर्थात् :–

(क) जहां जांच से किसी लोक सेवक द्वारा मानव अधिकारों का अतिक्रमण या मानव अधिकारों के अतिक्रमण के निवारण में उपेक्षा या मानव अधिकारों के अतिक्रमण का उत्प्रेरण प्रकट होता है, तो वहां वह संबंधित सरकार या प्राधिकारी को –

(i) शिकायतकर्ता या पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुंब के सदस्यों को ऐसा प्रतिकर या नुकसानी का संदाय करने की सिफारिश कर सकेगा, जो आयोग आवश्यक समझे ;

(ii) संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन के लिए कार्यवाहियां आरंभ करने या कोई अन्य समुचित कार्रवाई करने के लिए, सिफारिश कर सकेगा, जो आयोग ठीक समझे ;

(iii) ऐसी अन्य कार्रवाई करने की सिफारिश कर सकेगा, जिसे वह ठीक समझे ;

(ख) उच्चतम न्यायालय या संबंधित उच्च न्यायालय को ऐसे निदेश, आदेश या रिट के लिए जो, वह न्यायालय आवश्यक समझे, अनुरोध करना ;

(ग) जांच के किसी प्रक्रम पर संबद्ध सरकार या प्राधिकारी को पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुंब के सदस्यों को ऐसी तत्काल अन्तरिम सहायता मंजूर करने की, जो आयोग आवश्यक समझे, सिफारिश करना ;

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 11 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(घ) खंड (ङ) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जांच रिपोर्ट की प्रति अर्जीदार या उसके प्रतिनिधि को उपलब्ध कराना ;

(ङ) आयोग अपनी जांच रिपोर्ट की एक प्रति अपनी सिफारिशों सहित, संबंधित सरकार या प्राधिकारी को भेजेगा और संबंधित सरकार या प्राधिकारी, एक मास की अवधि के भीतर या ऐसे और समय के भीतर, जो आयोग अनुज्ञात करे, रिपोर्ट पर अपनी टीका-टिप्पणी आयोग को भेजेगा जिसके अन्तर्गत उस पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई है ;

(च) आयोग, संबंधित सरकार या प्राधिकारी की टीका-टिप्पणी सहित, यदि कोई हो, अपनी जांच रिपोर्ट तथा आयोग की सिफारिशों पर संबंधित सरकार या प्राधिकारी द्वारा की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई को प्रकाशित करेगा ।]' ।

19. सशस्त्र बलों की बाबत प्रक्रिया – (1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, आयोग, सशस्त्र बलों के सदस्यों द्वारा मानव अधिकारों के अतिक्रमण की शिकायतों के बारे में कार्रवाई करते समय, निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाएगा, अर्थात् :–

(क) आयोग स्वप्रेरणा से या किसी अर्जी की प्राप्ति पर केन्द्रीय सरकार से रिपोर्ट मांग सकेगा ;

(ख) रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात्, आयोग, यथास्थिति, शिकायत के बारे में कोई कार्यवाही नहीं करेगा या उस सरकार को अपनी सिफारिशें कर सकेगा ।

(2) केन्द्रीय सरकार, सिफारिशों पर की गई कार्रवाई के बारे में आयोग को तीन मास के भीतर या ऐसे और समय के भीतर जो आयोग अनुज्ञात करे, सूचित करेगी ।

(3) आयोग, केन्द्रीय सरकार को की गई अपनी सिफारिशों तथा ऐसी सिफारिशों पर उस सरकार द्वारा की गई कार्रवाई सहित अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करेगा ।

(4) आयोग, उपधारा (3) के अधीन प्रकाशित रिपोर्ट की प्रति, अर्जीदार या उसके प्रतिनिधि को उपलब्ध कराएगा ।

20. आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टें – (1) आयोग, केन्द्रीय

सरकार को और संबंधित राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर, जो उसकी राय में इतना अत्यावश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट के प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टों को आयोग की सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के ज्ञापन सहित और सिफारिशों की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हों, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

अध्याय 5
राज्य मानव अधिकार आयोग

21. राज्य मानव अधिकार आयोगों का गठन – (1) कोई राज्य सरकार, इस अध्याय के अधीन राज्य आयोग को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए और सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए एक निकाय का गठन कर सकेगी जिसका नाम ..... (राज्य का नाम) मानव अधिकार आयोग होगा ।

[1][(2) राज्य आयोग ऐसी तारीख से, जो राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे, निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति रहा है ;

(ख) एक सदस्य, जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, या राज्य में जिला न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है, और जिसे जिला न्यायाधीश के रूप में कम से कम सात वर्ष का अनुभव है ;

(ग) एक सदस्य, जो ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किया जाएगा जिन्हें मानव अधिकारों से संबंधित विषयों का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है ;] ;

(3) एक सचिव होगा, जो राज्य आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा और वह राज्य आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा, जो राज्य आयोग उसे प्रत्यायोजित करे ।

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 12 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(4) राज्य आयोग का मुख्यालय ऐसे स्थान पर होगा जो राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे ।

(5) कोई राज्य आयोग केवल संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से संबंधित विषयों की बाबत मानव अधिकारों के अतिक्रमण किए जाने की जांच कर सकेगा ।

[1][(6) दो या दो से अधिक राज्य सरकारें, राज्य आयोग के अध्यक्ष या सदस्य की सहमति से, यथास्थिति, ऐसे अध्यक्ष या सदस्य को साथ-साथ अन्य राज्य आयोग का सदस्य नियुक्त कर सकेंगी यदि ऐसा अध्यक्ष या सदस्य ऐसी नियुक्ति के लिए सहमति देता है :

परन्तु उस राज्य की बाबत जिसके लिए, यथास्थिति, सामान्य अध्यक्ष या सदस्य या दोनों नियुक्त किए जाने हैं इस धारा के अधीन की गई प्रत्येक नियुक्ति धारा 22 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट समिति की सिफारिशें अभिप्राप्त करने के पश्चात् की जाएगी ।] :

परन्तु यदि किसी ऐसे विषय के बारे में आयोग द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन सम्यक् रूप से गठित किसी अन्य आयोग द्वारा पहले से ही जांच की जा रही है तो राज्य आयोग उक्त विषय के बारे में जांच नहीं करेगा :

परन्तु यह और कि जम्मू-कश्मीर मानव अधिकार आयोग के संबंध में, यह उपधारा ऐसे प्रभावी होगी मानो "केवल संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से संबंधित विषयों की बाबत" शब्द और अंकों के स्थान पर "जम्मू-कश्मीर राज्य को यथा लागू संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 में प्रगणित प्रविष्टियों में से किसी से संबंधित विषयों की बाबत और उन विषयों की बाबत जिनके संबंध में उस राज्य के विधान मंडल को विधियां बनाने की शक्ति है" शब्द और अंक रख दिए गए हों ।

22. राज्य आयोग के अध्यक्ष और [2][सदस्यों] की नियुक्ति – (1) राज्यपाल अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा अध्यक्ष और [2][सदस्यों] को नियुक्त करेगा :

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 12 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 13 द्वारा प्रतिस्थापित ।

परन्तु इस उपधारा के अधीन प्रत्येक नियुक्ति ऐसी समिति की सिफारिशें प्राप्त होने के पश्चात् की जाएगी, जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी, अर्थात् :–

(क) मुख्य मंत्री	अध्यक्ष ;
(ख) विधान सभा का अध्यक्ष	सदस्य ;
(ग) उस राज्य के गृह विभाग का भारसाधक मंत्री	सदस्य ;
(घ) विधान सभा में विपक्ष के नेता	सदस्य ;

परन्तु यह और कि जहां किसी राज्य में विधान परिषद् है वहां उस परिषद् का सभापति और उस परिषद् में विपक्ष का नेता भी समिति के सदस्य होंगे :

परन्तु यह और भी कि उच्च न्यायालय का कोई आसीन न्यायाधीश या कोई आसीन जिला न्यायाधीश, संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् ही नियुक्त किया जाएगा अन्यथा नहीं ।

(2) राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य की कोई नियुक्ति, केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि [1][उपधारा (1) में निर्दिष्ट समिति में कोई रिक्ति है]।

23. [2]**[राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य का त्यागपत्र और हटाया जाना** – (1) राज्य आयोग का अध्यक्ष या कोई सदस्य, राज्यपाल को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लिखित, सूचना द्वारा अपना पद त्याग सकेगा ।

(1क) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य को केवल साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर किए गए राष्ट्रपति के ऐसे आदेश से उसके पद से हटाया जाएगा, जो उच्चतम न्यायालय को, राष्ट्रपति द्वारा निर्देश किए जाने पर, उच्चतम न्यायालय द्वारा इस निमित्त विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई जांच पर वह रिपोर्ट किए जाने के पश्चात् किया गया है कि, यथास्थिति, अध्यक्ष या ऐसे सदस्य को ऐसे किसी आधार पर हटा दिया जाए ।] ;

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 13 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 14 द्वारा प्रतिस्थापित ।

(2) [1][उपधारा (1क) में किसी बात के होते हुए भी, यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या कोई [1][सदस्य],–

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है ; या

(ख) अपनी पदावधि में अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगता है ; या

(ग) मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण अपने पद पर बने रहने के अयोग्य है ; या

(घ) विकृतचित्त का है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ; या

(ङ) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है और कारावास से दण्डादिष्ट किया जाता है जिसमें, राष्ट्रपति की राय में, नैतिक अधमता अंतर्ग्रस्त है,

तो राष्ट्रपति, अध्यक्ष या किसी [1][सदस्य] को, आदेश द्वारा, पद से हटा सकेगा ।

[2][**24. राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि** – (1) अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक या सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, इनमें से जो भी पहले हो, अपना पद धारण करेगा ।

(2) सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया कोई व्यक्ति, अपने पद ग्रहण की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक अपना पद धारण करेगा तथा पांच वर्ष की और अवधि के लिए पुनर्नियुक्ति का पात्र होगा :

परन्तु कोई भी सदस्य सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(3) अध्यक्ष या कोई सदस्य, अपने पद पर न रह जाने पर, किसी राज्य की सरकार के अधीन या भारत सरकार के अधीन किसी भी और नियोजन का पात्र नहीं होगा ।]।

25. कतिपय परिस्थितियों में सदस्य का अध्यक्ष के रूप में कार्य

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 14 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 15 द्वारा प्रतिस्थापित ।

करने या उसके कृत्यों का निर्वहन – (1) अध्यक्ष की मृत्यु, पदत्याग या अन्य कारण से उसके पद में हुई रिक्ति की दशा में, राज्यपाल, अधिसूचना द्वारा, सदस्यों में से किसी एक सदस्य को अध्यक्ष के रूप में तब तक कार्य करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा जब तक ऐसी रिक्ति को भरने के लिए नए अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं हो जाती ।

(2) जब अध्यक्ष छुट्टी पर अनुपस्थिति के कारण या अन्य कारण से अपने कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है तब सदस्यों में से एक ऐसा सदस्य, जिसे राज्यपाल, अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त प्राधिकृत करे, उस तारीख तक अध्यक्ष के कृत्यों का निर्वहन करेगा जिस तारीख को अध्यक्ष अपने कर्तव्यों को फिर से संभालता है ।

[**26. राज्य आयोगों के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबन्धन और शर्तें ऐसी होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु अध्यक्ष या किसी सदस्य के वेतन और भत्तों में तथा सेवा के अन्य निबन्धनों और शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।]

27. राज्य आयोग के अधिकारी और अन्य कर्मचारिवृन्द – (1) राज्य सरकार, आयोग को, –

(क) राज्य सरकार के सचिव की पंक्ति से अनिम्न पंक्ति का एक अधिकारी, जो राज्य आयोग का सचिव होगा ; और

(ख) ऐसे अधिकारी के अधीन, जो पुलिस महानिरीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो, ऐसे पुलिस और अन्वेषण कर्मचारिवृन्द तथा ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारिवृन्द, जो राज्य आयोग के कृत्यों का दक्षतापूर्ण पालन करने के लिए आवश्यक हों ;

उपलब्ध कराएगी ।

(2) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, राज्य आयोग ऐसे, अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारिवृन्द नियुक्त कर सकेगा, जो वह आवश्यक समझें ।

(3) उपधारा (2) के अधीन नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द के वेतन, भत्ते और सेवा की शर्तें ऐसी होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

28. राज्य आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टें – (1) राज्य आयोग, राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर, जो उसकी राय में इतना अत्यावश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट के प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्टें प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) राज्य सरकार, राज्य आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टों को राज्य आयोग की सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के ज्ञापन सहित और सिफारिशों की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हों, जहां राज्य विधान मंडल दो सदनों से मिलकर बनता है वहां प्रत्येक सदन के समक्ष, या जहां ऐसा विधान मंडल एक सदन से मिलकर बनता है वहां उस सदन के समक्ष, रखवाएगी ।

29. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से संबंधित कतिपय उपबंधों का राज्य आयोगों को लागू होना – धारा 9, धारा 10, धारा 12, धारा 13, धारा 14, धारा 15, धारा 16, धारा 17 और धारा 18 के उपबंध राज्य आयोग को लागू होंगे और वे निम्नलिखित उपांतरणों के अधीन रहते हुए प्रभावी होंगे, अर्थात् :–

(क) "आयोग" के प्रतिनिर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे "राज्य आयोग" के प्रतिनिर्देश हैं ;

(ख) धारा 10 की उपधारा (3) में, "महासचिव" शब्द के स्थान पर "सचिव" शब्द रखा जाएगा ;

(ग) धारा 12 के खंड (च) का लोप किया जाएगा ;

(घ) धारा 17 के खंड (i) में से "केन्द्रीय सरकार या किसी" शब्दों का लोप किया जाएगा ।

अध्याय 6
मानव अधिकार न्यायालय

30. मानव अधिकार न्यायालय – मानव अधिकारों के अतिक्रमण से, उद्भूत होने वाले अपराधों का शीघ्र विचारण करने के लिए उपबंध करने के

प्रयोजन के लिए, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से अधिसूचना द्वारा, उक्त अपराधों का विचारण करने के लिए, प्रत्येक जिले के किसी सेशन न्यायालय को मानव अधिकार न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकेगी :

परन्तु इस धारा की कोई बात तब लागू नहीं होगी, जब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन ऐसे अपराधों के लिए –

(क) कोई सेशन न्यायालय पहले से ही विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट है ; या

(ख) कोई विशेष न्यायालय पहले से ही गठित है ।

31. विशेष लोक अभियोजक – राज्य सरकार, प्रत्येक मानव अधिकार न्यायालय के लिए, अधिसूचना द्वारा, एक लोक अभियोजक विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे अधिवक्ता को, जिसने कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि-व्यवसाय किया हो, उस न्यायालय में मामलों के संचालन के प्रयोजन के लिए, विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

अध्याय 7
वित्त, लेखा और संपरीक्षा

32. केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान – (1) केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी, जो केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए, ठीक समझे ।

(2) आयोग, इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी राशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

33. राज्य सरकार द्वारा अनुदान – (1) राज्य सरकार, विधान मंडल द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात् राज्य आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी, जो राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए, ठीक समझे ।

(2) राज्य आयोग, अध्याय 5 के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी राशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

34. लेखा और संपरीक्षा – (1) आयोग, उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण, ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार, भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके, विहित करे ।

(2) आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय, आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के और इस अधिनियम के अधीन आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने और आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित, आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित, आयोग द्वारा, केन्द्रीय सरकार को प्रतिवर्ष भेजे जाएंगे और केन्द्रीय सरकार, ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को, उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

35. **राज्य आयोग के लेखा और संपरीक्षा** – (1) राज्य आयोग, उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण, ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो राज्य सरकार, भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके, विहित करे ।

(2) राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय, राज्य आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के और इस अधिनियम के अधीन राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने और राज्य आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या इस निमित्त उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित राज्य आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित, राज्य आयोग द्वारा, राज्य सरकार को प्रतिवर्ष भेजे जाएंगे और राज्य सरकार, ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को, उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान मंडल के समक्ष रखवाएगी ।

अध्याय 8
प्रकीर्ण

36. आयोग की अधिकारिता के अधीन न आने वाले विषय – (1) आयोग, किसी ऐसे विषय की जांच नहीं करेगा जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन सम्यक् रूप से गठित किसी राज्य आयोग या किसी अन्य आयोग के समक्ष लंबित है ।

(2) आयोग या राज्य आयोग उस तारीख से जिसको मानव अधिकारों का अतिक्रमण गठित करने वाले कार्य का किया जाना अभिकथित है एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात् किसी विषय की जांच नहीं करेगा ।

37. विशेष अन्वेषण दलों का गठन – तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, जहां सरकार का यह विचार है कि ऐसा करना आवश्यक है वहां वह एक या अधिक विशेष अन्वेषण दलों का गठन कर सकेगी, जिनमें उतने पुलिस अधिकारी होंगे जितने वह मानव अधिकारों के अतिक्रमणों से उद्भूत होने वाले अपराधों के अन्वेषण और अभियोजन के प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझती है ।

38. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किसी आदेश के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी

बात के बारे में अथवा किसी रिपोर्ट, कागज-पत्र, या कार्यवाही के केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रकाशन के बारे में कोई भी वाद या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग, राज्य आयोग या उसके किसी सदस्य अथवा केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के निदेशाधीन कार्य करने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी ।

39. सदस्यों और अधिकारियों का लोक सेवक होना – आयोग या राज्य आयोग का प्रत्येक सदस्य और इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का प्रयोग करने के लिए आयोग या राज्य आयोग द्वारा नियुक्त या प्राधिकृत प्रत्येक अधिकारी, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझा जाएगा ।

40. नियम बनाने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 8 के अधीन [1][अध्यक्ष और सदस्यों] के वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) वे शर्तें, जिनके अधीन अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारिवृन्द आयोग द्वारा नियुक्त किए जा सकेंगे तथा धारा 11 की उपधारा (3) के अधीन अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द के वेतन और भत्ते ;

(ग) सिविल न्यायलय की कोई अन्य शक्ति, जो धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (च) के अधीन विहित की जानी अपेक्षित है ;

(घ) वह प्ररूप, जिसमें आयोग द्वारा धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक लेखा विवरण तैयार किए जाने हैं ; और

(ङ) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना है या किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 17 द्वारा प्रतिस्थापित ।

के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

[1][**40क. भूतलक्षी रूप से नियम बनाने की शक्ति** – धारा 40 की उपधारा (2) के खंड (ख) के अधीन नियम बनाने की शक्ति के अंतर्गत ऐसे नियमों या उनमें से किसी नियम को भूतलक्षी रूप से किसी ऐसी तारीख से बनाने की शक्ति होगी, जो उस तारीख से पूर्वतर न हो जिसको इस अधिनियम को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होती है, किन्तु किसी ऐसे नियम को ऐसा कोई भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाएगा जिससे कि किसी ऐसे व्यक्ति के, जिसको ऐसा नियम लागू हो सकता हो, हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े ।]।

[2][**40ख. आयोग की विनियम बनाने की शक्ति** – (1) इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, आयोग, केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन से, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए विनियम बना सकेगा ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन आयोग द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ख) राज्य आयोगों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली विवरणियां और आंकड़े ;

---

[1] 2000 के अधिनियम संख्यांक 49 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[2] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 18 द्वारा अंत:स्थापित ।

(ग) कोई अन्य विषय, जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाना है या किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन आयोग द्वारा बनाया गया प्रत्येक विनियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।] ।

41. नियम बनाने की राज्य सकार की शक्ति – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए, उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 26 के अधीन [1][अध्यक्ष और सदस्यों] के वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) वे शर्तें, जिनके अधीन अन्य प्रशासनिक, तकनीकी और वैज्ञानिक कर्मचारिवृन्द राज्य आयोग द्वारा नियुक्त किए जा सकेंगे तथा धारा 27 की उपधारा (3) के अधीन अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द के वेतन और भत्ते ;

(ग) वह प्ररूप, जिसमें धारा 35 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक लेखा विवरण तैयार किए जाने हैं ।

(3) इस धारा के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, जहां राज्य विधान मंडल के दो सदन हैं वहां प्रत्येक सदन के समक्ष या जहां ऐसे विधान मंडल का एक सदन है वहां उस सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

---

[1] 2006 के अधिनियम संख्यांक 43 की धारा 19 द्वारा प्रतिस्थापित ।

42. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और उस कठिनाई को दूर करने के लिए उसे आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परन्तु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

43. निरसन और व्यावृत्ति – (1) मानव अधिकार संरक्षण अध्यादेश, 1993 (1993 का अध्यादेश संख्यांक 30) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, उक्त अध्यादेश के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई, इस अधिनियम के तत्संबंधी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी ।